''सूर के काव्य में राम''

डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फ़ैज़ाबाद, उ.प्र. की
हिन्दी विषयक
पीएच्.डी.
उपाधि-हेतु प्रस्तुत

787

शोध-प्रबन्ध

शोध-निर्देशिका
डॉ. (श्रीमती) सुधा राय
उपाचार्य
हिन्दी–विभाग
राजा मोहन गर्ल्स पी.जी. कॉलेज
फ़ैज़ाबाद (उ.प्र.)

शोधकर्त्री
श्रीमती अरुणा शुक्ला

डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फ़ैज़ाबाद, उ.प्र.

2013

प्रमाण–पत्र

मैं प्रमाणित करती हूँ कि **श्रीमती अरूणा शुक्ला** ने मेरे निर्देशन में हिन्दी विषय में, **"सूर के काव्य में राम"** शीर्षक पर शोध–प्रबन्ध तैयार किया है। विषय सम्बन्धी तथ्यों का उद्‌घाटन इनके श्रम का प्रतिफल है। मैं संस्तुति करती हूँ कि यह शोध–प्रबन्ध परीक्षण हेतु भेजा जाय।

Forwarded
01/10/13

प्राचार्य
राजा मोहन गर्ल्स पी0जी0 कालेज
फैजाबाद

शोध–निर्देशिका

01/10/2013

(डॉ0 (श्रीमती) सुधा राय)
उपाचार्य हिन्दी विभाग
राजा मोहन गर्ल्स पी0जी0 कालेज,
फैजाबाद

आत्म–निवेदन

मध्यकाल में महाकवि सूरदास और तुलसीदास हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। सूर के आराध्य कृष्ण और तुलसी के आराध्य राम हैं। अपने–अपने आराध्य के प्रति भक्ति–भावना व्यक्त करने के लिए इन दोनों कवियों ने काव्य का प्रणयन किया है। अपने आराध्य के प्रति विशिष्ट श्रद्धा रखते हुये इन कवियों ने भव सागर से तरने के भी उपाय बताये हैं। सूरसागर, रामचरितमानस, लोक–धड़कन का अनूठा ग्रन्थ है।

सूरदास के कृष्ण काव्य की व्यापक चर्चा हुई है और उस पर अनेक समीक्षा ग्रन्थ भी लिखे गये हैं। पर 'राम काव्य' पर समीक्षकों की सम्यक् दृष्टि से सहयोग लेते हुए कुछ अधिक जानना–समझना शोध का मन्तव्य है।

इस सन्दर्भ में मर्यादा परुषोत्तम श्रीराम के जन्म नगरी अयोध्या पर वास होने के कारण श्रीराम के प्रति श्रद्धा होना स्वाभाविक है। इसलिए डॉ0 सुधा राय उपाचार्य, हिन्दी–विभाग, राजा मोहन गर्ल्स पी0जी0 कालेज, फैजाबाद के प्रेरणा के अनुसार सूरदास के काव्य में राम शीर्षक पर शोध हेतु कृत संकल्पित होकर इस चुनौती को स्वीकार किया है।

इस शोध प्रबन्ध को मूल रूप प्रदान करने में जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग दिया है उनके प्रति सम्मान व्यक्त करना चाहती हूँ। इस क्रम में कुल श्रेष्ठ पितामह, माता–पिता एवं गुरूजनों का प्रथम स्थान है।

सर्वप्रथम मैं परम श्रद्धेया डॉ0 (श्रीमती) सुधा राय, उपाचार्य राजा मोहन गर्ल्स पी0जी0 कालेज फैजाबाद व उनके पति श्री अशोक कुमार राय अधिवक्ता के चरणों में बारम्बार प्रणाम करती हूँ, जिनका व्यक्तित्व ही अहर्निश मेरे लिए प्रेरणास्रोत बना, आपके द्वारा मुझे शोधकाल के दौरान न केवल पुस्तकीय सहयोग ही नहीं मिला, अपितु शोधकार्य को पूर्ण करने हेतु प्रोत्साहन, उसमें

आने वाली कठिनाईयों का निराकरण तथा अति व्यस्ततम समय में निरीक्षण का कार्य किया गया। आपके प्रति अभार व्यक्त करना मुझ अंकिचन के वश की बात नहीं है। ईश्वर आपको स्वस्थ्य एवं सकुशल रखते हुये लम्बी आयु दे, इन्हीं कामानाओं के साथ मैं एक बार पुनः सादर अभिवादन करती हूँ।

माता–पिता बालक के प्रथम मार्गद्रष्टा एवं गुरू होते है। इस गुरूत्तर भार का वहन करने वाले एवं जिनके निर्देशन अभिव्यक्ति की क्षमता तथा प्रतिकूल समय में संघर्ष करने की अजेय क्षमता अंकुरित होने का सुअवसर प्राप्त हुआ। ऐसा संरक्षण एवं स्नेह देने वाले पितामह श्री रामेश्वर प्रसाद मिश्र व पूज्यनीय माता श्रीमती कमला मिश्रा एवं पिता श्री लवकुश मिश्रा जिन्होंने बाल्यकाल से ही मुझे शिक्षण हेतु प्रेरित किया, उनका कोटिशः चरण वन्दन करती हूँ।

महाविद्यालय के प्रबन्धक श्री श्रद्धेय कुंवर कृष्ण मनूचा, प्रबन्धक, एम.एल. एम.एल. इण्टर कालेज व राजा मोहन गर्ल्स पी0जी0 कालेज, फैजाबाद एवं श्रद्धेया माता श्रीमती कावेरी मनूचा एवं अग्रज श्री हर्ष कुमार मनूचा व भाभी श्रीमती कल्पना मनूचा की भी आभारी हूँ, जिन्होंने शोध–प्रबन्ध को पूर्ण कराने में समय–समय पर मेरा मार्ग–दर्शन अपने अमूल्य सुझावों से किया।

मैं गुरूवर श्री कन्हैयालाल शर्मा एवं डॉ0 ईश्वर दत्त पाण्डेय, गायत्री शक्तिपीठ जामो अमेठी के श्री चरणों में कोटिशः प्रणाम करती हूँ, जिनके स्नेहिल एवं तर्कबुद्धि स्वभाव द्वारा हर कठिन समय में भी मुझे गुरूतुल्य सहयोग प्राप्त होता रहा।

विद्वता एवं गाम्भीर्य प्रतिमूर्ति श्री अशोक कुमार त्रिपाठी, श्री मृत्युंजय सिंह, मनीष त्रिपाठी, ज्ञानेश द्विवेदी, श्री एस0एन0 सिंह, श्री राजेश पाण्डेय एवं डॉ0 सुरेन्द्र कुमार जायसवाल के श्रीचरणों में प्रणाम करती हूँ जिनके सुझाव एवं मार्गदर्शन से शोध–प्रबन्ध अपने मूर्तिरूप में आ सका।

परमादरणीय श्वसुर व पिता तुल्य संरक्षक श्री रामचन्द्र शुक्ल एवं श्रद्धेय सासु माँ श्रीमती पतिराजी के श्री चरणों में सादर चरण वन्दन करती हूँ, जिन्होंने मुझे घरेलू कार्य से मुक्त रख कर शोध कार्य के लिए प्रेरित किया वे चिरायु हों, ईश्वर उन्हें लम्बी आयु दे, जिससे कि उनकी कल्पवृक्ष रूपी धारा की प्राप्ति दीर्घकाल तक मुझे मिलती रहे।

मैं अपने अभिभावक, संरक्षक एवं पथ प्रदर्शक अग्रज (जेठ) श्री राज कुमार शुक्ल, श्री शिव कुमार शुक्ल व श्री कृष्ण कुमार शुक्ल (दुग्ध संघ, फैजाबाद) एवं नीरज मिश्रा के चरण वन्दन करती हूँ, जिनके सहयोग आशीष एवं प्रोत्साहन के फलस्वरूप शोध कार्य के निमित्त अपने आपको प्रस्तुत कर सकी। वे चिरायु हों ईश्वर उनको लम्बी आयु दे। पुनश्च अग्रजों को मेरा प्रणाम। जेठानी (बड़ी बहन), श्रीमती रामलली, श्रीमती श्यामेश्वरी, श्रीमती कंचन शुक्ल, भाभी श्रीमती रेखा को भी प्रणाम करती हूँ, जिनके स्नेह एवं प्रोत्साहन के फलस्वरूप शोधकार्य को पूर्ण कर सकने में समर्थ हो सकी। अपने भतीजों–भतीजियों राकेश, दुर्गेश, अमृत, आशीष, कोमल व कृतिका को शोध कार्य के दौरान मनोरंजन के लिए आशीर्वाद देती हूँ।

मैं आभारी हूँ अपने जीवन साथी के रूप में पति परमेश्वर डॉ0 राम कुमार शुक्ल प्रवक्ता एम0एल0एम0एल0 इण्टर कालेज फैजाबाद जिन्होंने मुझे शिक्षा के प्रति जागरुक करते हुए इण्टर के बाद से ही उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया, जिसके फलस्वरूप मैं बी0ए0, एम0ए0, बी0एड्0, टी0ई0टी0 एवं शोधकार्य को पूर्ण कर सकी। यही नहीं उन्होंने मुझे घरेलू झंझटों से मुक्त रखा वे चिरायु हों, ईश्वर उनको लम्बी आयु दे, जिससे उनकी कल्पवृक्ष रूपी धारा की प्राप्ति दीर्घकाल तक मुझे मिलती रहे, व पुत्री जागृति एवं पुत्र लक्ष्य की बालसुलभ शैतानियों एवं मनोरंजन के लिए सदा स्नेह स्नेहाशीष।

पूज्य जीजा जी एवं दीदी जी ने अपने प्यार, दुलार मामत्व एवं स्नेह से हमें हर प्रकार का सहयोग प्राप्त हुआ उन्हें हमारा कोटिशः चरण वन्दन।

शोध–प्रबन्ध का आठ अध्यायों में विभक्त है जिसको श्रम साध्यता से पूर्ण करने का सजग प्रयास किया गया है।

शोध के दौरान सामग्री सुलभ कराने एवं सहयोग करने वाले महाविद्यालय के पुस्तकालय कर्मचारी श्री हेमन्त त्रिपाठी, श्री हिमांशु पाठक एवं श्री गोविन्द मालवीय की भी आभारी हूँ, जिन्होंने शोध–प्रबन्ध को पूर्ण कराने में आवश्यक पाठ्यु–पुस्तकों को उपलब्ध कराया, ईश्वर उन्हें दीर्घायु करे।

मैं आभारी हूँ सहयोगी श्रीमती शारदा त्रिपाठी, श्री अवधेश मिश्र, श्री के0एम0 यादव, कु0 रूचि मिश्रा, अभिनव मिश्र व श्रीमती रजनी जिन्होंने कभी समय की कमी को आड़े आने नहीं दिया, वे सतत् उत्कर्ष करें मैं ईश्वर से यही प्रार्थना करती हूँ।

कम्प्यूटर टंकण कला के सिद्धहस्त श्री दीपक कुमार वर्मा (प्रोग्रेसिव कम्प्यूटर्स, शान्ति मार्केट, नाका हनुमानगढ़ी, फैजाबाद) का आभार व्यक्त किए बिना यह परम्परा अधूरी रहेगी क्योंकि आपने अत्यल्प समय में इस शोध–प्रबन्ध को त्रुटिरहित ढंग से टंकित करके वर्तमान कलेवर दिया है।

अन्त में पुनः स्वजन–पुरजन, जो इस जटिल कार्य को सुगम बनाने में अपना सहयोग एवं स्नेह प्रदान किया उन्हें पुनः साधुवाद।

दिनांक- 4 मई 2013

(श्रीमती अरूणा शुक्ला)
शोधकर्त्री

विषयानुक्रमणिका

विषय-वस्तु		पृष्ठ संख्या
प्रथम अध्याय		
प्रस्तावना	:	1-35
द्वितीय अध्याय		
सूर : जीवन वृत्त	:	36-88
तृतीय अध्याय		
राम काव्य की परम्परा	:	89-124
चतुर्थ अध्याय		
सूर के काव्य में प्रबन्धन	:	125-179
पंचम अध्याय		
पात्रा का शील निरूपण और चरित्र चित्रण	:	180-219
षष्ठ अध्याय		
सूरदास की उपासना एवं भक्ति पद्धति	:	220-282
सप्तम् अध्याय		
सूर के राम काव्य का भावपक्ष एवं कला पक्ष	:	283-313
अष्टम् अध्याय		
उपसंहार	:	314-329
सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची	:	i-vi

अध्याय-1

प्रस्तावना

भूमिका

भारतीय संस्कृति, धर्म और दर्शन के राम और कृष्ण दो समान स्तम्भ हैं, उनके अनुकरणीय जीवन दर्शन को हमारे मुनियों, मनीषियों और चिन्तनशील कवियों ने मुक्तकण्ठ से गान किया है।

हिन्दी साहित्य में विभिन्न सूधी ज्ञानियों मनीषियों और भक्तों के द्वारा 'राम' के विविध अर्थ प्रस्तुत किये गये है। कर्म, वैराग्य, ज्ञान, योग, उपासना, प्रपत्रि आदि वेदोक्त शुभ 'साधना समुदाय अपनी– अपनी जगह सत्य है। परन्तु युगधर्म अनुरूप उनका सुविस्तृत विधि विधान से निर्वाह होना दुष्कर है। 'राम नाम' एक ऐसा साधन है। वैष्णव पुराणों में सर्वाधिक लोकप्रिय श्रीमद्भगवत में राम और कृष्ण की अभेद प्रतिपादित कर भगवान के विविध अवतारों में एकत्व स्थापित कर दिया गया है। प्रथम स्कन्ध के तीसरे अध्याय में भगवान के बाईस अवतारों का उल्लेख करते हुए दाशरशिराम को 18वां और श्रीकृष्ण को 20वां अवतार कहा गया है।

सूर और तुलसी हिन्दी–साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। सूर के आराध्य कृष्ण और तुलसी के आराध्य राम हैं। अपने–अपने आराध्य के प्रति भक्ति–भावना व्यक्त करने के लिए, इन दोनों कवियों ने काव्य का प्रणयन किया है। अपने आराध्य के प्रति विशिष्ट श्रद्धा रखते हुये भी इन कवियों ने अन्य देवों के प्रति भी पूरी निष्ठा रखी है। उसी निष्ठा के रूप में सूर ने राम से सम्बन्धित लगभग ढाई सौ पदों की रचना की है, जो 'सूरसागर' में संकलित हैं। तुलसी ने तो स्वतंत्र रूप से 'कृष्ण गीतावली' और पार्वती मंगल' खण्ड काव्य लिखे हैं।

सूर के कृष्ण–काव्य की तो व्यापक चर्चा हुई है, और उस पर अनेक समीक्षा ग्रन्थ भी लिखे गये हैं, पर उनके राम–काव्य पर समीक्षकों की दृष्टि प्रायः नहीं की गयी, और यही कारण रहा, कि उसकी चर्च नहीं हुई। सूर के रामकाव्य का व्यापक विश्लेषण सूर सागर के नवम् स्कन्ध में किया गया है। सूर

के रामकाव्य की मार्मिक स्थलों को गहराई से पहचानना और उसका सही मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है। इसके साथ ही रामकाव्य की परम्परा में सूर का स्थान निर्धारित करने का प्रयास सफलता से किया गया है। आशा है ये सूर साहित्य जगत में आदृत होगी। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध ' सूर के काव्य में राम का प्रथम अध्याय– प्रस्तावना में राम जन्म से लेकर उनकी लीलाओं तथा राम राज्य का वर्णन सूर सागर एवं अन्य सूर साहित्य से संकलन किया गया है। द्वितीय अध्याय 'सूरः जीनव वृत्त' में सूरदास जी के जीवन परिचय में उनकी कृतिया सूरसागर, सूरसारावली, याहित्यलहरी से राम काव्य का संकलन है। तृतीय अध्याय– राम काव्य की परम्परा में से राम शब्द की व्युत्पत्ति एवं विविध अर्थ, राम आराधना का प्रारम्भ एवं विकास, राम काव्य का उदभव एवं विकास का संकलन है। चर्तुथ अध्याय–'सूर के काव्य' में प्रबन्धन मार्मिक दृश्य चित्रण, गृहस्थाश्रय, मानव रोग, द्वंष, गृहस्थ जीवन के मूलाधार वात्सल्य, दामपत्य का चित्रण किया गया है। पंचम अध्याय– 8पात्रों का शील चित्रण निरूपण और' चरित्र चित्रण है। षष्ट अध्याय–'सूरदास की उपासना एवं भक्ति पद्यति का उल्लेख किया गया है। सप्तम अध्याय– में 'सूर के राम काव्य का भावपक्ष एवं कला पक्ष का वर्णन किया गया हे। अष्टम अध्याय उपसंहार में प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अध्याय एक से सात तक के राम काव्य के लिए संकलित पदो का वर्णन है, जो सूर साहित्य से संकलित है।

जो भगवान् की कृपाप्राप्त जन है!, उनमें न संकीर्णता सम्भव है, न भेददृष्टि। भक्तश्रेष्ठ सूरदासजी के आराध्य यद्यपि नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं! किंतु भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्ण में सूरदासजी की तो अभेदबुद्धि है। सूरदासजी ने पूरे श्रीमद्भगवत के चरित्रों का अपने पदों में गान किया है। यह बात ठीक है, परंतु अत्यन्त संक्षिप्तरूप से। कहीं–कहीं तो पूरे स्कन्ध की बात एक–दो पदों में कह दी है। श्रीमद्भगवत के नवम स्कन्ध में श्रीरामचरित का पदों में वर्णन किया है और उनका यह वर्णन कितना भावपूर्ण, मौलिक एवं

रसमय है। 'सूर' के इन पदों में कई स्थानों पर तो अत्यन्त मार्मिक भावों की उद्भावना है।

भागवत में दाशरथिराम के लिए नरदेव अर्थात 'राजा' शब्द का प्रयोग किया गया है! और 'राम' शब्द से कृष्ण के बड़े भाई बलराम को सम्बोधित किया गया है। नरदेव के रूप में भगवान के जिन कार्यों का वर्णन है उनसे स्पष्ट हो जाता है कि भागवतकार का संकेत दाशरथिराम की ओर है।

नरदेवत्वमान्नः सुर कार्य चिकीर्षया।
समुद्र निग्रहादीनि चके वीर्याव्यतः परम्।।[1]

(देवताओं का कार्य सफल करने की इच्छा से उन्होंने राजा के रूप में अवतार ग्रहण किया और सेतुवंधन रावणवध आदि वीरतापूर्ण बहुत सी लीलाएं की।

महाकवि सूरदास हिन्दी काव्याकाश के भक्ति–काल की सगुण काव्यधारा के प्रमुख कृष्ण भक्ति कवि है। इन्होंने अपनी रचनाओं में कर्मयोगी, पूर्णज्ञानी आनन्द स्वरूप भगवान विष्णु के अवतार कृष्ण को अनन्त सौन्दर्य प्रतिमूर्ति एवं प्रेम की अधिष्ठात्री देवी "राधा" के साथ लोकरंजक तथा लोक रक्षक चित्रित किया है। वे मधुर एवं कोमल भावनाओं के चतुर चितेरे रस के अक्षय स्रोत, आध्यात्मिक प्रेम के प्रवीण पारखी तथा मानव में शाश्वत वृत्तियों के सफल गायक थे।

भारतीय धर्म साधना में अवतारवाद की कल्पना से अभिप्रेरित होकर महाकवि सूर ने राम और कृष्ण में कोई मतभेद नही समझा। राम को अपने ग्रन्थों में मर्यादित एवं आदर्शमय रूप में चित्रित किया है। उनके विचार में,

---

1. श्रीमतद्भागवत कथा, नवम् स्कन्ध, श्लोक..... पृ0 .....

बड़ी है राम नाम की ओट।
सरन गएँ प्रभु काढ़ि देत नहिं, करत कृपा कौ कोट।।
बैठत सबै सभा परि जू की, कौन बड़ौ को छोट?
सूरदास पारस के परसैं मिटति लोह की खोट।।[2]

अर्थात–श्रीराम नाम का आश्रय सबसे महान है। शरण में जाने पर प्रभु किसी को निकाल नहीं देते अपितु उसे कृपारूपी दुर्ग में रख लेते है। श्री हरि की सभा में बैठते हैं, वहां कौन बड़ा और कौन छोटा है। सूरदास जी कहते हैं कि पारस का स्पर्श होने पर लोहे का दोष मिट जाता है। इसी प्रकार भगवान के शरण होने पर जीव के दोष नष्ट हो जाते हैं।

साहित्य में सर्वाधिक जगमगाते हुए रत्नमणि द्वीप के सदृश गोस्वामी तुलसीदास जी है। रामचरितमानस शताब्दियों से जन–जन के जीवन का कंठहार बना हुआ है। किन्तु विकास की कड़ी में सूर, गोस्वामी जी से पन्द्रह वर्ष बड़े होने के कारण उनका प्रथम स्थान है। सूरदास जी श्रीमद्भगवद्गीता के आधार पर 'सूर सागर' में राम कथा का गान किया है। काल क्रमानुसार सूर ही भाषा में कबीर के बाद 'राम काव्य' के गायक ठहरते है। श्रीमद्भागवत के नवम् स्कन्ध में राम की कथा कही गयी है। जब बल्लभाचार्य जी के आदेशानुसार सूर ने सूरसागर की रचना की तो अपने ग्रन्थ के नवम् स्कन्ध में राम कथा का वर्णन किया पदो की गये शैली के भावात्मक प्रवाह सूर का भावुक हृदय भी कई स्थानीं पर वह गया।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में उपसंहार को लेकर कुल–आठ अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय प्रास्तावना जिसमें सूरसागर के नवम स्कन्द से एवं सूर रामचरितावली व सूर सारावली रामकथा के भूमिका के पद्यों का संकलन किया गया है। जिसके कुछ अंशों का संकलन निम्नवत् है–

---

2. सूरसागर के पद क्रमांकः 232

राग बिलावल

हरि–हरि, हरि–हरि सुमिरन करौ। हरि–चरनारबिंद उर धरौ।।
जय अरू बिजय पारषद दोइ। बिप्र–सराप असुर भए सोइ।।
एक बराह–रूप धरि मार्‌यौ। इक नरसिंह–रूप संहार्‌यौ।।
श्रावन–कुंभकरन सोइ भए। राम जनम तिन कैं हित लए।।
दसरथ नष्पति अजोध्या–राव। ताके गष्ह कियौ आबिरभाव।।
नष्प सौं ज्यौं सुकदेव सुनायौ। 'सूरदास' त्यौं ही कहिगायौ।।[3]

निरन्तर श्रीहरिका स्मरण करना चाहिये और श्रीहरिके चरणकमलों को हृदय मे धारण (चिन्तन) करना चाहिये। जय और विजय नामके (भगवान् विष्णु) दो पार्षद (द्वारपाल) थे। ब्राह्मणों (सनकादि परमर्षियों) के शाप से वे ही असुर हो गये। उनमें से एक (हिरण्याक्ष) को भगवान् ने वाराहरूप धारण करके मारा और दूसरे (हिरण्यकश्यपु) का संहार नृसिंहरूप धारण करके किया। वे ही दोनों (फिर) रावण और कुम्भकर्ण के रूप में उत्पन्न हुए। उनके उद्धार के लिये ही श्रीरामने अवतार धारण किया। अयोध्यानरेश महाराज दशरथ के घर भगवान् श्रीरामका आविर्भाव (प्राकट्य) हुआ। राजा परीक्षित् को श्रीशुकदेवजी ने जिस प्रकार यह प्रसग्ङ सुनाया, सूरदास ने उसी प्रकार (श्रीमद्‌भागवत के अनुसार ही) वर्णन करके उसका गान किया है।

बालकाण्ड
जन्मोत्सव
राग कान्हरौ

रघुकुल प्रगटे हैं रघुबीर।
देस–देस तें टीकौ आयौ, रतन–कनक–मनि–हीर।।
घर–घर मंगल होत बधाई, अति पुरबासिनि भीर।
आनँद–मगन भए सब डोलत, कछू न सोध सरीर।।
मागध–बंदी–सूत लुटाए, गो–गयंद हय–चीर।
देत असीस 'सूर', चिरजीवौ रामचंद्र रनधीर।।[4]

श्रीरघुवीर रघुकुल में प्रकट हुए हैं। (उनके जन्मोपलक्ष में) देश–देश (के अधीनस्थ माण्डलिक राजाओं के पास) से (महाराज दशरथ के पास) भेंटके रूप

3. डॉ0 हरदेव बाहरी, संशोधित संस्करण 1991, सूरसागर सटीक पद–15, पृ.0 218
4. सूरसागर–नवम स्कन्ध, पद सं0–18, पृ0 219

में स्वर्ण, मणियाँ तथा हीरे आदि नाना प्रकार के रत्न आये हैं। (अयोध्या के) प्रत्येक घर में मग्ङलाचार एवं बधाई हो रही है। (राजभवन में) नगरवासियों की बहुत बड़ी भीड़ हो रही है। सभी लोग आनन्दमग्न हुए घूम रहे हैं, उन्हें अपने शरीर की भी कोई सुधि नहीं है। (महाराज ने) मागध, बंदीजन और सूत आदि यशोगान करनेवालों को गायें, हाथी, घोड़े और अनेक प्रकार के वस्त्र लुटाये हैं (जिसकी जो इच्छा हो, वह ले लो–ऐसी घोषणा कर दी है)। सूरदास भी आशीर्वाद देते हैं कि रणधीर श्रीरामचन्द्र चिरजीवी हों।

अजोध्या बाजति आजु बधाई।
गर्भ मुच्यौ कौसिल्या माता, रामचंद्र निधि आई।।
गावैं सखी परसपर मंगल, रिषि अभिषेक कराई।
भीर भई दसरथ कें आँगन, सामबेद–धुनि छाई।।
पूछत रिषिहिं अजोध्या कौ पति, कहियै जनम गुसाई।
भौम बार, नौमी तिथि नीकी, चौदह भुवन बड़ाई।।
चरि पुत्र दसरथ कें उपजे, तिहूँ लोक ठकुराई।
स्दा–सर्बदा राज राम कौ, 'सूर' दादि तहँ पाई।।[5]

आज अयोध्या में बधाई क मग्ङलवाद्य बज रहे हैं। माता कौसल्या का गर्भ काल पूरा हो गया और उससे श्रीरामचन्द्ररूपी महान् निधि (पथ्वी पर) आ गयी। सखियाँ परस्पर मिलकर मग्ङल–गान कर रही हैं। महर्षि वसिष्ठजीने (जातकर्म–संस्कारका) अभिषेक कराया। महाराज दशरथ के आँगन में भीड़ हो रही है और (ब्राह्मणों के मुख से निकली हुई) सामवेद गान की ध्वनि (आकाश में) छा गयी। अयोध्यानाथ महाराज दशरथ महर्षि से पूछ रहे हैं– 'हे स्वामी! (बालक का) जन्म–फल बतलाइये !' (महर्षिने कहा–) मग्ङलवार को पड़नेवाली नवमी तिथि बहुत उत्तम है; (इस मुहूर्त में जन्म होने के कारण) इनका बड़प्पन चौदहों भुवनों में व्याप्त होगा। महाराज दशरथ के चार पुत्र (श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुधन) उत्पन्न हुए, जिनका प्रभुत्व तीनों लोकों पर स्थापित हो गया। (इनमें) श्रीराजा राम का राज्य तो सदा–सर्वदा है ही। सूरदास ने भी वहीं से वाह–वाह प्राप्त की है।

---

5. सूर रामचरितावली, अनुवादक –सुदर्शन सिंह, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ0 15, पद सं0–17,

आजु दसरथ कें आँगन भीर।
ये भू–भार उतारन कारन, प्रगटे स्याम–सरीर।।
फूले फिरत अजोध्या–बासी, गनत न त्यागत चीर।
परिरंभत हँसि देत परसपर, आनँद नैननि नीर।।
त्रिदस–नष्पति, रिषि ब्यौम–बिमाननि देखत रह्यौ न धीर।
त्रिभुवन–नाथ दयालु दरस दै, हरी सबनि की पीर।।
देत दान राख्यौ न भूप कछु, महा बड़े नग हीर।
भए निहाल 'सूर' सब जाचक, जे जाँचे रघुबीर।।[6]

आज महाराज दशरथ आँगन में भीड़ हो रही है। (क्यों कि उनके यहाँ) पृथ्वी का भार दूर करने के लिये (नवजलधर–) श्यामवर्ण श्रीराम प्रकट हुए हैं। अयोध्यानिवासी आनन्द से प्रफुल्लित हुए घूम रहे हैं, वे अपने (शरीर का) वस्त्र तक त्यागने (बाँटने) में कुछ भी परवाह नहीं करते (वस्त्रों तक की उन्हें आज अपेक्षा नहीं है) वे आपस में एक–दूसरे को हँसते हुए हृदय से लगाकर भेंटते है, उनके नेत्रों से आनन्दाश्रु बह रहे हैं। देवताओं के राजा इन्द्र और ऋषिगण आकाश से विमानों में बैठे (यह महोत्सव) देख रहे हैं, उनके चित्त में भी धैर्य नहीं रहा है। त्रिभुवन के स्वामी दयालु प्रभु ने दर्शन देकर सबकी मनोव्यथा हर ली। महाराज दशरथ ने दान देते समय महामूल्वान् मणि एवं हीरे आदि कुछ भी शेष नहीं रखा। (सब दान कर दिया)। सूरदासजी कहते हैं– जिन्होंने भी श्रीरघुवीर से याचना की, वे सब याचक निहाल (सदा के लिये परितष्त) हो गये।

सूर-सारावली की रामकथा

रावन, कुंभकरन असुराधिप, बढ़े सकल जग माँहिं।
सबाहिन लोकपाल उन जीते, कोऊ बाच्यौ नाँहिं।।
सकल देव मिलि जाय पुकारे, चतुरानन के पास।
लै सिव संग चले चतुरानन, छीर–सिंधु सुखबास।।
अस्तुति करि बहु भाँति जगाए, तब जागे निज नाथ।
आज्ञा दई, जाय कपि–कुल मैं, प्रगटौ सब सुर साथ।।

6. सूर सागर सटीक संशोधित संस्करण 1991, पृ0 218, पद–16

तब ब्रह्या सबहिन सौं भाष्यौ, सोई सब सुर कीन्हौं।
सातौं दीप जाय कपि–कुल मैं, आय जन्म सुर लीन्हौं।।
अपने अंस आप हरि प्रगटे, पुरूषोत्तम निज रूप।
नारायन भुव–भार हरौ है, अति आनंद स्वरूप।।
बासुदेव, यौं कहत बेद मैं, हैं पूरन अवतार।
सेष सहस मुख रटत निरंतर, तऊ न पावत पार।।
सहस–वर्ष लौं ध्यान कियौ सिव, रामचरित सुख–सार।
अवगाहन करि कै सब देख्यौ, तऊ न पावत पार।।
बिती समाधि, सती तब पूछयौ, कहौ मरम गुरू ईस !
काकी ध्यान करत उर अंतर, को पूरन जगदीस ?
तब सिव कहेउ राम अरू गोबिंद, परम इष्ट इक मेरे।
सहस बर्ष लौं ध्यान करत हौं, राम–कृष्ण सुख केरे।।
तामैं राम समाधि करी अब, सहस बर्ष लौं बाम।
अति आनंद मगन मेरौ मन, अँग–अँग पूरन काम।।
दया करि मोकौं यह कहियै, अमर होहुँ जेहिं भाँति।
मोहि नारदमुनि तत्व बतायौ, तातें जिय अकुलाति।।
तब महादेव कृपा करि कै, यह चरित कियौ बिस्तार।
सो ब्रह्मांड पुरान ब्यास मुनि, कियौ बदन उच्चार।।
मुनि बाल्मीकि कृपा सातौं ऋषि, राम–मंत्र फल पायौ।
उलटौ नाम जपत अघ बीत्यौ, पुनि उपदेस करायौ।।
रामचरित बरनन के कारन, बालमीकि–अवतार।
तीनौं लोक भए परिपूरन, रामचरित सुखसार।।
सतकोटी रामायन कीनौ, तऊ न लीन्हौं पार।
कह्यौ बसिष्ट मुनि रामचंद्र सौं रामायन–उच्चार।।
कागभुसुंड गरूड़ सौं भाष्यौ, राम चरित अवतार।
सकल बेद अरू सास्त्र कह्यौ है, रामचंद्र–जस सार।।
कछु संक्षेप 'सूर' अब बरनत, लघुमति दुरबल बाल।
यह रसना पावन के कारन, मेटन भव– जंजाल।।[7]

राक्षसराज रावण और कुम्भकर्ण सम्पूर्ण विश्व में प्रबल हो गये थे। उन्होंने सभी लोकपालोंको जीत लिया, कोई भी बचा नहीं। तब सभी देवता एकत्र होकर ब्रह्याजीके पास पुकार करने गये। ब्रह्याजी (देवताओं तथा) शङ्करजी को साथ लेकर सुखसिन्धु भगवान् के निवास क्षीरसागर को चल पड़े। (वहाँ जाकर) अनेक प्रकार से स्तुति करके उन्होंने प्रभु को जगाया, तब वे सबके स्वामी जगे

7. सुदर्शन सिंह अनुवादक–श्री सूरदास रचित सूररामचरितावली, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ0 15

और आज्ञा दी–'सब देवता एक साथ जाकर कपियों के कुल में प्रकट हों।' तब ब्रह्या जी ने यह बात सबसे कह दी और सभी देवताओं ने वैसा ही किया। सातों द्वीपों में जितने वानरों के कुल थे, उनमें आकर देवताओं ने जन्म लिया। अपने अंशोंके साथ स्वयं पुरूषोत्तम श्रीहरि भी अपने (वास्तविक) स्वरूप से (पृथ्वी पर) प्रकट हुए। उन अत्यन्त आनन्दस्वरूप श्रीनारायणने पृथ्वी का भार दूर किया। वेदों में उन्हें वासुदेव कहा जाता है, वे पूर्णावतार हैं। शेषजी सहस्र मुख से निरन्तर उनका वर्णन करते हैं, फिर भी (उनके गुणोंका) अन्त नहीं पाते। सुख के साररूप श्रीरामचरित का एक सहस्र वर्ष तक शकंरजी ने ध्यान किया, उसमें आवहन करके (नम्र होकर) देखा; किंतु इतने पर भी (उन्हें भी) उसका अन्त नहीं मिला। जब (शङकरजीकी) समाधि टूटी, तब सतीजीने पूछा–'हे मेरे गुरू शङकरजी! यह रहस्य आप बताइये कि आप अपने हृदय में किसका ध्यान कर रहे थे। पूर्ण जगदीश्वर कौन है?' तब शकंरजी ने कहा–'श्रीराम और गोविन्द! यही एक मेरे परम इष्टदेव हैं। मैं एक–एक सहस्र वषतक श्रीराम तथा श्रीकृष्ण के आनन्दस्वरूप का ही ध्यान करता हूँ। उसमें से देवि! मैं अभी सहस्र वर्षतक श्रीराम के ध्यान में समाधि लगाये था, इससे मेरा मन अत्यन्त आनन्द निमग्न है, मेरे अंग–प्रत्यंग की कामनाएँ पूर्ण हो गयीं। ' (सतीजीने कहा–) 'दया करके मुझसे यह (श्रीरामचरित) कहिये, जिससे मैं अमर हो जाऊँ। देवर्षि नारद ने यह तत्त्व मुझे बतलाया है (कि श्रीरामचरित सुनने से अमरत्व प्राप्त होता है) इसीलिये मैं हृदय से उत्कण्ठित हो रही हूँ।' तब श्रीशकंरजी ने कृपा करके इस (रामचरित) का विस्तार (से वर्णन) किया। भगवान् व्यास ने उसी का पृथ्वी पर पुराणों में अपने मुख से वर्णन किया। सप्तर्षियों की कृपा से महर्षि वाल्मीकिने 'राम' यह मन्त्र फलरूप में प्राप्त किया था। इस (राम) नामका उलटा जप करते हुए उन्होंने अपने सब पाप नष्ट कर दिये; फिर उन्होंने रामचरित का उपदेश किया। श्रीवाल्मीकि जी का प्राकटच ही श्रीरामचरित के वर्णन के लिये हुआ था। (उनके द्वारा वर्णन होने पर) सुख के साररूप श्रीरामचरित से तीनों लोक परिपूर्ण हो गये। सौ करोड़ (श्लोकोंवाली) रामायण का उन्होंने निर्माण किया;

फिर भी उन्हें (श्रीरामचरितका) अन्त नहीं मिला। फिर महर्षि वषिष्ठजी ने श्रीरामचन्द्रजी से ही रामायणका वर्णन किया। श्रीरामावतार का चरित काकभुशुण्डिने गरूड़से वर्णन किया। सभी वेद और शास्त्रों ने कहा है कि श्रीरामचन्द्रजी का सुयश ही सबका साररूप है इसलिये यह तुच्छ बुद्धिका दुर्बल बालक सूरदास अपनी जिह्वा को पवित्र करने के लिये और संसार का जंजाल मिटाने के लिये संक्षिप्त रूप से कुछ रामचरित का वर्णन करता है।

राम-जन्म

पुष्य नछत्र, नौमी जु परम दिन, लगन सुद्ध सुभ बार।
प्रगट भए दसरथ–गष्ह पूरन चतुर्ब्यूह अवतार।।
तीनौं ब्यूह संग लै प्रगटे, पुरूषोत्तम श्रीराम।
संकर्षन–प्रद्युन्म, लच्छमन–भरत महासुख–धाम।।
शत्रुन्धहि अनिरूध कहियतु हैं, चतुर्ब्यूह निज रूप।
रामचंद्र प्रगटे जब गष्ह मैं, हरषे कौसल–भूप।।
अति फूले दसरथ मनहीं मन, कौशल्या सुख पायौ।
सौमित्रा–केकइ–मन आनँद यह सबहिन सुत जायौ।।
गुरू वशिष्ठ, नारद मुनि ज्ञानी, जन्मपत्रिका कीनी।
रामचंद्र बिख्यात नाम यह, सुर–मुनि की सुधि लीनी।।
देत दान नष्पराज दुर्जन कौं, सुरभी हेम अपार।
सब सुंदरि मिलि मंगल गावत, कंचन–कलस दुवार।।
आए देव और मुनिजन सब, दै असीस सुख भारी।
अपने–अपने धाम चले सब, परम मोद रूचिकारी।।
मन बांछित फल सबहिन पाए, भयौ सबन आनंद।
बालरूप ह्वै कै दशरथ–सुत, करत केलि स्वच्छंद।।[8]

पुष्य नक्षत्र था, पावन नवमी तिथि थी, शुद्ध लग्न (अभिजित् मुहूर्त) था और शुभ दिन (मंगलवार) था, जब महाराज दशरथ के घर में चतुर्व्यूहमूर्ति पूर्णावतार प्रकट हुए। पुरूषोत्तम श्रीराम अपने तीनों व्यूह–स्वरूपों के साथ प्रकट हुए। (चतुर्व्यूहके) संकर्षण लक्ष्मण कहे जाते हैं, महान् सुख के धाम प्रद्युन्म भरत कहलाये और अनिरूद्धका नाम शत्रुन्ध पड़ा। ये चतुर्व्यूह परम प्रभु के अपने ही

8. सुदर्शन सिंह अनुवादक–श्री सूरदास रचित सूररामचरितावली, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ0 207, पद सं0–201

स्वरूप हैं। श्रीरामचन्द्र जब राजभवन में प्रकट हुए, तब कोसलनरेश महाराज दशरथ को अत्यन्त प्रसन्नता हुई, उनका चित्त प्रफुल्लित हो गया और श्रीकौसल्याजी को बड़ा सुख मिला। सुमित्रा जी और कैकेयी जी के भी हृदय में बड़ा आनन्द हुआ; क्योंकि इन तीनों ही महारानियों के पुत्र उत्पन्न हुए थे। (रघुवंशके) कुलगुरू महर्षि वसिष्ठ तथा परम ज्ञानी देवर्षि नारदजीने (राजकुमारोंकी) जन्मपत्रिका बनायी। (उन्होंने बताया कि 'बड़े कुमार का) श्रीरामचन्द्र यह प्रसिद्ध नाम है। वस्तुतः तो इन्होंने देवता और मुनिगुणोंकी सुधि ली है (देवता तथा मुनियों के संकट को दूर करने के लिये अवतार धारण किया है)।' महाराज दशरथ ब्राह्मणों को गाएँ तथा अपार स्वर्णराशि दान देने लगे। सब (सौभाग्यवती) सुन्दरियाँ एकत्र होकर मग्डलागान करने लगीं। द्वारों पर स्वर्ण के कलष सजाये गये। सभी देवता तथा मुनिगण (अयोध्या) आये तथा अत्यन्त आनन्द से (सबके लिये) परम प्रसन्नतादायी रूचिकर (मनोवाञ्छित) आशीर्वाद (कुमारों को) देकर अपने–अपने धाम चले गये। सभी ने मनोवाञ्छित फल प्राप्त किया। सभी को आनन्द हुआ। इस प्रकार चारों भाई महाराज दशरथ के कुमार बनकर बालरूप से स्वछन्द बालक्रीड़ा करने लगे।

बाल-लीला

घुटुरून चलत कनक–आँगन मैं, कौसल्या छबि देखत।
नील नलिन तन पीत झँगुलिया, घन दामिनि–दुति पेखत।।
कबहुँक माखन लैकै खावत, खेल करत पुनि माँगत।
मुख चुंबत, जननी समझावत, आय कंठ पुनि लागत।।
कागभुसुंड दरस कौं आए, पाँच वर्ष लौं देखे।
अस्तुति करी, आपु बर पायौ, जनम सुफल करि लेखे।।
किरपा करि निज धाम पठायौ, अपनौ रूप दिखाय।
वाके आस्त्रम कोउ बसत है, माया लगत न ताय।।
प्रातकाल उठि जननि जगावत, उठौ मेरे बारे राम!
उठि बैठे, दतुवन लै आई, करी मुखारी स्याम।।
चारौं भ्रात मिल करत कलेऊ, मधु–मेवा–पकवान।
जल–आचमन, आरती करि कै, फिर कीन्हौ अस्नान।।
करत सषंगार चार भइया मिलि, सोभा बरनि न जाई।

चित्र–बिचित्र सुभग चौतनियाँ, इंद्रधनुष–छबि छाई।।
अलकावलि मुक्तावलि गूँथी, डोर सुरंग बिराजै।
मनहुँ सुरसरी धार सरसुती, जमुना मध्य बिराजै।।
तिलक भाल पर परम मनोहर, गोरोचन कौ दीनौ।
मानौ तीन लोक की सोभा, अधिक उदय सो कीनौ।।।
खंजन नैन बीच नासा–पुट राजत यह अनुहार।
खंजन जुग मनौं लरत लराई, कीर बुझावत रार।।
नासा के बेसर मैं मोती, बरन बिराजत चार।
मनौ जीव सनि सुक्र एक ह्वै, बाढ़े रबि कें द्वार।।
कुंडल ललित कपोल बिराजत, झलकत आभा गंड।
इंदीबर पर मनौ देखियत, रबि की किरन प्रचंड।।
अरून अधर दमकत दसनावलि, चारू चिबुक मुसक्यान।
अति अनुराग सुधाकर सींचत, दाड़िम–बीज समान।।
कंठसिरी बिच पदिक बिराजत, बहु मनि–मुक्ता–हार।
दहिनावर्त देत ध्रुव तारे, सकल नखत बहु बार।।
रतन–जड़ित कंकन बाजूबँद, नगन मुद्रिका सोहै।
डार–डार मनु मदन बिटप तरू, देखि–देखि मन मोहै।।
कटि किंकिन–रूनझुन सुनि तन की हंस करत किलकारी।
नूपुर–धुनि पग लाल पन्हैयाँ, उपमा कौन बिचारी।।
भूषन–बसन आदि सब रचि–रचि, माता लाड़ लड़ावै।
रामचंद्र की देख माधुरी, दरपन देख दिखावै।।
निज प्रतिबिंब बिलोकि मुकुर मैं, हँसत राम सुखरास।
तैसइ लछिमन, भरत, सत्रुधन, खेलत डोलत पास।।
दसरथ राय न्हाय भोजन कौं बैठे अपने धाम।
लाऔ बेगि राम–लछिमन कौं, सुनि आए सुखधाम।।
बैठे सँग बाबा के चारौं, भैया जैंवन लागे।
दसरथ राय आपु जैंवत हैं, अति आनँद अनुरागे।।
लघु–लघु ग्रास राम मुख मेलत, आपु पिता–मुख मेलत।
बाल–केलि कौ बिसद परम सुख, सुख–समुद्र नष्प झेलत।।
दार, भात, घष्त, कढ़ी सलौनी, अरू नाना पकवान।
आरोगत नष्प चार पुत्र मिलि, अति आनंद–निधान।।
अचवन करि, पुनि जल अचवायौ, जब नष्प बीरा लीनौ।
राम–लखन अरू भरत–सत्रुहन, सबहिंन अचवन कीनौ।।
बीरा खाय चले खेलन कौं, मिलि कै चारौं बीर।
सखा संग सब मिले बराबर, आए सरजू तीर।।
तीर चलावत, सिष्य सिखावत, धर निसान दिखरावत।
कबहुँक सधे अस्व चढ़ि आपुन, नाना भाँति नचावत।।
कबहुँक चार भ्रात मिलि अगिया जात परम सुख पावत।

हरिन आदि बहु जंतु किए बध, निज सुरलोक पठावत।।
यहि बिधि बन–उपबन बहु क्रीड़ा करी राम सुखदाई।
बालमीकि मुनि कही कृपा कर, कछु इक 'सुर' जो गाई।।
भई साँझ जननी टेरत है, कहाँ गए चारौं भाई।
भूख लगी ह्वैहै लालन कौं, लाऔ बेगि बुलाई।।
इतने माँझि चार भैया मिलि, आए अपने धाम।
मुख चुंबत, आरती उतारत, कौसल्या अभिराम।।
सौमित्रा केकइ सुख पावत, बहुबिधि लाड़ लड़ावत।
मधु–मेवा–पकवान–मिठाई, अपने हाथ जेंवावत।।
चारौं भ्रातनि स्रमित जानि कै, जननी तब पाढ़ाए।
चापत चरन जननि अप–अपनी, कछुक मधुर स्वर गाए।।
आई नींद, राम सुख पायौ, दिन कौ स्रम बिसरायौ।
जागे भोर, दौरि जननी ने अपने कंठ लगायौ।।[9]

(श्रीराम) स्वर्ण के आँगन में घुटनों के बल चलने लगे। माता कौशल्या उनकी शोभा देख रही हैं। नीले कमल के समान शरीर पर पीली झँगुली (बालकोंका झीना कुर्ता) ऐसी शोभा देती है जैसे बादलों में बिजली की चमक दिखायी पड़ती हो। कभी मक्खन लेकर खाते हैं, कभी खेल करते हुए फिर माँगते हैं। माता उनके मुख का चुम्बन करती हैं, समझाती हैं (कि गोरस बिखेरना नहीं चाहिये)। फिर आकर माता के गले से लग जाते हैं। श्रीकाकभुशुण्डिजी (इस बालरूपका) दर्शन करने आये और पाँच वर्षतक (बाल–लीला) देखते रहे। उन्होंने (प्रभुकी) स्तुति की और स्वयं वरदान प्राप्त किया। इससे अपने जीवन को सफल माना। कृपा करके (प्रभुने) उन्हें अपने दिव्यधाम में भेज दिया तथा अपने (ऐश्रवर्यमय) रूप का दर्शन कराया। जो कोई उन (काकभुश्ज्ञुण्डिजी) के आश्रम में निवास करता है, उस पर माया का प्रभाव नहीं पड़ता। प्रातःकाल माता जगाती हैं– 'मेरे बच्चे श्रीराम! उठो।' जब वे उठकर बैठ जाते हैं, तब माता दातौन ले आती हैं, वे श्याम–वदन प्रभु दातौन करते हैं। फिर चारों भाई एकत्र होकर शहद, मेवे तथा नाना प्रकार के पकवानों का कलेऊ करके जल से आचमन करते हैं। (माताएँ) उनकी (मग्ङल–) आरती

9. सुदर्शन सिंह अनुवादक–श्री सूरदास रचित सूररामचरितावली, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ0 210

करती हैं। फिर वे स्नान करते हैं। चारों भाई एक साथ ही श्रृंगार करते हैं। उस समय की शोभा का तो वर्णन ही नहीं हो सकता। अनेक रंगों की सुन्दर चौकोनी टोपियाँ उनके मस्तक पर इन्द्रधनुष के समान शोभा देती हैं। सुन्दर रंग वाली डोरियों में सजी हुई मोतियों की लड़ियाँ अलकों में गूँथी गयी हैं; वे ऐसी लगती हैं मानो सरस्वती और यमुनाकी धाराओं के मध्य (प्रयाग के त्रिवेणी–संगम पर) गंगा की धारा शोभा दे रही हो। ललाट पर गोरोचन का परम मनोहर तिलक लगा है, मानो उसने त्रिभुवन की शोभा को और अधिक बढ़ा दिया है। खज्जन के समान (चपल एवं कजरारे) दोनों नेत्रों के मध्य में नासिका ऐसी शोभित है मानो दो खज्जन पक्षी लड़ाई कर रहे हों और उनक ीवह लड़ाई दूर करने के लिये उन्हें समझाने उनके बीच में आकर एक तोता बैठ गया है। नासिका के बेसर में चार रंग के मोती (मणि) शोभा दे रहे हैं; वे ऐसे लगते हैं जैसे (पुखराजरूप वाले) बृहस्पति, (नीलमरूप नीले) शनि तथा (मुक्ता रूप उज्ज्वल) शुक्र एकत्र होकर (हीरे के रूप में प्रकाशित) सूर्य के द्वार पर आ गये हैं। सुन्दर कुण्डल कपोलों पर शोभा दे रहे हैं और उनकी ज्योति गण्डस्थल (कर्णपल्ली के नीचे) झलमलाती है; वह ऐसी लगती है मानो कमल के ऊपर सूर्य की तीक्ष्ण किरणें पड़ रही हों। ओष्ठ लाल–लाल हैं, मुसकराते समय सुन्दर ठुड्डी और दन्तपंक्ति इस प्रकार दमक उठती है मानो एक समान बोये अनार के बीजों को चन्द्रमा अत्यन्त प्रेम से अमृत से सींच रहा हो। कठुले के मध्य हीरा तथा अनेक मणियों एवं मोतियों के हार इस प्रकार शोभित हो रहे हैं मानो सभी नक्षत्र–मण्डल ध्रुवतारा की अनेक बार प्रदक्षिणा कर रहे हैं। (कर में) रत्न जटित कंकण, (भुजा में) बाजुबंद और (अँगुलियों में) मणिजटित अँगमठियाँ इस प्रकार सजी हैं मानो कामदेवरूपी वृक्ष की बड़ी–छोटी सभी शाखाएँ हों। इस छटाको देख–देखकर मन मोहित होता है। शरीर के मध्य–भाग कटिकी करधनी का रूपझुन–शब्द सुनकर (दूसरे हंस की ध्वनि के भ्रम से) हंस कूदने लगते हैं। चरणों में नूपुर का शब्द होता है और लाल रंग की जूतियाँ हैं– इनकी उपमा भला, कौन सोच सकता है। माता सब वस्त्राभूषणों से श्रृंगार करके प्यार करती

है तथा श्रीरामचन्द्र की रूप–माधुरी देखकर फिर उसे दप्रण में देखती है और उन्हें भी (दप्रण) दिखलाती है। सुखनिधान श्रीराम दप्रण में अपना प्रतिबिम्ब देखकर हँस देते हैं। उनकी भाँति ही सजे हुए लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुधन भी उनके आसपास ही खेलते हुए घूमते हैं। महाराज दशरथ स्नान करके अपने भवन में जब भोजन करने बैठे (तब बोले–) 'श्रीराम–लक्ष्मण को शीघ्र यहाँ ले आओ।'(पिता जी बात) सुनकर सुखधाम चारों भाई आ गये और पिता के साथ बैठकर भोजन करने लगे। महाराज दशरथ स्वयं भोजन करते हैं तथा अत्यन्त आनन्द से प्रेम पूर्वक छोटे–छोटे ग्रास श्रीरामके मुख में डालते हैं, श्रीराम भी पिता के मुख में ग्रास देते हैं। यह बालक्रीडा का निर्मल परमानन्द सुख–समुद्र महाराज दशरथ प्राप्त कर रहे हैं। महाराज अपने अत्यन्त आनन्दनिधान चारों पुत्रों के साथ घृतयुक्त दाल–भात, सुन्दर कढ़ी तथा नाना प्रकार के पकवानों को आरोगते (भोजन करते) हैं। स्वयं आचमन करके कुमारों को भी आचमन कराया। जब महाराज ने पान का बीड़ा ले लिया, तब श्रीराम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुधन सभी ने स्वयं फिर से आचमन किया और फिर चारों भाई पान के बीड़े खाकर एक साथ खेलने चले। बराबरी की अवस्थावाले सभी सखा आकर साथ मिल गये, फिर सब सरयू किनारे आये। (वहाँ) बाण चलाते हैं, (बाण–विद्या सीखने वाले छोटे बालक रूपी) शिष्यों को शिक्षा देते हैं; निशान रखकर (उसका वेध) दिखलाते हैं। कभी स्वयं शिक्षित घोड़े पर चढ़कर उसे अनेक प्रकार से नचाते हैं। कभी चारों भाई एक साथ आखेट के लिये जाकर अत्यन्त आनन्द पाते हैं, वहाँ मृग तथा अनेक प्रकार के बहुत–से वन्य पशुओं को मारकर उन्हें अपने वैकुण्ड–धाम भेज देते हैं। इस प्रकार श्रीराम ने वनों तथा उपवनों में बहुत सुखदायक क्रीडा की। कृपा करके महर्षि वाल्मीकि ने उनका वर्णन किया है; उसमें से कुछ थोड़ी का गान सूरदास कर रहा है। सायंकाल होने पर माताएँ पुकारने लगती हैं– 'चारों भाई कहाँ गये ? हमारे लालों को भूख लगी होगी ! उन्हें शीघ्र बुला लाओ।' इसी बीच चारों भाई एक साथ अपने भवन में आ गये। परम मनोहर माता कौशल्या उनके मुख का चुम्बन करती हैं तथा उनकी आरती

उतारती हैं। माता सुमित्रा तथा कैकेयी भी अनेक प्रकार से उन्हें प्यार करती और सुख का अनुभव करती हैं। मधु, मेवे, पकवान तथा मिठाइयाँ अपने हाथों उन्हें खिलाती हैं। फिर माता ने चारों भाइयों को थका हुआ समझकर शयन करा दिया। माता कुछ मधुर स्वर से गाती हुई अपनी सुध–बुध भूलकर चरण दबाने लगीं। श्रीराम को निद्रा आ गयी, उनकी दिन की थकावट दूर हो गयी और विश्राम प्राप्त हुआ। प्रातः काल होने पर जब वे रोने लगे, तब दौड़कर माता ने गले से लगा लिया।

विश्वामित्र-यज्ञ-रक्षा

बिस्वामित्र बड़े मुनि कहियत, यज्ञ करत निज धाम।
मारिच और सुबाहु महासुर, बिघन करत दिन–जाम।।
परब्रह्म–अवतार जानि कै, आए नष्प के पास।
दसरथ राय बहुत पूजा–बिधि, किए प्रसन्न उल्लास।।
भोजन कर जबहीं जु बिराजे, तब भाष्यौ मुनिराय।
यज्ञ सफल कीजै मेरौ, अब दीजै राम पठाय।।
तब नष्प कह्यौ राम हैं बालक, मोकौं आज्ञा कीजै।
तब दुज कह्यौ राम परमेस्वर, बचन मान यह लीजै।।
गुरू बशिष्ठ सब बिधि समुझाए, राम–लखन सँग दीन्हे।
मारग मैं अहिल्या उद्धारी, नावक निज पद छीने।।
बिस्वामित्र सिखाई बहु बिधि, बिद्या धनुष प्रकार।
मारग मैं ताड़का जु आई, धाई बदन पसार।।
छिन मैं राम तुरत सो मारी, नैंक न लागी बार।
दीनी मुक्ति जानि निज महिमा, आए ऋषि के द्वार।।
कीन्हे बिप्र–जज्ञ परिपूरन, असुर बिघन कों आए।
अगनि–बान कर दहन कियौ है, एक समुद्र पठाए।।[10]

विश्वामित्र जी बड़े (प्रसिद्ध) मुनि कहे जाते हैं, वे अपने आश्रम में यज्ञ किया करते थे; किंतु महान् (बलवान्) राक्षस मारीच और सुबाहु उसमें रात दिन विघ्न करते थे। परब्रह्म परमात्मा का अवतार हो गया, यह समझकर वे मुनि महाराज दशरथ के पास आये। महाराज दशरथ ने अत्यन्त प्रसन्नता और

10. सुदर्शन सिंह अनुवादक–श्री सूरदास रचित सूररामचरितावली, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ0 214, पद क्रमांक–203

उल्लास से बहुत प्रकार से उनकी पूजा की। जब मुनिराज भोजन करके (आसन पर) बैठ गये, तब बोले–'आप श्रीराम को मेरे साथ भेजकर अब मेरे यज्ञ को सफल कर दें।' तब महाराज ने कहा–'श्रीराम तो अभी बालक हैं, आप (यह कार्य करने की) मुझे आज्ञा दें।' इस पर मुनि ने कहा–'आप मेरी यह बात मान लें कि श्रीराम साक्षात् परमेश्वर हैं।' कुलगुरू महर्षि वशिष्ठ ने (भी महाराज को) बहुत प्रकार से समझाया, तब श्रीराम–लक्ष्मण को साथ कर दिया। मार्ग में श्रीराम ने अपने चरणरूपी (भवसागर की) नौका का स्पर्श कराकर अहिल्या का उद्धार किया। महर्षि विश्वामित्र ने अनेक प्रकार की धनुर्विद्या की शिक्षा दी। मार्ग में ही मुख फैलाकर दौड़ती हुई ताड़का राक्षसी आयी; किंतु श्रीराम उसे एक ही क्षण में मार दिया, उन्हें थोड़ी भी देर नहीं लगी। अपने माहात्म्य को समझकर उसे (प्रभु ने) मोक्ष–प्रदान किया और महर्षि के आश्रम पर आये, वहाँ विप्रों के यज्ञ को परिपूर्ण किया; उस यज्ञ में विघ्न करने जो राक्षस आये, उनमें से एक (मारीच) को (बाण मारकर) समुद्र के पास भेज (फेंक) दिया और शेष को अग्नि बाण से भस्म कर दिया।

सीता-स्वयंवर

जनक बिदेह कियौ जु स्वयंबर, बहु नष्प–बिप्र बुलाए।
तोरन धनुष देव त्र्यंबक कौ, काहू जतन न पाए।।
बिस्वामित्र मुनि बेगि बुलाए, सकल सिष्य लै संग।
राम–लखन सँग लिए आपने, चले प्रेम–रस रंग।।
जहँ–तहँ उझकि झरोखा झाँकत, जनक–नगर की नार।
चितवनि कृपा राम अवलोकत, दीन्हौ सुख जो अपार।।
कियौ सनमान बिदेह नष्पति ने उपबन बासी कीन्हौ।
देखन राम चले तिहि पुर कौं, सुख सबहिन कौं दीन्हौ।।
सब पुर देखि, धनुष–पुर देख्यौ, देखे महल सुरंग।
अदभुत नगर बिदेह बिलाकत, सुख पायौ सब अंग।।
कहत नारि सब जनक–नगर की, बिधि सौं गोद पसार।
सीताजू कौं बर यह चहियै, है जोरी सुकुमार।।
अपने धाम फिर तब दोउ आए, जान भई कछु साँझ।
कर दंडवत, परसि पद ऋषि के, बैठे उपबन माँझ।।
संध्या भई कृत्य नित करिकै कीन्ही ऋषि परनाम।

पौढ़े जाय चरन–सेवा दुज, कर कै अति बिसराम।।
ब्रह्म–मुहूरत भयौ सबेरौ, जागे दोऊ भाई।
कर परनाम देव–गुरू–दुज कौं, जल सौं स्नान कराई।।
आए भूप देस–देसन के, जुरी सभा अति भारी।
तहाँ बुलाए सकल दुजन कौं, जनक–सभा मंझारी।।
कौसिक मुनि तहँ छबि सौं पधारे, लिए सिष्य सँग सात।
चले नित्य आह्निक सब कर दुज, उर आनँद न समात।।
दोनौं भ्रात सेग मैं लीन्हे, आए राज–दुवार।
जहँ बैठे सब भूप ओप सों, बाढ्यौ गरब अपार।।
अपने–अपने भुज–बल तोलत, तोरन धनुष पुरार।
कछु नहिं चलत खिसाय गए सब, रहे बहुत पचि हार।।
सीता कहत सहेलिन सौं पुनि, यही कहत रघुनंद।
तब उन कह्यौ सकल सुखसागर, सो ये परमानंद।।
बार–बार जिय सोच करत है, बिधि सौं बचन उचारी।
मन–क्रम–बचन यहै बर दीजौ, माँगत गोद पसारी।।
एक बार सुर देबी पूजत, भयौ दरस सखि! मोहि।
ता दिन तैं छिन कल न परत है, सत्य कहत हौं तोहिं।।
सब नष्ट पचे, धनुष नहीं टूट्यौ, तब बिदेह दुख पायौ।
क्रोध बचन करि सब सैं बोले, छत्री कोउ न रहायौ।।
यह सुनि लछिमन भए क्रोध–जुत, विषम बचन यौं बोले।
सूरजबंस नष्पति भूतल पर, जाके बल बिन तोले।।
कितिक बान यह धनुष रूद्र कौ, सकल बिस्व कर लैहौं।
आज्ञा पाय देव रघुपति की, छिनक माँझ हठ गैहौं।।
सब के मन कौ देख अँदेसौ, सीता आरत जानी।
रामचंद्र तबहीं अकुलाने, लीन्हौ सारंग पानी।।
छिन मैं कर लै कै जु चढ़ायौ, देखत ही सब भूप।
डार्‌यौ तोर अघात शब्द भयौ, जैसैं काल कौ रूप।।
स्ब ही दिसा भई अति आतुन, परसुराम सुनि पायौ।
परसु सम्हार सिष्य सँग लैकै, छिन ही मैं तहँ आयौ।।
जैजैकार भयौ जगती पर, जनकराज अति हरषे।
सुर बिमान सब कौतुक भूले, जै–धुनि सुमनन बरषे।।[11]

विदेह महाराज जनक ने (अपनी पुत्री श्रीजानकी जी का) स्वयंवर किया था और (उसके लिये) बहुत–से राजाओं तथा ब्राह्मणों को निमन्त्रित किया था; लेकिन कोई भी किसी उपाय से देवदेवेश श्रीशंकरजी का धनुष तोड़ नहीं सका।

11. *सुदर्शन सिंह अनुवादक–श्री सूरदास रचित सूररामचरितावली, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ0 215, पद क्रमांक–2047*

(महाराज ने) अपने समस्त शिष्यों को साथ लेकर शीघ्र आने के लिये महर्षि विश्वामित्र को (भी) आमन्त्रित किया। अनुराग के रग्ङ में निमग्न महर्षि श्रीराम–लक्ष्मण को अपने साथ लेकर चल पड़े। (जनकपुर पहुँचने पर) जनकपुरी की नारियाँ स्थान–स्थान पर खिड़कियों से झुक–झुककर श्रीराम को देखने लगीं। कृपापूर्वक उनकी ओर देखकर श्रीरामने भी उन्हें अपार आनन्द दिया। महाराज जनक ने सबका सम्मान किया और उन्हें अपार आनन्द दिया।महाराज जनक ने सबका सम्मान किया और उन्हें उपवन में ठहराया। (वहाँ से) श्रीराम नगर को देखने गये और सभी (नगरवासियों) को आनन्दित किया। पूरा नगर देखकर धनुष–यज्ञका मण्डप देखा तथा सुन्दर रंग के राजभवन देखे।महाराज जनक के अदभुत नगर को देखकर श्रीराम ने सभी अंगों से (भली प्रकार) सुख पाया। जनकपुरी की सभी नारियाँ ब्रह्मा से अच्जल फैलाकर कहने (प्रार्थना करने) लगीं–'श्रीसीताजी को यही वर मिलना चाहिये। ये सुकुमार ही उनकी योग्य जोड़ी हैं।' फिर दोनों भाई कुछ संध्या हुई समझकर अपने निवास स्थान पर लौट आये। वहाँ महर्षि को दण्डवत् प्रणाम करके उनके चरण छूकर (मुनियों की) सभा में बैठ गये। संध्या हो जाने पर नित्यकर्म करके फिर महर्षि को प्रणाम किया; फिर मुनिकी चरण सेवा (चरण दबाने की सेवा) करके तब जाकर सोये और सुखपूर्वक विश्राम किया। प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त होते ही दोनों भाई जाग गये। देवताओं, गुरू विश्वामित्र तथा (साथ के) ब्राह्मणों (मुनियों) को प्रणाम करके स्वच्छ जल में उन्होंने स्नान किया।(उधर) देश–देश के राजा आये हुए थे। स्वयंवर–सभा में भारी भीड़ एकत्र हो गयी थी। महाराज जनक ने वहाँ सभा में आने के लिये सभी ब्रह्मणों को आमन्त्रित किया। अपने साथ सात शिष्यों को लेकर महर्षि विश्वामित्र भी बड़ी शोभा के साथ वहाँ आये। सभी ब्राह्मण दैनिक पूजनादि कर्म करके वहाँ आये, उनके हृदय में आनन्द समाता नहीं था। (महर्षि विश्वामित्र) दोनों भाइयों (श्रीराम–लक्ष्मण) को साथ लिये उस राजसभा में आये,

जहाँ अपार गर्व से गर्विष्ठ हुए सब नरेश बड़ी छटा से बैठे थे। वे सभी शंकरजी का धनुष तोड़ने के लिये अपनी–अपनी भुजाओं का बल आजमा रहे थे; किंतु बहुत श्रम करके थक गये, उनकी एक भी चली नहीं, इससे खीझकर लौट गये। श्रीजानकी जी (उसी समय) सखियों से पूछने लगीं– 'ये ही श्रीरघुनाथ कहे जाते हैं?' तब उन सखियों ने कहा– 'ये समस्त सुखों के सागर परमानन्दस्वरूप हैं।' बार–बार वे (श्रीजानकी) हृदय में चिन्ता करने लगीं। ब्रह्मा (भाग्य–विधाता) से प्रार्थना करने लगीं–'मैं अञ्जल फैलाकर माँगती हूँ कि मन, वाणी, कर्म–(सभी प्रकार सच्चे भाव) से यही पति आप मुझे दें।' (फिर सखियों से बोलीं–) 'सखी! तुमसे सच कहती हूँ, एक बार देवताओं तथा देवी का **पूजन** करते समय मुझे इनका दर्शन हुआ, उसी समय सक एक क्षण के लिये भी मुझे शान्ति नहीं मिल रही है।' सब नरेश चेष्टा करके थक गये, (फिर भी) धनुष नहीं टूटा, तब महाराज जनक को बड़ा दुःखहुआ– वे क्रोधपूर्वक सबसे बोले– 'अब कोई क्षत्रिय (संसार में) रहा ही नहीं।' यह सुनते ही लक्ष्मण जी क्रोधित हो गये और यह कठोर वाणी बोले– 'महाराज! इस पृथ्वी पर ही सूर्यवंश भी है, जिसके बल की कोई तुलना ही नहीं है। यदि श्रीरघुनाथजी की आज्ञा पा जाऊँ तो यह शंकरजी का धनुष तो किस गणना में है; मैं एक क्षण में बलपूर्वक पूरे विश्व को हाथ में उठा लूँगा।' सब के मन का सन्देह समझकर तथा श्रीसीताजी को आर्त (व्याकुल) समझकर श्रीरामचन्द्र उसी समय उठे और शीघ्रता से धनुष को हाथ में उठा लिया, समस्त नरेशों के देखते–देखते हाथ में धनुष लेकर (डोरी) चढ़ा दी और (खींचकर) उसे तोड़ दिया। उसके टूटने का शब्द इतना भयंकर हुआ मानो महाकाल की गर्जना हो। उससे सम्पूर्ण दिशाएँ अतयन्त आकुल हो गयीं। उस शब्द को परशुरामजी ने भी सुना, इससे (अपना) परशु (फरसा) सम्हाले शिष्यों को साथ लेकर (योगबल से) क्षणभर में वहाँ आ गये। संसार में (सब कहीं) जय–जयकार होने लगा। महाराज जनक को बड़ा हर्ष हुआ। विमानों पर बैठे देवता सब कुतूहल (आकाश–विहार) भूल गये और 'जय हो, जय हो!' कहते हुए पुष्पों की वर्षा करने लगे।

चारों भाइयों का विवाह

जनकराज तब बिप्र पठाए, बेग बरात बुलाई।
दसरथ राज बाजि–गज लैकै, सबही सौंज–तुराई।।
चली बरात बिपुल धन लैकै, जुरे मनुज नहिं पार।
सोभा सिंधु कहत नहिं आवै, बरनन करत उचार।।
गुरू बसिष्ठ मुनि लगन दियौ सुभ, सुभ नछत्र, सुभ बार।
आए जान नष्पति सनमाने, कीन्हीं अति मनुहार।।
ब्याह–केलि सुख बरनन कीन्हौ, मुनि बाल्मीकि अपार।
सो सुख 'सूर' कह्यौ वो कीरति, जगत करी बिस्तार।।
बेद–सास्त्र मथ करी ब्याह–बिधि, सोइ कीन्हीं नष्पराय।
राम–लखन अरू भरत–सत्रुहन, चारौं दिए बिबाह।।
होम, हवन, दुज–पूजा, गनपति, सूरज, सक्र, महेस।
दीन्हौ दान बहुत बिप्रन कौं, राजा मिथिल–नरेश।।
उतसव भयौ परम आनँद कौ, बहुत दायजौ दीन्हौ।
भए बिदा दसरथ नष्प नष्प सौ, गमन अवधपुर कीन्हौ।।[12]

महाराज जनक ने तब (अयोध्या) ब्राह्मण भेजे और शीघ्र बारात लाने का आमन्त्रण दिया। महाराज दशरथ शीघ्रतापूर्वक घोड़े, हाथी तथा सभी साज सामान लेकर, अपार सम्पत्ति साथ बारात सजाकर चले। (बारात में) इतने मनुष्य एकत्र हुए कि उनका कोई पार नहीं। उस शोभा के समुद्र का वर्णन वाणी के द्वारा हो ही नहीं सकता। कुलगुरू वसिष्ठ जी ने शुभ नक्षत्र तथा शुभ दिन देखकर शुभ लग्न निश्चित किया। महाराज दशरथ को आया देखकर जनक जी ने अनका आदर किया तथा अनेक प्रकार से स्वागत–सत्कार किया। श्रीवाल्मीकि मुनिने इस व्याह–क्रीडा के अपार आनन्द का वर्णन किया है। सूरदास उसी आनन्द का वर्णन करते हैं– वह (श्रीराम की) कीर्ति तो संसार में स्वतः फैली हुई है। वेद और शास्त्रों का मन्थन करके (ऋषियों ने) जो विवाह–पद्धति निश्चित की है, महाराज जनक ने उसी विधिका पालन किया। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुध्न इन चारों कुमारों का विवाह कर दिया। श्रीमिथिलानरेश ने यज्ञ, हवन,

---

12. सुदर्शन सिंह अनुवादक–श्री सूरदास रचित सूररामचरितावली, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ0 218 व 219, पद क्रमांक–205

ब्राह्मणपूजन,गणपति, सूर्य, इन्द्र तथा शंकर आदि देवताओं का पूजन करके ब्राह्मणों को बहुत अधिक दान दिया। यह परम आनन्ददायी महोत्सव हुआ तथा (जनक जी ने) बहुत दहेज दिया। तब महाराज दशरथ महाराज जनक से विदा लेकर अयोध्या के लिये प्रस्थान किया।

परशुराम-समाधान

भष्णुपति आए जानि जब रघुपति, मिले धाय सिर नाय।
दसरथ राय बिनय बहु कीनी, जिय मैं अति डरपाय।।
तब मुनि कह्यौ धनुष क्यौं तोरेउ, रूद्र परम गुरू मेरे।
रामचंद्र पूरन पुरूषोत्तम, नैक नयन जब हेरे।।
लीन्हौ अंस खैंचि भष्णुपति कौ, अपने रूप समायौ।
करौ जाय तप सैल महेंद्र प,सु मुनिबर सिर नायौ।।[13]

(मार्ग में) परशुरामजी को आया जानकर श्रीरघुनाथ जी दौड़कर उनसे मिले और मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। महाराज दशरथ ने हृदय में बहुत डरते हुए अनेक प्रकार से प्रार्थना की। तब परशुरामजीने कहा–"भगवान् शंकर तो मेरे परम गुरू हैं, (तुमने उनका) धनुष क्यों तोड़ा? (यह सुनकर) पूर्ण–पुरूषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी ने तनिक आँखों की कोर से देखकर परशुराम जी का (भगवदीय)अंश खींचकर अपने स्वरूप में लीन कर लिया। (और बोले–)'अब आप जाकर महेन्द्र पर्वत पर तपस्या करें।' यह सुनकर मुनि परशुराम जी ने (आज्ञा स्वीकार करते हुए) मस्तक झुका दिया।

अयोध्या-आगमन

अति आनंद अयोध्या आए, कियौ नगर–श्रंगार।
कदली खंभ, चौक मोतिन के, बाँधी बंदनवार।।
कियौ प्रबेस राजभवनन मैं, रामचंद्र सुखरास।
अदभुत भवन बिराजत रतनन, सूरज कोटि प्रकास।।
द्वादस बरष बिराजे वा थल, फिर भू–भार हरौ।
कैकइ–बचन प्रमान किये नष्प, तब यह काज करौ।।[14]

---

13. सुदर्शन सिंह अनुवादक–श्री सूरदास रचित सूररामचरितावली, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ0 218 व 219, पद क्रमांक–205

14. सुदर्शन सिंह अनुवादक–श्री सूरदास रचित सूररामचरितावली, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ0 220, पद क्रमांक–206

(महाराज दशरथ) अत्यन्त आनन्दपूर्वक अयोध्या आ गये। नगर खूब सजाया गया था। (स्थान–स्थान पर) केले के खंभे लगे थे, मोतियों से चौक बनाये गये थे, बन्दनवार बँधी थी। सुखराशि श्रीरामचन्द्र जी ने (सजे हुए नगर में आकर) राजभवन में प्रवेश किया। वह अद्भुत राजभवन रत्नों की जगमगाहट से करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान होता शोभा दे रहा था। बारह वर्ष (प्रभु) वहाँ विराजमान रहे। फिर जब महाराज दशरथ ने रानी कैकेयी के वचन (वरदान) को प्रमाणित किया (माना), तब पृथ्वी के भार को दूर करने का कार्य श्रीराम किया।

वनावास-लीला

बचन समझ नष्प आज्ञा कीन्ही, देव उपाय करौ।
रामचंद्र पितु–आज्ञा मानी, जिय मैं बचन धरौ।।
यह भू–भार उतारन रघुपति, बहुत ऋषिन सुख दैन।
ब्नोबास कौं चले सिया सँग, सुख–निधि राजिव–नैन।।
मारग मैं हरि कृपा करी है, परम भक्त इक जान।
तहँ तैं गए जु चित्रकूट कौं, जहाँ मुनिन की खान।।
बालमीकि मुनि बसत निरंतर, राम–मंत्र उच्चार।
ताकौ फल यह आज भयौ मोहि, दरसन दियौ कुमार।।
पूजा करि पधराय भवन मैं, रामचंद्र परनाम।
कियौ बिबिध बिधि पूजा करि कै, ऋषि–चरनन सि रनाम।।
बहुत दिवस लौं बसे जगत–गुरू, चित्रकूट निज धाम।
किए सनाथ बहुत मुनि–कुल कौं, बहु बिधि पूरे काम।।
भरत जान जिय मैं रघुपति कौ दुःसह परम बियोग।
आए धाम संग सब लैकै, पुरबासी, गष्ह लोग।।
रामचंद्र पुनि सब जन देखे, पिता न देखन पाए।
पूछी बात, कह्यौ तब काहू, मन बहु बिधि बिलखाए।।
बेद–रीति करि रघ्घुपति सब बिधि, मरजादा अनुसार।
बहुत भाँति सब बिधि समुझाए, भरत करी मनुहार।।
गुरू बसिष्ठ मुनि कह्यौ भरत सौं राम ब्रह्म–अवतार।
बन मैं जाय बहुत मुनि तारैं, दूर करैं भुव–भार।।
पुनि निज बिस्वरूप जो अपुनौ, सो हरि जाय दिखायौ।
आज्ञा पाय चले निज पुर कौं, प्रभुहि गीत समुझायौ।।
कछु दिन बसे जु चित्रकूट मैं, रामचंद्र सह भ्रात।
तहाँ तैं चले दंडकाबन कौं, सुखनिधि साँवल गात।।

मारग मैं बहु मुनि–जन तारे, अरू बिराध रिपु मारे।
बंदन कर सरभंग महामुनि, अपने दोष निवारे।।
दरसन दियौ सुतीच्छन गौतम, पंचबटी पग धार।
तहाँ दुष्ट सूप्रनखा नारी, करि बिन नाक उधार।।
यह सुनि असुर प्रबल दल आए, छिन मैं राम संहारे।
कीन्हे काज सकल सुर–मुनि के, भुब के भार उतारे।।
मुनि अगस्त्य आस्रम जु गए हरि, बहु बिधि पूजा कीन्ही।
दिब्य बसन दीने जब मुनि नैं, फिर यह आज्ञा दीन्ही।।
दसकंधर कौं बेगि सँहारौ, दूरि करौ भुब–भार।
लोपामुद्रा दिब्य बस्त्र लै, दीने जनक–कुमारि।।
सूप्रनखा जब जायय पुकारी, नाक–कान लै हात।
रावन क्रोध कियौ अति भारी, अधर फरक अति गात।।
गयौ मारीच आस्रमहिं, तबहीं, वानैं बहु समझायौ।
तब मारीच कह्यौ दसकंधर, बिनती बहुत करायौ।।
रामचंद्र अवतार कहत हैं, सुनि नारद मुनि पास।
प्रगट भए निसिचर मारन कौं, सुनि वो भयौ उदास।।
कर गहि खडग, तोर बध करिहौं, सुनि मारिच डर मान्यौ।
रामचंद्र के हाथ मरूँगौं, परम पुरूष–फल जान्यौ।।[15]

देवताओं ने उपाय किया (कैकेयी की बुद्धि भ्रम उत्पन्न करके श्रीराम के लिये वनवास का वरदान मँगवाया)। महाराज दशरथ ने भी अपने दिये हुए वचनों का ध्यान करके आज्ञा दे दी। श्रीरामचन्द्र जी ने हृदय से पिता के वचनों को स्वीकार करके उनकी आज्ञा का पालन किया और वे सुखनिधान कमललोचन श्रीरघुनाथ बहुत–से ऋषियों को आनन्द देने के लिये एवं पथ्वी का भार दूर करने के लिये श्रीजानकी जी के साथ वन में निवास करने चल पड़े। मार्ग में एक परमभक्त (केवट) को पहचानकर उस पर प्रभु ने कृपा की और फिर वहाँ से चित्रकूट गये, जहाँ मुनियों का समुदाय निवास करता था। वहाँ निरन्तर श्रीराममन्त्र का जप करते हुए मुनि वाल्मीकि रहते थे। उन्होंने यह माना कि 'उस निरन्तर जपका ही यह फल मुझे आज मिला है कि राजकुमार श्रीराम–लक्ष्मण ने मुझे दर्शन दिया।' श्रीरामचन्द्र जी को अपने आश्रम में ले

15. सुदर्शन सिंह अनुवादक–श्री सूरदास रचित सूररामचरितावली, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ0 221 पद क्रमांक–208

जाकर उन्होंने पूजा की और उनके चरणों में प्रणाम किया। वे जगदुरू श्रीरघुनाथ अपने निजधाम चित्रकूट में बहुत दिनों तक रहे। मुनि कुलों को उन्होंने सनाथ किया। (श्रीराम को पाकर) उन (मुनियों) की इच्छाएँ सब प्रकार पूर्ण हो गयीं। श्री भरत जी रघुनाथ जी का वियोग परम दुःस्सह समझकर (ननिहाल से) अयोध्या आये और वहाँ से महाराज दशरथ के बिना (क्योंकि महाराज देहत्याग कर चुके थे) सभी अयोध्या नगर के निवासी नागरिकों एवं अपने परिवार के लोगों साथ लेकर तुरंत ही (चित्रकूट के लिये) चल पड़े। सब लोग चित्रकूट आ गये और वहाँ श्रीराम के श्रीमुख का दर्शन करके सबकी उदासी दूर हो गयी। श्रीरामचन्द्र जी ने सब लोगों को देखा, किंतु पिता के दर्शन नहीं हुए; इसका कारण उन्होंने पूछा। तब किसी ने (महाराज दशरथ के परलोक गमन का) संवाद कहा, इससे (प्रभु) मन से बहुत ही दुःखी हुए और अनेक प्रकार से विलाप करने लगे। श्रीरघुनाथ जी ने मर्यादा के अनुसार (पिंता के लिये) सब वैदिक रीतिको पूर्ण किया। श्रीभरत जी ने अनेक भाँति से सब प्रकार समझाया तथा (अयोध्या लौटने के लिये) अनुनय–विनय की (किंतु श्रीराम अपने व्रत पर दृढ़ रहे)। कुलगुरू महर्षि वसिष्ठ जी ने भरत जी से कहा–'श्रीराम तो साक्षात् परब्रह्म हैं। इन्होंने (भू–भार हरण के लिये) अवतार धारण किया है। अतः ये वन में निवास करते हुए बहुत–से मुनियों का उद्धार करेंगे तथा पष्थ्वी का भार दूर करेंगे।' फिर श्रीराम ने अपना जो विश्व रूप है, उसका सबको दर्शन कराया तथा सबको प्रभु ने गीता (तत्त्वज्ञात) का उपदेश देकर समझाया। इससे उनकी आज्ञा पाकर सब लोग अयोध्या लौट आये। श्रीरघुनाथ जी भाई (लक्ष्मण) के साथ कुछ दिन चित्रकूट में रहे। फिर वे सुखनिधान श्यामशरीर वहाँ से दण्डक वन की चल पड़े। मार्ग में बहुत–से मुनिगणों का उन्होंने उद्धार किया तथा शत्रुता करने वाले विराध राक्षस को मारा। महामुनि शरभग्ङ उनकी वन्दना करके अपने सभी दोषों को नष्ट कर दिया (और श्रीराम का दर्शन करते हुए देह त्यागकर परम पद को प्राप्त हुए)। प्रभु ने मार्ग में गौतम गोत्रीय सुतीक्ष्ण मुनि को दर्शन दिया और फिर पंचवटी पधारे। वहाँ पर शूप्रणखा नामक दुष्टा राक्षसी

स्त्री को बिना नाक की करके (नाक काटकर) उसका उद्धार किया (उसकी पाप–प्रवषत्ति को दूर किया)। यह समाचार पाकर (खर–दूषणादि) राक्षसों के प्रबल दल (युद्ध करने) आये; किंतु श्रीराम ने क्षणभर में उनका संहार कर दिया। इस प्रकार देवताओं तथा मुनियों के सब कार्य पूरे किये और पष्थ्वी का भार दूर किया। वहाँ से जब श्रीराम महर्षि अगस्त्य के आश्रम पर गये, तब उन्होंने बहुत प्रकार से सत्कार किया, दिव्य वस्त्र भेंट किया और यह आज्ञादी– 'आप शीघ्र रावण का संहार काके पष्थ्वी का भार दूर कर दें।'(ऋषिपत्नी) लोपामुद्रा जी ने दिव्य वस्त्र लाकर श्रीजनकनन्दिनी जी को दिया। जब शूप्रणखा ने हाथ में अपने कटे नाक–कान लेकर (लंका में) जाकर पुकार की, तब रावण को बहत अधिक क्रोध आया। उसके होठ फड़कने लगे, शरीर काँपने लगा। वह मारीच के आश्रम पर गया और उसे अनेक प्रकार से (सीताहरण में सहायक होने के लिये)समझाने लगा। जब मारीच ने रावण की बहुत प्रार्थना की और कहा–'श्रीरामचन्द्र जी अवतार कहे जाते हैं। देवर्षि नारद से मैंने यह बात सुनी है। राक्षसों का संहार करने के लिये ही वे (पष्थ्वी पर) प्रकट हुए हैं। ' यह सुनकर वह (रावण) उदास हो गया (और बोला–) 'मैं हाथ में तलवार लेकर (स्वयं) तेरा वध करूँगा।' यह सुनकर मारीच भयभीत हो गया, उसने इसी को परम पुरूषार्थ समझा कि (इस दुष्ट रावण के हाथों मरने के बदले) 'मैं श्रीराम के हाथों मरूँगा।'

सीता-हरण

कपट कुरंग–रूप धरि आयौ, सीता बिनती कीन्ही।
रामचंद्र कर सायक लैकै, मारन की बिधि कीन्ही।।
मार्‌यौ धनुष–बान लै ताकौं, लछिमन नाम पुकार्‌यौ।
लछिमन नाम सुनत तहँ आयौ, अवसर दुष्ट बिचार्‌यौ।।
धरि कक कपट बेस भिक्षुक कौ, दसकंधर तहँ आय।
हरि लीन्ही छिन मैं माया करि, अपनें रथ बैठाय।।
चल्यौ भाजि गोमायु–जंतु, लै केहरि कौ भाग।
इतनें रामचंद्र तहँ आये, परम पुरूष अड़ भाग।।
जब माया–सीता नहिं देखी, जिय मैं भए उदास।
पूछन लगे राम द्रुमगन सौं, बहुत बढ़ी दुख–रास।।

मारग मैं जटायु खग देख्यौ, बिकल भयौ तन–हीन।
बिनती करी राम! मैं तासौं, बहुत लड़ाई कीन।।
जब तन तज्यौ गध्द्ध रघुपति तब, बहुत करम–बिधि कीनी।
जान्यौ सखा राय दसरथ कौ, अपनी निज गति दीनी।।
मारग मैं कबंध रिपु मार्‌यौ, सूरपति–काज सँवार्‌यौ।
पंपापुर हरि तुरत पधारे, जल कौ दोष निवार्‌यौ।।[16]

(मारीच) कपट से हरिण का रूप बनाकर (पंचवटी) आया। श्रीजानकी जी ने (उसे मारने की) प्रार्थना की, इससे श्रीरघुनाथ जी ने बाण लेकर उसके मारने की तैयारी कर ली। धनुष पर बाण चढ़ाकर जब उसे मारा, तब (मरते समय) उसने लक्ष्मण का नाम लेकर पुकार की। अपना नाम सुनकर लक्ष्मण जी वहाँ आ गये। दुष्ट रावण ने यही सुअवसर समझा और छलसे भिखारी का वेष बनाकर (श्रीराम को) पर्णकुटी के पास आ गया। एक क्षण में माया करके उसने श्रीजानकी जी का हरण कर लिया और उन्हें अपने रथपर बैठाकर इस प्रकार भागा, जैसे सिंह के भाग का शिकार लेकर श्रषाल भागे। बड़भागी परमपुरूष श्रीरामचन्द्र जी इतने में ही (शीघ्र ही) वहाँ (पर्णकुटी के पास) आ गये। जब माया सीता वहाँ नहीं दिखायी पड़ीं (वास्तविक सीता तो पहले ही अग्नि छिपा दी थी), तब मन मे बहुत उदास हुए। श्रीराम का दुःख समूह अत्यन्त बढ़ गया, (व्याकुल होकर) वे वुक्ष समूहों से (श्रीजानकी का) पता पूछने लगे। मार्ग मे जटायु पक्षी (गीध) को उन्होंने देखा, जो पंख कटने से अत्यन्त व्याकुल हो रहा था। उसने प्रार्थना की–'श्रीराम! मैंने उस राखस से बहुत लड़ाई की।' जब गीध ने शरीर त्याग दिया, तब उसे महाराज दशरथ का मित्र समझकर श्रीरघुनाथ जी ने स्वयं (भली प्रकार से) विधिपूर्वक उसका अन्तिम संस्कार किया और निजधाम (वैकुण्ठ) भेज दिया। (वहाँ से आगे चलकर) मार्ग में शत्रु कबन्ध को मारकर श्रीराम ने देवराज इन्द्र का कार्य पूरा कर दिया, फिर शीघ्र ही पम्पासरोवर पहुँचे और उसके जल का दोष दूर किया।

---

16. सुदर्शन सिंह अनुवादक–श्री सूरदास रचित सूररामचरितावली, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ0 224 पद क्रमांक–209

सीता की खोज

सबरी परम भक्त रघुपति की, बहुत दिनन की दासी।
ताके फल आरोगे रघुपति, पूरन भक्ति प्रकासी।।
दीन मुक्ति निज पुर की ताकौं, तब रघुपति चले आगे।
सीता–सीता बिलपत डोलत, परम बिरह सौं पागे।।
रबिनंदन जब मिले राम कौं, अरू भेंटे हनुमान।
अपनी बात कही उन हरि सौं, बालि बड़ौ बलवान।।
सप्तताल–बेधन हरि कीन्हौ, बालि छिनक मैं तारौ।
दीन्हौ राज राम रबिनंदन, सब बिधि का सँवारौ।।
सप्तदीप के कपि–दल आए, जुरी सैन अति भारी।
सीता की सुधि लैन चले कपि ढूँढ़त बिपिन मँझारी।।
जलनिधि तीर गए सब कपि मिलि, सुनि संपति की बानी।
लंक बसत सीता रिपुबन मैं, सब बानर यह जानी।।
राम–चरन करि सुमिरन मन मैं, चले पवन–सुत धाय।
राम–प्रताप बिघन सब मेंटे, पैठि नगर सुख पाय।।
धरि लघु रूप प्रबेस कियौ कपि, लंका–नगर मँझार।
राम–भक्त निज जान बिभीषन, भेटे हरि अँकवार।।
तब वानैं सब भेद बतायौ, देखी कपि सब लंका।
राम–चरन धरि हृदय मुदित मन, बिचरत फिरत निसंका।।
जाय असोक–बाटिका देखी, दरसन सीता कीन्ह।
कर दंडवत बहुत बिनती कर, राम–मुद्रिका दीन्ह।।
सब संदेस कह्यौ कपि सिय प्रति, सुनि हिय मैं धरि राख्यौ।
राम–सँदेस कहेउ तब सीता, जो बूझौ सो भाख्यौ।।
लागी भूख, चले उपबन मैं, नाना बिधि फल खायौ।
बिटप उखारि, उजार बिपिन कौं सबहिन कौं दरसायौ।।
सुनि पुकार निसिचर बहु आए, कूदि सबन सँहारे।
इंद्रजीत बलनिधि जब आयौ, ब्रह्म–अस्त्र उन डारे।।
तासों बँधे दसानन देखन चले पवन–सुत धीर।
रावन बहुत ज्ञान समझायौ, कथ–कथ कथा गँभीर।।
चले छुड़ाय छिनक मैं तबहीं, जार दई सब लंक।
कूदि चले गज–बन कौं जै करि, ज्यौं मषराज निसंक।।
आए तीर समुद्र, मिले कपि, मिले आय जहँ राम।
सुनि–सुनि कथा स्रवन सीता की पुलकित अति अभिराम।।[17]

(पम्पासरोवर के पास) श्रीरघुनाथ जी की बहुत दिनों की सेविका परम भक्ता शबरी रहती थीं। श्रीरघुनाथ जी ने उनके दिये फलों को आरोगा (भोजन

17. *सुदर्शन सिंह अनुवादक–श्री सूरदास रचित सूररामचरितावली, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ0 226 व 227, पद क्रमांक–210*

किया) और उन्हें परम भक्ति का उपदेश करके उपने लोक में निवास रूपी (सालोक्य–) मुक्ति प्रदान की। वहाँ से श्रीराम आगे चले, वे दारूण वियोग में निमग्न 'हा सीते! हा सीते !' कहते घूम रहे थे। जब सूर्यपुत्र सुग्रीव श्रीराम से मिले और हनुमान् जी से भेंट हुई, तब प्रभु से सुग्रीव ने अपनी बात कही (अपनी दशा निवेदित की) कि वाली बहुत बलवान् है (उसके भय से ही मैं यहाँ रहता हूँ)। प्रभु ने सात ताल के वृक्षों को विद्ध किया और एक क्षण में वाली को मारकर उसका उद्धार कर दिया। श्रीराम ने सुग्रीव को (किष्किन्धा का) राज्य देकर सब प्रकार से उनका काम बना दिया। सातों द्वीपों के वानरों के दल वहाँ आये, उनकी बड़ी भारी सेना एकत्र हुई। वे वानर श्रीजारकी जी का पता लगाने चल पड़े और वनों में ढूँढ़ने लगे।(अन्त में) सब वानर समुद्र के किनारे पहुँचे। वहाँ सम्पाती (गीध) की बात सुनकर वानरों को यह पता लगा कि लंका में शत्रु (रावण) के उपवन में श्रीजानकी जी रहती हैं। श्रीहनुमान् जी श्रीरघुनाथ जी के चरणों का स्मरण करके (लंका को) दौड़ पड़े। श्रीराम जी के प्रताप से उनके (मार्ग में आने वाले) सब विघ्न मिट गये और वे लंका पहुँचकर सुखी हुए। उन कपि श्रेष्ठ ने छोटा रूप धारण करके लंका–नगरी में प्रवेश किया। वहाँ विभीषण उन्हें श्रीराम का निज भक्त समझकर भुजाओं में भरकर हृदय से लगाया। उस समय विभीषण ने सब रहस्य बता दिया। हनुमान् जी ने पूरी लंका नगरी देखी, श्रीरघुनाथ जी के चरणों को हृदय में धारण करके प्रसन्नचित्त वे निःशङ्क घूमते–फिरते थे। (इस प्रकार घूमते हुए) जाकर उन्होंने अशोक–वाटिका देखी और वहाँ श्रीसीता जी का दर्शन किया। दण्डवत् प्रणाम करके, अनेक प्रकार से प्रार्थना की और श्रीरामचन्द्र जी की अँगूठी उनको दिया। श्रीहनुमान् जी ने श्रीजरनकी जी से सब समाचार कहा, उसे सुनकर उन्होंने मन में रख लिया और श्रीजानकी जी ने जो कुछ श्रीरघुनाथ जी का समाचार पूछा– वह सब हनुमान् जी ने बताया। उन्हें भूख लग गयी थी, इससे उपवन में जाकर उन्होंने अनेक प्रकार के फल खाये तथा सभी राक्षसों को दिखलाकर वृक्षों को उखाड़–उखाड़कर उपवन को उजाड़ दिया। उनकी हुंकार सुनकर बहुत–से

राक्षस (मारने) आ गये; परंतु कूद–कुदकर उन्होंने सबको मार डाला। (अन्त में) जब वहाँ बलनिधान मेघनाद आया, तब उसने ब्रह्मास्त्र का उन पर प्रयोग किया। उस दिव्यास्त्र से बँधकर धैर्यशाली पवनकुमार रावण को देखने चल पड़े। अनेक गम्भीर कथाएँ कहकर रावण को उन्होंने अनेक प्रकार से ज्ञानोपदेश किया– समझाया; (किंतु जब वह नहीं माना, तब) क्षणभर में बन्धन को छुड़ाकर निकल गये और सारी लंका जला दी। जैसे हाथियों के झुण्ड को जीतकर सिंह निःशङ्क कूद जाय, फिर उसी प्रकार लंका से समुद्र पार कूद गये। समुद्र के किनारे आने पर सब वानर मिले और फिर सब (किष्किन्धा) आकर श्रीराम से मिले। श्रीजानकी का समाचार बार–बार (पूछकर) सुनकर वे शोभाधाम प्रभु अत्यन्त पुलकित हुए।

लंका-विजय

करि कपि–कटक चले लंका कौं, छिन मैं बाँध्यौ सेत।
उतर गए, पहुँचे लंका पै, बिजय–धुजा संकेत।।
पठए बालि–कुमार बिनय करि, समुझाए बहु बार।
चित नहिं धरौ, काल–बस जान्यौ, फिर आयौ सुकुमार।।
असरन–सरन उदार कल्पतरू, रामचंद्र रनधीर।
रिपु भ्राता जान्यौ जु बिभीषन, निस्चर सब मारे।
माया करी बहुत नाना बिधि, सब कौं राम निवारे।।
कुंभकरन पुनि इंद्रजीत यह, महाबली बल–सार।
छिन मैं लिए सोख मुनिबरज्यौं छत्री बली अपार।।
कियौ प्रसाद सांतना करि कै, राज बिभीषन दीन।
पुनि मंदोदरि अचल आयु दै, अभय–दान सब कीन।।
समाधान सुरगन कौ करि कै, अमष्त मेघ बरषायौ।
कृपा–दृश्टि अवलोकन करि कै, हत कपि–कटक जियायौ।।
निस्चर किए मुक्त सब माधव, तातें जिए न कोय।
निरभय किय लंकेस बिभीषन, राम–लखन नष्प दोय।।
सीता मिली, बहुत सुख पायौ, धरयौ रूप निज मायौ।
पुष्पक–यान बैठि कै नीक, चले भवन, सुख छायौ।।
चले पवन–सुत बिप्र–रूप धरि, भरतहि दैन बधाई।
जानि दूत रघुपति कौ प्रमुदित, भरत मिले तब धाई।।[18]

18. *सुदर्शन सिंह अनुवादक–श्री सूरदास रचित सूररामचरितावली, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ0 228, पद क्रमांक–211*

(श्रीराम) वानरों की सेना सजाकर लंका को चल पड़े। क्षण भर मं (शीघ्र ही) उन्होंने समुद्र पर सेतु बाँध दिया। इस प्रकार समुद्र पार होकर लंका पहुँच गये और उनका झंडा विजय सूचित करते हुए फहराने लगा। (श्रीराम ने दूत बनाकर रावण के पास) अंगद को भेजा, उन्होंने (रावण को) विनय पूर्वक अनेक प्रकार से समझाया; किंतु उसने किसी पर ध्यान नहीं दिया, तब उसे कालवश समझकर बालिकुमार लौट आये। अशरणजनों को शरण देने वाले तथा उदारता मे कल्पवृक्ष के समान रणधीर श्रीरामचन्द्र जी ने राक्षसों के कुटिल शरीर वाला (माया करने में समर्थ) तथा उसे शत्रु का भाई समझकर भी विभीषण को शरण में रख लिया और जब सब राक्षसों को मार चुके, तब उन्हें लंकानरेश बना दिया। (राक्षसों ने) अनेक प्रकार की माया की; किंतु श्रीराम ने सबको दूर कर दिया। कुम्भकर्ण और मेघनाद– ये महान् बलवान् थे, मानो ये बल के साररूप ही थे; किंतु उन्हें अपार बलवान् श्रीराम–लक्ष्मण ने इस प्रकार नष्ट कर दिया जैसे मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य जी ने समुद्र पी लिया था। विभीषण पर कृपा करके उन्हें सान्त्वना दी और राजा बनाया तथा मन्दोदरी को अविचल आयु प्रदान की, इसी प्रकार सभी शेष राखसों को अभयदान दिया। देववृन्द का समाधान किया (उनका भय दूर कर दिया)। उनसे कहकर अमृत की आकाश से वर्षा करायी तथा कृपा–दृष्टि से देखकर (युद्ध में) मारी गयी वानरों की सेना को जीवित कर दिया। श्रीरघुनाथ जी ने (युद्ध में मरे) सभी राक्षसों को मुक्त कर दिया था, इससे उनमें कोई भी जीवित नहीं हुआ। श्रीराम–लक्ष्मण दोनों राजकुमारों ने लंका का राज्य विभीषण को देकर उन्हें निर्भय कर दिया। फिर सीता जी आकर मिलीं, उन्हें बड़ा आनन्द हुआ; (अग्नि में प्रवेश करके) उन्होंने मायारूप छोड़ दिया और वास्तविक रूप धारण कर लिया। पुष्पकविमान पर बैठकर कुशलपूर्वक श्रीराम अयोध्या को लौटे, इससे संसार में सुख छा गया (सभी हर्षित हुए) श्रीपवनकुमार ब्राह्मण का रूप धारण काके (आगे) श्रीभरत जी को (रघुनाथ जी के लौटने की) बधाई देने गये। श्रीरघुनाथ जी का दूत समझकर भरत जी अत्यन्त आनन्द दौड़कर उनसे मिले।

राम-राज्य

सुनत नगर सबहिन सुख मान्यौ, जहँ–तहँ तैं चल धाई।
रामचंद्र पुनि मिले भरत सौं, आनँद उर न समाई।।
कियौ प्रबेस अयोध्या मैं तब, घर–घर बजत बधाई।
मंगल–कलस धराए द्वारैं, बंदनवार बँधाई।।
राजभवन मैं राम पधारे, गुरू बसिष्ठ दरसायौ।
सीस नवाय बहुत पूजा करि, सूरज–बंस बढ़ायौ।।
समाधान सबहिन कौ कीनौ, जो दरसन कौं आयौ।
कौसल्या, केकई, सुमित्रा, मिलि मन मैं सुख पायौ।।
बैठे राम राज–सिंहासन, जग मैं फिरी दुहाई।
निरभय राज राम कौ कहियत, सुर–नर–मुनि सुख पाई।।
चार मूर्ति धरि दरसन आए, चार बेद निज रूप।
अस्तुति करी बहुत, नाना बिधि, रीझे कौसल–भूप।।
सिव, बिरंचि, नारद, सनकादिक, सब दरसन कौं आए।
राम राज बैठे जब जाने, सबहिन मन सुख पाए।।
लोकपाल अति ही मन हरषे, सब सुमनन बरसायौ।
पुष्प बिमान बैठि हरि आए, लै कुबेर पहुँचायौ।।
अति आनंद भयौ अवनी पर, राम–राज सुख–रास।
कृतजुग–धर्म भए त्रेता मैं, पूरन रमा–प्रकास।।
अस्वमेध बहु जज्ञ किए पुनि, पूजे दुजन अपार।
हय, गज, हेम, धेनु, पाटंबर, दीन्हे दान उदार।।
चरित अनेक किए रघुनायक, अवधपुरी सुख दीन्हौ।
जनक–सुता बहु लाड़ लड़ावत, निपट निकट सुख कीन्हौ।।
राम बिहार करेउ नाना बिधि, बालमीकि मुनि गायौ।
बरनत चरित बिस्तार कोटि सत, तऊ पार नहिं पायौ।।
'सूर' समुद्र की बूँद भई यह, कबि बरनन कहा करिहै।
कहत चरित रघुनाथ, सरस्वति बौरी मति अनुसरिहै।।
अपने धाम पठाय दिय तब, पुरबासी सब लोग।
जै–जै–जै श्रीराम कल्पतरू, प्रगट अजोध्या भोग।।[19]

(श्रीरघुनाथ जी के आने का) समाचार पाकर सभी नगरवासी प्रसन्न हो गये; जो जहाँ था, वहीं से दौड़ पड़ा। श्रीरामचन्द्र जी भरत जी से मिले, (दोनों के ही) हृदय में आनन्द समाता नहीं था। फिर उन्होंने अयोध्या नगर में प्रवेश

19. *सुदर्शन सिंह अनुवादक–श्री सूरदास रचित सूररामचरितावली, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ0 230 पद क्रमांक–212*

किया, वहाँ प्रत्येक घर में बधाई के बाजे बनजे लगे। सबने द्वार पर मंगल–कलश रखे थे और बंदनवारें बाँधी थीं। श्रीरघुनाथ जी राजभवन में पधारे, वहीं कुलगुरू महर्षि वशिष्ठ का दर्शन हुआ। उन्हें मस्तक झुकाकर प्रणाम करके इस सूर्यवंश की उन्नति की है।' जो लोग दर्शन करने आये थे, सभी का प्रभु ने समाधान किया (सबसे मिलकर उन्हें संतुष्ट किया)। माता कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी उनसे मिलकर आनन्दित हुईं। फिर श्रीराम राजसिंहासन पर बैठे और पूरे संसार में उनके स्वामित्व की घोष्णा हुई। कहा जाता है कि श्रीराम का राज्य सभी के लिये निर्भय था तथा देवताओं, मनुष्यों एवं मुनियों को अत्यन्त सुख उसमें मिला। चारों वेद अपने देवरूप में साकार होकर चार स्वरूप से आये, वे कोशलनरेश श्रीरघुनाथ जी पर मुग्ध हो गये थे, अनेक प्रकार से उन्होंने प्रभु की भली भाँति स्तुति की। शिव, ब्रह्मा, नारद तथा सनकादि मुनि–सभी श्रीराम का दर्शन करने आये। श्रीराम को राजसिंहासन पर आसीन जानकर सभी के हृदय को अत्यन्त आनन्द हुआ। सभी लोकपाल अपने मन में अत्यन्त हर्षित हुए, उन्होंने पुष्पों की वर्षा की। श्रीराम जिस पुष्पक–विमान में बैठकर (लंका से) आये थे, उसे कुबेर के पास पहुँचा दिया। श्रीराम का राज्य सुख की राशि था, उससे पष्थ्वी पर अत्यन्त आनन्द हुआ। त्रेता में भी सत्ययुग के समान धर्माचरण होने लगा, लक्ष्मी ने (जगत् में) अपना पूरा प्रकाश किया। प्रभु ने बहुत–से अश्वमंध यज्ञ किये और नाना प्रकार से ब्राह्मणों की पूजा की, उन उदारने घोड़े, हाथी, स्वर्ण, गायें तथा रेशमी वस्त्र आदि दान में दिये। श्रीरघुनाथ जी ने अनेक प्रकार के चरित करके अयोध्यावासियों को सुखी किया। श्रीजानकी जी भी (पुरवासियों से) भली प्रकार स्नेह करती थीं और उन्हें अत्यन्त समीप रहने का सुख प्रदान करती थीं। श्रीराम ने जो नाना प्रकार की क्रीडा की है, उसका वर्णन महर्षि वाल्मीकि ने किया है; किंतु सौ करोड़ श्लोकों में वर्णन करते हुए भी उन्होंने रामचरित का अन्त नहीं पाया। सूरदास का यह वर्णन तो उसके सामने समुद्र की एक बूँद के समान हो गया है, कोई भी कवि भला, (श्रीराम के चरित का) क्या (कहाँ तक) वर्णन करेगा। लेकिन श्रीरघुनाथ के चरित का वर्णन

(जो कोई करेगा) उसकी पगली (भोली) बुद्धि की सहायता सरस्वती करेंगी– वे उसके पीछे चलेंगी। श्रीरघुनाथ जी ने अन्त में सभी अयोध्यापुरी के वासियों को अपने दिव्यधाम में भेज दिया। इस प्रकार अयोध्या में उसका उपभोग (शासन) करने के लिये अवतरित कल्पवृक्षस्वरूप श्रीराम की जय हो ! जय हो! जय हो!

जिसका उल्लेख सूरसागर के संकलित पदों में राम के प्रति भक्ति एवं उनके चरित्र का वर्णन का संकलन कई साधको द्वारा किया गया है।

डॉ. हरगुलाल	:	सूर काव्य नया परिदृश्य
जगन्नाथ सेठ (सं.)	:	सूरदास विविध संदर्भो में
पं. जवाहरलाल चतुर्वेदी	:	महाकवि सूरदास और उनका कृतित्व
डॉ. मनमोहन गौतम	:	सूर की काव्य कला
डॉ. मुंशीराम शर्मा	:	सूर सौरभ
डॉ. मुंशीराम शर्मा	:	भारतीय साधना और सूर साहित्य
डॉ. मुंशीराम शर्मा	:	सूरदास और भगवद्भक्ति
डॉ. मुंशीराम शर्मा	:	भक्ति का विकास
आचार्य ननददुलारे वाजपेयी	:	महाकवि सूरदास
आचार्य ननददुलारे वाजपेयी	:	सूर सन्दर्भ
आचार्य ननददुलारे वाजपेयी	:	सं., सूर–सागर, भाग 1–2
डॉ. प्रेमनारायण टण्डन	:	सूर की भाषा
प्रभुदयाल मीतल (सं.)	:	सूरदास मदनमोहन जीवनी और पदावली,
प्रभुदयाल मीतल (सं.)	:	साहित्य लहरी (सूरदास)
प्रभुदयाल मीतल (सं.)	:	चैतन्य मत और ब्रजसाहित्य
प्रभुदयाल मीतल (सं.)	:	गोस्वामी हरिरायजी का पदसाहित्य
प्रभुदयाल मीतल (सं.)	:	सूर सारावली
प्रभुदयाल मीतल (सं.)	:	स्वामी हरिदासजी (भूमिका)
प्रभुदयाल मीतल (सं.)	:	अष्टछाप परिचय

प्रभुदयाल मीतल (सं.)	:	चौरासी वैष्णवन की वार्ता
डॉ. रत्नाकर पाण्डेय	:	सूर की काव्य चेतना
डॉ. रामकुमार खण्डेलवाल	:	हिन्दी काव्य में प्रेम भावना
डॉ. रामरतन भटनागर	:	सूर समीक्षा
डॉ. रामरतन भटनागर एवं वाचस्पति त्रिपाठी	:	सूर साहित्य की भूमिका
सीता राम चतुर्वेदी गोवर्धन नाथ शुक्ल(सं.)	:	सूर ग्रंथावली
शैल वाला अग्निहोत्री	:	सूर साहित्य का मनोवैज्ञानिक चित्रण

अध्याय-2

सूर : जीवन वृत्त

सूरदास नाम के कई कवि हुए हैं। अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि महात्मा सूरदास उनमें एक थे। उनका जन्म कब और कहाँ हुआ? उनके माँ–बाप कौन थे? उन्हें काव्य और संगीत की विधिवत शिक्षा मिली थी अथवा नहीं? वे जन्म से विरक्त थे अथवा कभी घरबारी भी रहे? वे जन्मान्ध थे या बाद में कभी अन्धे हुए? बल्लभाचार्य से उन्होंने कब और कैसे दीक्षा ली? बादशाह अकबर से उनकी भेंट कब और कहाँ हुई? तुलसीदास से उनकी भेंट की बात यथार्थ है अथवा मात्र एक किम्बन्दन्ती? से इस संसार, में कब तक रहे और उनका गोलोकवास कब हुआ? अभी तक इन प्रश्नों का कोई सर्वमान्य उत्तर नहीं मिला है। सम्भवतः, भविष्य में भी न मिले। कारण यह कि उसके लिए प्रचुर मात्रा में जिस प्रामाणिक सामग्री की आवश्यकता होती है, हमारे पास उसका अभाव है। अब तक जितना विचार हुआ है और उसके फलस्वरूप जो निष्कर्ष सामने आए हैं, यहाँ उनका सार संकलन प्रस्तुत है।

अध्ययन के स्रोत

अब तक की खोंजो में लगभग बीस पुस्तकों का पता चला है, जिनसे सूरदास के बारे में यत्किंचित् जानकारी प्राप्त होती है। उनमें सूरसागर, सूरसारावली और साहित्यलहरी स्वयं सूरदास की रचनाएँ है और शेष उनके समकालीन तथा परवर्ती अन्य विद्वानों द्वारा लिखी गई हैं। उनके नाम हैं– चौरासी वैष्णवों की वार्ता, निजवार्ता, भावप्रकाश, बल्लभ द्विग्विजय, संस्कृतवार्तामणिमाला, भक्तमाल, रामरसिकावली, भक्तविनोद, भक्तनामावली, पदप्रसंगमाला, अष्टसखामृत, सम्प्रदायकल्पद्रुम, धौल, भावसंग्रह, वैष्णवाह्निकपद, आइने अकबरी, मुन्तखिबुलतवारीख और मुंश्याते अबुलफजल।

सूरसागर से सूरदास के बारे में निम्नलिखित सूचनाएँ मिलती हैं –

(1) सूरदास अन्धे थे। कब अन्धे हुए ? इसका पता नहीं चलता।

निसि दिन विषय विलासन बिलसत फूट गई तब चार्यो।
सूरदास सौं कहा निठुर भए नैनन हू की हानी।
यहै जिय जानि कै अन्ध भव त्रासतै,
सूर कामी कुटिल सरन आयौं।
या माया झूठी की लालच दुहुँ दृग अन्ध भयौ।
सूर कूर आँधरौ हौं द्वार पर्यौं गाऊँ।
काटहु न फन्द मों अन्ध को अब बिलम्ब कारन कवन?[1]

(2) उन्होंने अपने जीवन का कुछ समय, सम्भवतः, गृहस्थाश्रम में बिताया था।

नाहिं चितवन देत तिय सुत नाम नौका ओर।
माया सबल धाम धन बनिता, बाँध्यौ हौं इहि साज।
स्रक चन्दन बनिता बिनोद सुख यह जुर जरनि जरायौ।
सुत सनेह तिय सकल कुटुम्ब मिलि निसि दिन होति खई।
सुतनि तज्यौ तिय तज्यौ भ्रात तजि तन त्वच भई जु न्यारी।[2]

(3) वे कुछ समय तक किसी मठ, मन्दिर अथवा धार्मिक स्थान के महन्थ या स्वामी थे।

कितक दिन हरि सुमिरन बिनु खोए।
तेल लगाइ कियौ रूचि मर्दन बस्रहिं मलि धोए।
तिलक बनाइ चले स्वामी ह्वै विषयनि के मुख जोए।[3]

(4) बल्लभाचार्य के सम्पक्र में आने से पहले वे शिव के उपासक थे और कदाचित् बलि में भी विश्वास करते थे।

सूरदास के ह्रदय बसि रह्यौ स्याम शिव कौ ध्यान।
हरिहर संकर नमो नमो।
कामना करि कोप कबहूँ करत कर पशु धात।[4]

---

1. *डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, 2006, पृ0 1*
2. *डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, 2006, पृ0 2*
3. *डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, 2006, पृ0 2*
4. *डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, 2006, पृ0 2*

(5) वे सम्भवतः "ढाढी" जाति के थे। उनका निवास–स्थान गोवर्द्धन पर था। अन्यत्र उन्होने अपने को जाट कहा है।

नन्द जू मेरे मन आनन्द भयौ, सुनि गोबरधन ते आयौ।
हौं तौ तिहारे घ्र कौ ढाढ़ी, सूरदास मेरौ नाउँ।।
ऐसैंकुमति जाट सूरज कौं प्रभु बिन कोऊ न धाम।[5]

(6) वे निश्चित रूप से दीर्घायु होकर मरे थे।

तीनौं पन ऐसे ही बीते केस भए सिर सेत।
बष्द्ध भए सुधि प्रगटी मोकों दुखित पुकारत तातें।[6]

(7) कई पदों में उन्होंने अपने को कामी, कुटिल, अधम, अपराधी, पतित आदि बताया है जिससे मालूम होता है कि वे अत्यन्त विनम्र और निरभिमान थे।

सारावली से सूरदास के बारे में तीन बातें मालूम होती है।

(1) जीवन के आरम्भ में वे कर्म, योग, ज्ञान, उपासना आदि में विश्वास करते थे। बल्लभाचार्य के सम्पर्क में जाने पर उन्हें लीलारहस्य का ज्ञान हुआ। तब से वे भगवल्लीला का गान करने लगे। इस तरह उन्होने एक लाख पद बनाए। सारावली उन्हीं पदों का सारांश है।

करम जोग पुति ज्ञान उपासन, सबही भ्रम भरमायौ।
श्री बल्लभ गुरू तत्व सुनायौ, लीला भेद बतायौ।।
ता दिन तें हरिलीला गाई, एक लक्षय पद बन्द।
ताकौ सार सेर सारावलि, गावत अति आनन्द।।[7]

---

5. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, 2006, पृ0 2
6. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, 2006, पृ0 2
7. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, 2006, पृ0 3

(2) सारावली की रचना के समय सूरदास की उम्र 67 वर्ष थी। उससे पहले कुछ दिन तक वे शिव की उपासना कर चुके थे, पर उससे उन्हें शान्ति नहीं मिली।

गुरू परसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रबीन।
सिव बिधान तप करेउ बहुत दिन, तऊ पार नहिं लीन।।[8]

(3) सारावली के पद मे "सरस संवतसर लीला" का उल्लेख है। उसके आधार पर कुछ विद्वानों को सारावली के रचनाकाल और सूरदास की जन्मतिथि का अनुमान करने में सहायता मिली है, जिसकी चर्चा यथास्थान की जाएगी।

साहित्य लहरी के दो पदों से सूरदास के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त होती है। एक में ग्रंथ के रचनाकाल का उल्लेख है और दूसरे में रचनाकार ने अपने वंश का परिचय दिया है।

मुनि पुनि रसन के रस लेख।
दसन गौरीनन्द कौं लिखि, सुबल संवत पेख।।
नन्दनन्दन मास छै ते हीन, त्रितिया बार–
नन्दनन्दन जनम ते है बान, सुख आगार।।
त्रितीय रिच्छ सुकर्म जोग, बिचारि सूर नवीन।
नन्दनन्दनदास हित, साहित्य लहरी कीन।।[9]

मुनि =7, पुनि = पुनः मुनि अर्थात् 7, कुछ विद्वानों ने "पुनि" के स्थान पर "सुनि" पाठ मानकर, उसका अर्थ "शून्य" किया है। रसन =1, कुछ विद्वानों ने रसना के दो व्यापार मानकर, उसका अर्थ दो किया है और कुछ लोगों ने 'रसन' अर्थात्'रस नहीं'– ऐसा मानकर, उसका अर्थ शून्य किया है। रस =6, दसन गौरीनन्द =1, "अंकाना वामतो गतिः" के अनुसार इससे चार अर्थ निकले

---

8. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, 2006, पृ0 3
9. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, 2006, पृ0 3

– 1607, 1617, 1627 और 1677, सुबल =वृषभ अथवा प्रभव। नन्दनन्दनमास =वैसाख महीना। दै ते हीन त्रितिया =अक्षय तृतीया। बैसाख शुक्ल तृतीया को अक्षय तृतीया कहते हैं। बार नन्दनन्दन जनम ते है बान =कृष्ण का जन्म बुधवार को हुआ था, उससे बान अर्थात् पाँचवाँ दिन रविवार पड़ता है। त्रितीय रिच्छ=तीसरा नक्षत्र। नक्षत्रों की गणना "अश्विनी" से आरम्भ होती है। उससे तीसरा अर्थात् कृत्तिका नक्षत्र नन्दनन्दनदास हित=नन्ददास के लिए अथवा कृष्ण भक्तों के लिए। बल्लभ सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है कि सूरदास ने साहित्यलहरी की रचना नन्ददास के लिए की थी। पूरा अर्थ इस प्रकार हुआ– 1607, 1617, 1627 अथवा 1677 विक्रमाब्द में, जब वृषभ अथवा प्रभव नाम का संवत्सर था, बैसाख शुक्ल 3, रविवार को सुकर्म योग में सूरदास ने नन्ददास अथवा कृष्णभक्तों के लिए साहित्यलहरी की रचना की थी।

प्रथम ही पृथु जाग ते भे प्रगट अद्‌भुत रूप।
ब्रह्मराव विचारि, ब्रह्म नाम राख अनूप।।
तासु बंस प्रसंस में, भौ चन्द चारू नवीन।।
तासु बंस अनूप, भी हरचन्द अति विख्यात।।
आगरे रहि गोपचल में, रह्यौ ता सुत बीर।
पुत्र जनमें सात ताके, महाभट गम्भीर।।
भयौ सातौ नाम सूरज चन्द मन्द निकाम।
से समर करि साहि स्यौं सब गए बिधि के लोक।।
रह्यौ सूरज चन्द दृग ते हीन भरि भरि सोक।
पयौं कूप पुकार काहू सुनी ना संसार।
सातवें दिन आइ जदुपति कियौ आप उधार।।
दिव्य चख दै कही सिसु सुन माँग बर जौ चाहि।
हौं कही प्रभु भगति चाहत शत्रु नास सुभाइ।।
सुनत करूनासिन्धु भाख्यों एवमस्तु सुधाम।
प्रबल दच्छिन विप्रकुल ते शत्रु ह्वै हैं नास।
नाम राखे मोर सूरजदास सूर सुश्याम।
मोहि मनसा इहै ब्रज की बसौ सुख चित छाप।
थापि गुसाई।करी मेरी आठ मध्ये छाप।।
बिप्र पृथु के जाग को है भाव भूरि निकाम।
सूर है नंदनन्द जू कौ लयौ मोल गुलाम।।[10]

10. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, 2006, पृ0 4

पृथु के यज्ञ से एक अनोखा रूप प्रकट हुआ। ब्रह्म ने उसका नाम ब्रह्ममराव रखा। उसके वंश में चन्द का जन्म हुआ। चन्द के वंश में हरचन्द हुए। उसके वीर पुत्र ने आगरा के निकट गोपाचल में निवास किया। उसके सात महावीर पुत्र हुए। सातवें का नाम सूरजचन्द है। बादशाह से हुई लड़ाई में छः मारे गए। अन्धा सूरजचन्द शोकाकुल होकर रह गया। इधर–उधर भटकते हुए वह कुएँ में जा गिरा। सातवें दिन स्वयं श्री कृष्ण ने आकर उसे कृएँ से निकाला। भगवान की कृपा से उसे खोई हुई आँखें मिल गईं। उसने भागवान् से भगवद् भक्ति और शत्रुनाश का वरदान माँगा। भगवान् ने कहा, "दक्षिण के शक्तिशाली ब्राह्मणों द्वारा तुम्हारे शत्रुओं का नाश होगा"। भगवान् ने मेरा नाम "सूरदास" रखा। मेरे मन में ब्रजवास की इच्छा हुई। गोस्वामी बिट्ठलनाथ ने अष्ठछाप में मुझे स्थापित किया। मैं पृथु के यज्ञ से उत्पन्न ब्राह्मण और श्रीकृष्ण का कीर्तिदास हूँ।

डॉ0 मुंशीराम शर्मा ने इस पद को बहुत महत्त्व दिया है, लेकिन अधिकांश विद्वानों के अनुसार यह सूरदास की रचना नहीं है।

चौरासी वैष्णवो की वार्ता से सूरदास के बारे में पर्याप्त सूचनाएँ मिलती हैं।

(1) सूरदास अपने सेबकों के साथ आगरा और मथुरा के बीच स्थित गऊघाट नामक स्थान पर स्वामीवेष में रहते थे। एक बार अड़ैल से ब्रज जाते समय बल्लभाचार्य गऊघाट पर रूके। भोजनोपरान्त जब वे गद्दी पर बैठे, सूरदास ने निकट जाकर, उनका दर्शन किया, और महाप्रभु के कहने पर उन्हें दैन्यभावापन्न कुछ पद सुनाए। आचार्य जी ने उन्हें लीलागान करने का आदेश दिया। सूरदास ने अपनी असमर्थता प्रकट की। इस पर आचार्य ने उन्हें भागवत दशम स्कन्ध की अनुक्रमणिका, सुबोधिनी नाम की टीका और पुरूषोत्तम सहस्रनाम का श्रवण कराया।

सूरदास को सम्पूर्ण भगवल्लीला स्पष्ट हो गई। तभी से वे लीला के पद गाने लगे।

(2) गऊघाट से चलते समय बल्लाभाचार्य ने सूरदास को अपने साथ ले लिया और उन्हें ब्रज ले जाकर, श्रीनाथ जी के मन्दिर में कीर्तनसेवा का काम सौंपा। श्रीनाथ जी की कीर्तन सेवा करते हुए उन्होंने "सहस्रावधि" पद गाए, उन्हीं पदों का संग्रह संसार में "सागर" नाम से प्रसिद्ध हुआ।

(3) सूरदास को प्रशंसा सुनकर, अकबर बादशाह ने उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की। भगवदिच्छा से दोनों की भेंट हुई। सूरदास ने बादशाह को कुछ पद सुनाए। उनके भक्तिभाव से अकबर बहुत प्रभावित हुआ। उस समय तक सूरदास अपनी आँखें खो चुके थे।

(4) सूरदास जी कभी–कभी श्री नवनीत प्रिय जी के दर्शन करने जाया करते थे।

(5) अपना अन्त समय निकट जानकर वे रासलीला की भूमि पारसोली चले गए। शिष्यों से सूचना पाकर गोस्वामी बिट्ठलनाथ भी वहाँ पहुँचे। उनके आग्रह पर सूरदास ने उन्हें कुछ पद सुनाए फिर अपनी इहलीला संवरण कर दी।

चौरासी वार्ताओं का संग्रह गोस्वामी बिट्ठनाथ के पुत्र श्री गोकुलनाथ जी ने किया था। सूरदास की मृत्यु के समय गोकुलनाथ की उम्र 32वर्ष थी। इसलिए उनके द्वारा सूरदास के बारे में कही गई बातों को काफी हद ते प्रामाणिक माना जा सकता है।

निजवार्ता में सूरदास को बल्लभाचार्य से दस दिन छोटा बताया गया है। इसके वार्ताकार भी श्री गोकुलनाथ जी कहे जाते हैं।

चौरासी वैष्णवों की वार्ता पर हरिराय जी ने भावप्रकाश नाम की टीका लिखी थी। अनुमान किया जाता है कि इस टीका की रचना सं01728 से 1772 के बीच किसी समय हुई थी। इससे सूरदास के बारे में निम्नलिखित सूचनाएँ मिलती हैं।

(1) सूरदास का जन्म दिल्ली के निकट 'सीही' नामक गाँव में एक सारस्वत ब्राह्मण के घर हुआ था।

(2) वे जन्माध थे।

(3) छः वर्ष की उम्र में वे घर छोड़कर निकल पड़े और गाँव से चार कोस दूर एक तालाब के किनारे पीपल की छाया में रहने लगे। वहाँ उन्होंने एक जमींदार की खोई हुई गायों का पता बता दिया, जिस पर प्रसन्न होकर उसने उनके लिए एक झोपड़ी बना दी। अठारह वर्ष की उम्र तक वे उसी स्थान पर रहे। उसके बाद वहाँ से चलकर आगरा और मथुरा के बीच स्थित गऊघाट नामक स्थान पर आए, जहाँ उनकी भेंट बल्लभाचार्य से हुई।

(4) सूरदास के चार नाम थे सूर, सूरदास, सूरजदास और सूरश्याम। उनके पदों में इन चारों नामों की छाप है। कभी-कभी बल्लभाचार्य जी उन्हें सम्मान में 'सूरसागर' कहकर सम्बोधित करते भे।

(5) सूरदास का गोलोकवास गोस्वामी विट्ठलनाथ से पहले हुआ था।

बल्लभदिग्विजय में बल्लभाचार्य जी की जीवनी है। उसकी रचना गोस्वामी बिट्ठलनाथ के छठें पुत्र श्री यदुनाथ ने की थी। सूरदास की मृत्यु के समय यदुनाथ जी की उम्र पचीस वर्ष थी। इसलिए उपके द्वारा सूरदास के बारे में कही गई बातों को प्रामाणिक माना जा सकता है। इस ग्रंथ के अनुसार,

अड़ैल से ब्रज जाते समय महाप्रभु बल्लभाचार्य ने सारस्वत सूरदास पर कृपा की थी।

ततोऽलक्रपुरे समागतः। तत्रावासः कृतः।
ततो ब्रज समागमने सारस्वत सूरदासाऽनुगृहीतः।[11]

संस्कृतवार्तामणिमाला की रचना श्रीनाथ भट्ट नाम के एक तैलंग ब्राह्मण ने की थी। ज्ञात होता है कि वे सूरदास के समकालीन थे। इस माला में 115 वार्ताएँ है। 58वीं वार्ता में सूरदास का उल्लेख है। उससे ज्ञात होता है कि (1) सूरदास जन्मान्ध थे और (2) उनका जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ था।

जन्मान्धो सूरदासोऽभूत प्राच्यो ब्राह्मण उन्मदः।[12]

नाभादासकृत भक्तमाल में सूरदास के बारे में एक छपपय मिलता है।

उक्ति चोज अनुप्रास बरन, अस्थिति अति भारी।
बचन प्रीति निर्बाह अर्थ, अद्‌भुत तुक धारी।।
प्रतिबिम्बित दिविदिष्ट, हृदय हरिलीला भासी।
जनम करम गुन रूप सबै रसना परकासी।।
बिमल बुद्धि गुन और की, जो वह गुन स्रवननिधरै।
सूर कबित सुनि और कबि, जो नहिं सिर चालन करै।।[13]

सूरदास की कविता में उक्ति, चोज, अनुप्रास, वर्णमैत्री, तुक और अर्थ का अनूठापन विद्यमान है। उन्होंने अपनी दिव्यदृष्टि से भगवल्लीला का साक्षात्कार करके भगवान् के जन्म, कर्म, गुण, रूप आदि का गान किया, जिसे सुनकर दूसरों की बुद्धि भी निर्मल हो जाती है। उनकी कविता सुनकर अन्य कवि भाव विभोर हो सिर हिलाने लगते हैं।

---

11. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, 2006, पृ0 6
12. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, 2006, पृ0 6
13. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, 2006, पृ0 6

भक्तमाल में अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि सूरदास के अलावा दो अन्य सूरदासों का उल्लेख है। वे हैं– बिल्वमंगल और मदनमोहन। कुछ लोगों ने उनके वष्त को अष्टदाप के सूरदास से मिला दिया है, जिससे अनेक भ्रान्तियाँ उत्पन्न हुई हैं।

रामरसिकावली रीवाँ नरेश महराज रघुराज सिंह की रचना है। उसमे सूरदास को उद्धव का अवतार और जन्म से नेत्रहीन बताया गया है। उसके अनुसार बादशाह से सूरदास की भेंट दिल्ली में हुई थी। उस समय उन्होंने शाहजादी की जाँघ पर तिल का निशान बताकर बादशाह को चमत्कृत कर दिया था।

कवि मियाँसिंह के भक्तविनोद में सूरदास का जन्म स्थान 'मथुराप्रान्त' बताया गया है। कवि के अनुसार बादशाह से सूरदास की भेंट दिल्ली में हुई थी। अन्य विवरण प्रायः वही हैं जो अन्यत्र भी मिलती हैं।

भक्तनामावली के रचयिता श्री ध्रुवदास संवत् 1630 से 1700तक विद्यमान थे। उन्होंने सूरदास द्वारा वर्णित गोपियों के प्रेम की प्रशंसा की है।

पदप्रसंगमाला कृष्णगढ नरेश महाराज सावन्त सिंह उपनाम नागरीदास की रचना है। उनका कविता काल संवत्1780 से 1819 बताया जाता है। उन्होंने लिखा है कि एक ब्रजवासी लड़का सूरदास दो तुक के होली के 'भड़ौआ' गाया करता था। गोस्वामी जी ने उसका भड़ौआ सुना और उसे भगवल्लीला गान करने का आदेश दिया। सम्भवतः यह कोई दूसरे सूरदास रहे हों।

ब्न्दावनवासी कवि प्राणनाथ ने, जो सम्भवतः सूरदास के समकालीन थे, अपने अष्टसखामृत में अष्टदाप के कवियों का प्रशस्ति मूलक परिचय दिया है। सूरदास के बारे में उनका कथन इस प्रकार है–

श्री बल्लभ प्रभु लाड़िले, सीही सर जलजात।
सरसुती दुज तरू सुफल, सूर भगत बिख्यात।।
बाहिर नैन बिहीन सो, भीतर नैन बिसाल।
तिन्है न जग कुछ देखिबौ, लखि हरि रूप निहाल।।
रूप माधुरी हरि लखी, देखे नहिं अनलोक।
हरि गुन रस सागर कियौ, हरन सकल जग शोक।।[14]

इससे ज्ञात होता है कि सूरदास का जन्म "सीही ग्राम" में सारस्वत ब्राह्मण के घर हुआ था। वे नेत्र विहीन थे। श्रीकृष्ण की रूप माधुरी का दर्शन करने के बाद उन्होंने संसार को नहीं देखा। भगवल्लीला का गान करते हुए उन्होंने "सागर" की रचना की। वह सागर सम्पूर्ण संसार का दुःख दूर करने में समर्थ है।

सम्प्रदायकल्पद्रुम ब्रजभाषा पद्य में लिखी गई पुस्तक है। उसकी रचना हरिराय जी के सेवक बिट्ठलनाथ भट्ट ने 1729 में की थी। उससे ज्ञात होता है कि महाप्रभु बल्लभाचार्य ने अपनी तष्तीय पृथ्वी प्रदक्षिणा के समय सूरदास को शरण में लिया था।

सूरदास को सरन लै, तीर्थराज प्रभु आय।
भू प्रदक्षिणा पूर्णक्रिय, ब्रह्मभोज करवाय।।[15]

हरिराय जी के एक अन्य सेवक जमुनादास ने गुजराती भाषा के पद्यों में एक धौल की रचना की थी, जिसमें सूरदास का विस्तृत परिचय दिया गया है। यह विवरण हरिराय की भावप्रकाश टीका पर पूर्णतः अवलम्बित है।

भावसंग्रह की रचना श्री द्वारकेश जी ने की थी। उनका समय विक्रम की अठारहवीं सदी का उत्तरार्द्ध बताया जाता है। उनके अनुसार सूरदास का जन्म "सीही" नामक गाँव में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वे उम्र में श्री बल्लभाचार्य से दस दिन छोटे थे। ,

---

14. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, 2006, पृ0 7
15. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, 2006, पृ0 7

जतीपुरा निवासी "मट्टू जी" महाराज के वैष्णवाह्निक मे सूरदास के जीवन से सम्बन्धित एक पद मिलता है, जिसमें उनका जन्म संवत् 1535 में बैसाख शुक्ल 5 को बताया गया है, यह रचना उन्नीसवीं सदी की है।

प्रगेट भक्तसिरोमनिराय।
माधव सुक्ला पंचमि ऊपर छट्ठ अधिक सुखदाय।
संवत पन्द्रहा पेंतीस वर्षे कृष्ण सखा प्रगटाय।[16]

आइने अकबरी, मुन्तखिबुलतवारीख और मुंशियाते अबुलफजल फारसी में लिखी तवारीखें है। प्रथम दो तवारीखों में बाबा रामदास गवैया के पुत्र सूरदास को अकबर का दरबारी कहा गया है और तीसरीपुस्तक में काशी निवासी सूरदास के नाम अबुल फजल का एक पत्र है। डॉ0 दीनदयालु गुप्त के अनुसार, ये दोनों सूरदास, चाहे वे भिन्न–भिन्न हों या एक ही, अष्टछाप के सूरदास नहीं थे।

एक अन्य ग्रंथ मूलगोसाईं चरित में गोस्वामी तुलसीदास के साथ सं0 1616 में सूरदास की भेंट का उल्लेख किया गया है। बहुत दिन तक विश्वास किया जाता था कि इस पुस्तक के रचयिता तुलसीदास के शिष्य बाबा बेनी माधवदास हैं, लेकिन डॉ0 माताप्रसाद गुप्त ने कई ठोस तर्कों के आधार पर इसे एक जाली ग्रंथ साबित कर दिया, इसलिए इसकी सूचनाओं पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

डॉ0 मुंशीराम शर्मा ने "सूरसौरभ" में भविष्य पुराण से एक श्लोक उद्धृत किया है। उनके अनुसार उस श्लोक में सूरदास से सम्बन्धित प्रायः सभी प्रमुख सूचनाएँ मिल जाती हैं। श्लोक इस प्रकार है।

सूरदास इति ज्ञेयः कृष्ण लीला करः कविः।
शम्भुर्वै चन्द्रभट्टस्य कुलेजातो हरिप्रियः।।[17]

---

16. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, 2006, पृ0 8
17. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, 2006, पृ0 8

सूरदास चन्दभट्ट के कुल में उत्पन्न हुए थे। पहले वे शैव धर्मावलम्बी थे, बाद में हरिप्रिय अर्थात भगवद् भक्त बने और उन्होंने अपनी कविताओं मे कृष्ण लीला का गायन किया।

लिखित सामग्री के अलावा बल्लभ सम्प्रदाय और उसके बाहर सूरदास के बारे में बहुत सी जनश्रुतियाँ भी प्रचलित है। उनमें सूरदास को एक असाधारण और अलौकिक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति बताया गया है। अधिकतर जनश्रुतियाँ वही हैं, जिनका उल्लेख अन्तः साक्ष्य और वहिः साक्ष्य से प्राप्त सामग्री में हो गया है। इसलिए उनका पुनः उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। आधुनिक विद्वानों ने इन्हीं बिखरे हुए सूत्रों को जोड़कर सूरदास के जीवनवृत्त का निर्माण किया है।

जन्मतिथि

सूरदास की जन्मतिथि के बारे में तरह–तरह की अटकलें लगाई गई हैं। बहुत दिन तक विश्वास किया जाता था कि उनका जन्म संवत् 1540 के आस–पास हुआ। "सूरसारावली" और "साहित्यलहरी" को लगभग एक ही समय की रचनाएँ मानकर अनुमान किया गया कि संवत् 1607 में सूरदास की उम्र 67 वर्ष थी, इसलिए वे संवत् 1540 के करीब पैदा हुए होंगे। बाबू राधाकृष्णदास, मिश्रबन्धु, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और डॉ0 रामकुमार वर्मा ने इसी मत का समर्थत किया है।

डॉ0 मुंशीराम शर्मा के अनुसार "सूर संवत् 1515 के लगभग उत्पन्न हुए"। "चौरासी वैष्णवों की वार्ता" में लिखा है कि बल्लभाचार्य ने सूरदास को "पुरूषोत्तम सहस्रनाम" सुनाया और उन्हें गऊघाट से अपने साथ लाकर श्रीनाथ मन्दिर में कीर्तन सेवा का काम सौंपा। श्रीनाथ मन्दिर की स्थापना संवत् 1576 में हुई और संवत् 1580 में पुरूषोत्तम सहस्रसनाम लिखा गया। इस आधार पर डॉ0 शर्मा का अनुमान है कि आचार्य जी से सूरदास की भेंट संवत् 1580 के

बाद सम्भवतः सं0 1582 में हुई होगी। उस समय उनकी उम्र 67 वर्ष थी। अतः संवत् 1515 के लगभग उनका जन्म हुआ होगा। जैसा कि आगे दिखाया जाएगा, बल्लभाचार्य से सूरदास की भेंट संवत् 1567 के आस–पास हुई थी, न कि संवत् 1582 में। इसलिए उसके आधार पर उनका जन्म संवत् 1515 नहीं सिद्ध किया जा सकता।

बल्लभ सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है कि सूरदास, बल्लभाचार्य से दस दिन छोटे थे। गोकुलनाथ जी की "निजवार्ता" और द्वारकेश जी के "भावसंग्रह" से भी इस बात की पुष्टि होती है। "बल्लभदिग्विजय" के अनुसार आचार्य जी का जन्म संवत् 1535 में वैशाख कृष्ण 10,दिन रविवार को हुआ था। इसलिए सूरदास की जन्मतिथि बैशाख शुक्ल 5,संवत् 1535 हुई। श्री नाथ द्वारे में उसी दिन सूरदास का जन्मोत्सव मनाया जाता है। पीछे मट्टू जी महाराज के "वैष्णवाह्निक" से एक पद उद्धृत किया गया हैं, जिसमें सूरदास की यही जन्मतिथि लिखी हुई है। श्री द्वारिकादास पारीख और प्रभुदयाल मीतल के अनुसार "अन्तः साक्ष्य से भी सूरदास का जन्म संवत्– 1535 ही सिद्ध होता है"। उनका तर्क है "बल्लभ सम्प्रदाय की सेवा प्रणाली के इतिहास की संगति से "सूरसारावली" का रचनाकाल सम्वत् 1602 स्पष्ट होता है। उस समय सूरदास की आयु 67 वर्ष थी। 1602 में 67 कम करने से 1535 रहते है"।

निष्कर्ष यह कि सूरदास का जन्म संवत् 1535 में वैशाख शुक्ल 5, दिन मंगलवार को हुआ था।

जन्म-भूमि और निवास स्थान

सूरदास आगरा और मथुरा के बीच स्थित "गऊघाट" नामक स्थान पर रहते थे। वहाँ पर उनकी भेंट महाप्रभु बल्लभचार्य से हुई। बल्लभाचार्य ने उन्हें वहाँ से अपने साथ ले जाकर गोबर्द्धन पर स्थित श्रीनाथ जी के मन्दिर में कीर्तन सेवा का काम सौंपा। रासलीला की भूमि पारसोली वहाँ से थोड़ी दूर है,

उसकी ओर सूरदास का विशेष आकर्षण था। इसलिए वे वहीं स्थाई रूप से रहने लगे। वहीं पर उनका गोलोकवास हुआ। इतना विवरण "चौरासीवार्ता" से प्राप्त होता है। इसकी सत्यता में सन्देह करने का कोई कारण नहीं रही बात सूरदास के जन्मस्थान की। उसके–बारे में कई तरह की सूचनाएँ मिलती हैं । हरिराय के "भावप्रकाश", प्राणनाथ के "अष्टसखामृत", जमुनादास के "धौल" और द्वारकेश जी के "भावसंग्रह" में दिल्ली के निकट स्थित "सीही" नामक गाँव सूरदास का जन्मस्थान बताया गया है। "साहित्यलहरी" के एक पद में, जिसका उल्लेख पीछे हो चुका है, सूरदास के पिता को आगरा के निकटवर्ती "गोपाचल" नामक स्थान का निवासी बताया गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और डॉ0 श्यामसुन्दरदास ने "रूनकता" को सूरदास का जन्मस्थान माना है। डॉ0 मुंशी राम शर्मा ने गोपाचल, रूनकता और गौघाट को एक में मिला दिया है। वे लिखते हैं, "गोपाचल और गौघाट दोनों में नाम की समता है। दोनों को आगरा के निकट बताया गया है। रूनकता भी यहाँ से पास है। अतः सम्भव है, सूर का निवासस्थान यहीं रहा हो" उनके अनुसार "सीही" मे अष्टदाप के सूरदास का नहीं, सूरदास मनमोहन का जन्म हुआ था, जो अकबर के कृपापात्र और संडीले के अमीन थे। डॉ0 पीताम्बरदत्त बड़विसल "गोपाचल" का अर्थ आधुनिक "ग्वालियर" से लेते हैं। उनके अनुसार सूरदास का जन्म ग्वालियर में हुआ था। मियासिंह के "भक्तिविनोद" में सूरदास को "मथुराप्रान्त" का निवासी बताया गया है। साम्प्रदायिक साहित्य में सूरदास की जन्मभूमि के रूप में "सीही" ग्राम का इतना उल्लेख है कि उसे सहसा नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता। श्री द्वारकादास पारीख और श्री प्रभुदयाल मीतल ने उसी को सूर की जन्मभूमि माना है। डॉ0 हरवंश लाल शर्मा भी उनका समर्थन करते हैं। दरअसल, अन्य किसी भी स्थान की अपेक्षा "सीही" के पक्ष में साम्प्रदायिक साहित्य में अधिक साक्ष्य प्राप्त होते हैं। इसलिए उसी को सूरदास की जन्मभूमि मानना उचित होगा।

माता-पिता

अब तक किसी भी स्रोत से सूरदास की माँ के नाम का पता नहीं चला है। आइनेअकबरी और मुन्तखिबुलतवारीख में अकबर के दरबार में रहने वाले एक सूरदास का उल्लेख है, जिनके पिता का नाम रामदास गवैया बताया बया है। डॉ0 ग्रियर्सन और डॉ0 बड़विसल उन्हीं रामदास को अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि सूरदास का पिता मान बैठे हैं। महामहोपाध्याय श्री हरप्रसाद शास्त्री को चंद के वंशज श्री नानूराम भाट से एक वंशावली मिली थी, जिसमें सूरदास के पिता का नाम रामचन्द्र वैष्णव भक्ति के अनुसार रामदास बन गए। वस्तुतः, इनमें से कोई अनुमान ठीक नहीं है। अष्टछाप के सूरदास को अकबर का दरबारी नहीं कहा जा सकता। हो सकता है, कोई अन्य सूरदास, सम्भवतः संडीले के अमीन सूरदास मनमोहन, अकबर के दरबार मे रहे हों और उनके पिता का नाम रामदास रहा हो , जिन्हें बाद में लोगो ने अष्टछाप के सूरदास से जोड़ दिया" नानूराम भाट से प्राप्त वंशावली और साहित्यलहरी के पूर्वोक्त पद में दिए गए वंशवृक्ष में पर्याप्त समानता है। इसलिए हरिप्रसाद शास्त्री और मुंशीराम शर्मा प्रभृत विद्वानों ने उस पर भरोसा करके सूरदास के पिता का नाम रामचन्द्र स्वीकार किया है। उस पद की प्रामाणिकता संदिग्ध है। अतः सूरदास के पिता का नाम रामचन्द्र नहीं माना जा सकता। हरिराय के भावप्रकाश और कुछ अन्य बाह्य साक्ष्यों के आधार पर अधिक से अधिक यही कहा ज सकता है कि सूरदास का जन्म दिल्ली के निकट सीही नामक गाँव में किसी निर्धन ब्राह्मण परिवार में हुआ था।

पारिवारक जीवन

"सूरसागर" के कई पदों से संकेत मिलता है कि सूरदास ने अपने जीवन का कुछ समय सम्भवतः, गृहस्थाश्रम में बिताया था। वे बार–बार कहते हैं, "स्त्री और पुत्र मुझे भजन नहीं करने देते, स्त्री और पुत्र के प्रेम में मेरी दुर्दशा हो रही

है, वृद्धावस्था में स्त्री और पुत्र ने मुझे छोड़ दिया" आदि–आदि। दूसरी ओर "भावप्रकाश" से पता चलता है कि सूरदास ने छः वर्ष की उम्र में ही घर छोड़ दिया था। अठारह वर्ष की उम्र तक वे अपने जन्मस्थान से चार कोस दूर एक तालाब के किनारे पीपल की छाया में झोपड़ी बनाकर रहते थे। तत्पश्चात् वहाँ से गऊघाट चले गए जहाँ उनकी भेंट बल्लभाचार्य से हुई। बल्लभाचार्य से भेंट की बात **"श्रीबल्लभ गुरू तत्व सुनायो लीला भेद बतायो"** जैसे आत्मकथनों, चौरासीवार्ता। और उन्य साक्ष्यों से भी पुष्ट होती है। यह भी अनुमान लगाया जाता है कि उस समय उनकी उम्र 32 वर्ष थी और तब तक वे सन्यास ले चुके थे। "तिलक लगाइ चले स्वामी ह्वै" से भी उनका स्वामी वेष में रहना सिद्ध होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बल्लभाचार्य के सम्पर्क में आने से कुछ पहले सूरदास विरक्त हो गए थे और उसके बाद आजीवन विरक्त रहे। विचारणीय केवल यह है कि तीस वर्ष की उम्र से पहले कुछ समय वे गृहस्थाश्रम में रहे थे अथवा नहीं ? अनुमान यही होता है कि वे किसी समय धरबारी नहीं रहे। "सूरसागर" के जिन पदों से ऐसे संकेत मिलते हैं, उन्हें उनके जीवन से न जोड़कर सामान्य कथन के रूप में समझना चाहिए। प्रायः सभी भक्त कवियों ने गृहस्थाश्रम को जंजाल समझकर उसकी निन्दा की है। सूरदास ने भी वही किया। उनके पदों में माँ–बेटे के स्नेह और स्त्री–पुरूष के प्रेम का जो स्वाभामिक चित्रण है, वह उनका जिया हुआ नहीं बल्कि कवि प्रतिभा द्वारा कल्पित किया हुआ है। कवि अथवा रचनाकार के लिए यह कोई कठिन अथवा असम्भव काम नहीं है।

जाति

सूरदास की जाति के बारे में बहुत विवाद है। श्री नानूराम भाट से प्राप्त वंशावली में उन्हें चन्द का वंशज बताया गया है। चन्दबरदाई भाट थे, इसलिए सूरदास भी उसी जाति के रहे होंगे। "साहित्यलहरी" के पूर्वोक्त पद में भी उन्हें चन्द का वंशज कहा गया है। डॉ0 मुंशीराम शर्मा उस पद की प्रामाणिकता में

पूर्ण विश्वास करते हुए भी सूरदास को ब्राह्मण मानते हैं। उनके अनुसार "भट्ट" शब्द "कवि" का पर्यायवाची है। प्राचीनकाल में जो लोग काव्य रचना करते थे, उन्हें भट्ट कहा जाता था। इसलिए चन्दरदाई को भट्ट ब्राह्मण कहा गया। भट्ट का अथ "भाट" नहीं समझना चाहिए। उसी पद के आरम्भ में आए हुए 'पृथुजागते' का पाठ 'प्रथ जगाते' मानकर सूरदास को जगा अथवा जगात जातीय भी कहा गया है। कुछ लोग जगात का अर्थ भाट मानते हैं और कुछ लोगों ने उसे 'घाट पर कर वसूलने वाला' बताया है। एक अन्य मत के अनुसार सूरदास 'पार्थज गोत्रीय' थे। इस मत का आधार भी 'प्रथुजगाते' शब्द ही है। 'साहित्यलहरी" के उक्त पद की प्रामाणिकता में सन्देह होने के कारण इन सभी मतों पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

सूरसागर के एक पद से सूरदास के 'ढाढ़ी' होने का संकेत मिलता है।

हौं तौ तिहारे घर कौ 'ढाढ़ी' सूरदास मेरौ नाउँ।[18]

एक अन्य पद में उन्हें 'जाट' कहा गया है–

ऐसै कुमुति 'जाट' सूरज कौं प्रभु बिनु कोऊ न धाम।[19]

श्री द्वारकादास पारीख और श्री प्रभुदयाल मीतल के अनुसार यह पद प्रक्षिप्त है। पहले पद के आधार पर भी सूरदास को 'ढाढ़ी' जाति का नहीं कहा जा सकता। उन्हीं विद्वानों ने लिखा है, "बल्लभसम्प्रदास में राधाष्टमी के दिन ढाढ़ी बनने की प्रथा बल्लभाचार्य के समय से ही चली आती है। उस समय श्रीनाथ जी के कीर्तनियाँ को ढाढ़ी बनकर आना पड़ता है। सूरदास आदि अष्टछाप के कवि श्रीनाथ जी के कीर्तनकार होने के कारण ढाढ़ी बनते थे और तत्सम्बन्धी पदों का गायन करते थे। इन पदों के आधार पर सूरदास को ढाढ़ी कहना इतिहास की एक बहुत बड़ी भूल कही जाएगी।"

---

18. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, 2006, पृ0 12
19. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, 2006, पृ0 12

सूरदास का जन्म सारस्वत ब्राह्मण परिवार में ही हुआ था। विरक्त होने के बाद वे जाति निरपेक्ष हो गए थे। अन्तः साक्ष्य से भी इसके प्रमाण मिलते हैं–

सूरदास प्रभु तुम्हरी भगति लगि, तजी जाति अपनी। और

बिकानी हरि मुख की मुसकान।
गई जाति अभिमान मोह मद पति हरिजन पहिचान।[20]

अन्धत्व

सूरसागर के कई पदों में सूरदास के अन्धे होने का स्पष्ट उल्लेख है। 'चौरासीवार्ता' में भी सूरदास को अंधे बताया गया है। वे कब अन्धे हुए ? इसका ठीक–ठीक पता नहीं चलता। 'सूरनिर्णय' के विद्वान् लेखकों ने प्राचीन हस्तलिखित संग्रहों में सूरदास के कुछ ऐसे पद खोज निकाले हैं, जिनसे उनके जन्मान्ध होने का संकेत मिलता है। 'भावप्रकाश' और अन्य परवर्ती साम्प्रदायिक ग्रंथों में भी सूरदास को जन्मान्ध बताया गया है। उन्होंने अपने पदों में प्राकृतिक दृश्यों, मनुष्यों और पशुओं की चेष्टाओं का जैसा सूक्ष्म और हृदयग्राही अंकन किया है, उससे उनके जन्म से नेत्रविहीन होने पर विश्वास नहीं होता। अनेक आधुनिक विद्वानों ने भी उनके जन्मान्ध होने पर संदेह व्यक्त किया है। डॉ0 मुंशीराम शर्मा श्री द्वारकादास पारीख और श्री प्रभुदयालमीतल तथा डॉ0 हरवंश लाल शर्मा का रूझान सूरदासको जन्मान्ध मानने की ओर दिखाई पड़ता है। श्री पारीख और श्री मीतल यह तो मानते हैं कि 'सूरदास के जन्मान्ध होने के विषय में आधुनिक विद्वानों की युक्तियाँ तक्र सम्मत हैं' और इसलिए 'उनको स्वीकार करने में हमको भी कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, ' फिर भी वे डॉ0 मुंशीराम शर्मा के शब्दों को दुहराते हुए सूरदास को जन्मान्ध स्वीकार कर लेते हैं। डॉ0 शर्मा ने लिखा है, 'प्रभु के सच्चे भक्त के सामने विश्व के विराट् रहस्य भी

---

20. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, 2006, पृ0 12

अनवगत नहीं रहते'। इस तरह की बातें आधुनिक वैज्ञानिक युग के बुद्धिवादी व्यक्ति के गले से नहीं उतर सकतीं। सूरदास अन्धे थे, यह बात जितनी सच है, लगभग उतनी ही सच यह बात भी है कि वे जन्मान्ध नहीं थे। 'चौरासीवार्ता' के अनुसार बल्लभाचार्य से भेंट के समय सूरदास नेत्रविहीन थे। इससे अनुमान होता है कि वे तीस वर्ष की उम्र से पहले ही अपनी आँखें खो चुके थे।

शिक्षा और संस्कार

सूरदास उच्चकोटि के कवि और अच्छे गायक थे। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था। सार्थक शब्दों के समुचित प्रयोग में उन्हें महारत हासिल थी। शब्दक्रीड़ा में भी वे किसी से पीछे न थे। प्राकृतिक दृश्यों का सुन्दर चित्रण और मनुष्यों एवं पशुओं की चेष्टाओं तथा अनुभूतियों का मार्मिक अंकन करने में वे अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखते थे। उनके गुणों को अच्छी तरह परखकर श्री बल्लभाचार्य ने उन्हें श्रीनाथ मन्दिर में कीर्तन सेवा का काम सौंपा और तानसेन से उनकी प्रशंसा सुनकर अकबर बादशाह ने उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की। उनमें इस तरह की क्षमताएँ कैसे आईं ? यह अब भी खोज का विषय बना हुआ है।

काव्य और संगीत दोनों में दक्षता प्राप्त करने के लिए प्रतिभा और प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। सूरदास में प्रतिभा कूट–कूट कर भरी थी, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु, उन्हें प्रशिक्षण भी मिला था अथवा नहीं ? इसके बारे में कुछ ज्ञात नहीं होता। जीवन के आरम्भ से ही भक्ति और अध्यात्म की ओर उनका विशेष झुकाव था। सत्य की खोज में वे बहुत भटक चुके थे। कर्म, योग, ज्ञान, उपासना आदि अनेक साधनाओं को उन्होंने आजमाया था। सम्भवतः उसी समय उनका सम्पक्र अनेक साधकों और मनीषियों से हुआ और उनसे उन्होंने बहुत कुछ सीखा। युवावस्था में उनकी भेंट महाप्रभु बल्लभाचार्य से हुई। आचार्य जी ने उन्हें भागवत दशम स्कन्ध की अनुक्रमणिका और श्री सुबोधिनी जी का

पाठ सुनाया। उन्हें तत्क्षण सम्पूर्ण भगवल्लीला स्पष्ट हो गई। यदि अनकी बुद्धि प्रखर और परिपक्व न होती और उससे पहले सत्संग द्वारा उन्होंने पर्याप्त ज्ञान न प्राप्त कर लिया होता तो यह कैसे सम्भव था? अतः अनुमान होता है कि उन्होंने उच्चकोटि के साधकों और मनीषियों के निकट सम्पर्क में रहकर अध्यात्म, साधना, काव्य और संगीत का अच्छा अभ्यास किया था।

सूर का व्यक्तित्व

व्यक्तित्व का विश्लेषण कभी आन्तरिक चेतना–केन्द्रों और स्नायविक संकायों के विकलन के आधार पर किया जाता है और कभी बाह्य परिस्थितिंयो के विश्लेषण के आधार पर बनाया जाता है। आन्तरिक केन्द्रों की खोज में कभी विकल राग–तंत्रियों की छटपटाहट सामने आती है, कभी चेतना के स्वाभाविक विकास को जटिल 'ग्रन्थियॉ' जकड.ती हुई मिलती है। और कभी इस आन्तरिक विक्षोभ के कारणों को बाह्य परिस्थितियों में खोजा जाता है। कभी कृतित्व या अन्य अभिव्यक्तियों का अध्ययन व्यक्ति के रहस्यों को प्रकट करता है।

'सूर' के व्यक्तित्व–विश्लेषण में सबसे आकर्षक आधार उनका अन्धत्व प्रतीत होता है। विकलॉग्ता हीनता – ग्रन्थि को जन्म देती है। नेत्र जैसी इन्द्रिय की हीनता से उत्पन्न ग्रन्थि और भी जटिल और कटु होगीं। 'सूर' की हीनता,ग्रस्त चेतना सूर साहित्य में यत्र–तत्र रो पड़ी है। सूर के विनय–साहित्य का स्वर अन्धत्व–जन्यहीनता से विचलित हो उठा है। इस बात को लेकर वह अपने इष्ट से झगड़ा भी है। अनुभूतियों के बाह्य संदर्भ सें चाश्रुष सम्पक्र न हो सकने पर सुर ने एक व्यंग्यपूर्ण विक्षोभ का भी अनुभव किया हैं। वात्सल्य और श्रृंगार दोनों ही भाव – स्थितियों में नेत्र–हीनता बाधा बनी है। उसकी यही विनय है कि उसे आगे भी नर–देह प्राप्त हो और उसे दो आँख भी मिलें। अन्धत्व निश्चित ही हीनता – ग्रन्थि का जनक है। यह हीनता – ग्रन्थि जन्मान्ध होने पर एक प्रकार की परिणति प्राप्त करती है, और पीछे अन्धा होना एक अन्य

प्रकार से दिशा निश्चित करता है। अन्तर्साक्ष में जन्मान्धत्व स्पष्ट नहीं प्रतीत होता। 'सूर निर्णय' में कुछ नवीन पदों की सूचना दी गई है, जिनसे सूर का जन्मांध होना सिद्ध होता है। यद्यपि इस प्रकार से प्राप्त कीर्तन – पदों की प्रामाणिकता अभी पूर्णतः स्वीकृत नहीं है फिर भी इन पदों की भाषा और भाव–भूमि सूर के प्रामाणिक पदों से साम्य अवश्य रखती है। बहिर्साक्ष में तो 'सूर' को प्रायः जन्मांध माना गया है। रघुराजसिंह कृत **'रामरसिकावली'** तथा मियाँसिंह कृत **'भक्त–विनोद'** इस दृश्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं। इन दोनों ही ग्रन्थों में सूर को जन्मांध कहा गया है। सांप्रदायिक बहिर्साक्ष अधिक विश्वसनीय हो सकता है। सांप्रदायिक लेखकों का सूर अथवा सूर सम्बन्धी अनुश्रुतियों के निकट का संबंध था।

श्री गोकुलनाथ जी रचित मूल चौरासी वार्ता सांप्रदायिक बहिर्साक्ष में सबसे प्रमुख है। इसमें अन्धत्व की सूचना तो मिलती है। पर जन्मांधता का स्पष्ट संकेत नहीं है। इस वार्ताका भावात्मक विस्तार और अतिरिक्त सूचनाओं के आधार पर विशदीकरण हरिराय जी ने किया। हरिराय जी ने स्पष्ट रूप से जन्मांध कहा है। उन्होंने 'सूर' और 'अंध' में भेद कियाः **'सूर' वह जो जन्म से नेत्र विहीन होः 'अंध' वह जो पीछे अंधा हो।** फिर उन्हें स्पष्ट रूप से जन्मांध कहा गया– 'सो सूरदास जी के जनमत ही सों नेत्र नाहीं हैं।'

हरिराय जी के इन स्पष्ट कथनों को सप्रामाणिक नहीं कहा जा सकताः उन्हें सम्प्रदाय की समसत परम्परा का ज्ञान था। सूरदास जी का एक चित्र भी किशनगढ. से प्राप्त हुआ है। इसका चितेरा सूर का समकालीन था। इस चित्र में सूर की ऑखे नहीं है। इन सभी प्रमाणों के आधारों पर सूर का जन्मांध मानना ही समींचीन प्रतीत होता है। **सूर के समकालीन श्रीनाथ भट्ट ने 'संस्कृत मणिमाला'** में सूर को जन्मांध कहा है– **'जन्मांधो सूरदासोऽभूत.....।'** प्राणनाथ कवि ने भी इसी प्रकार की उक्ति की है। सूर की प्रतिभा को देखकर भी ऐसा विश्वास होता है उनकी शक्तियों की अर्न्तमुख साधना ही इतना पूर्ण

विस्फोट कर सकी। जन्म से ही एक प्रमुख इन्द्रिय के हीन होने पर उसकी संचित शक्ति प्रतिभा–साधना को देखकर भी ऐसा विश्वास होता है।

'मूकं करोति वाचालं' वाली उक्ति अन्य कवियों में प्रभु के ऐश्वर्य निरूपण की औपचारिकता का अंग हो सकती है। 'सूर' के हीनता–ग्रस्त व्यक्तित्व के लिए यह एक मार्मिक पुकार बन गई। उनकी आशा और उनके विश्वास को इस विसद से समुचित संबल प्राप्त हुआ होगा। उनके विनय साहित्य में यही विश्वास उच्छलित है। सर्व –समर्थ प्रभु क्या नहीं कर सकते। उनकी कृपा से सब कुछ संभव है। यह विश्वास भौतिक परिणति के अभाव में एक वैज्ञानिक को तो संतुष्ट नहीं कर सकता। वह पिंड में ऑखो को उदित होता नहीं देख सकता। पर अन्तर्ज्ञान की क्षतिपूरक प्रखरता, या अन्य किसी इन्द्रिय की शक्ति में वृद्धि हो जाना, एक स्तर पर मनोविज्ञानी को स्वीकृत है। दार्शनिकों के मतानुसार यहीं अन्तःज्ञान या स्वयं प्रकाश ज्ञान का विकास है। इसी का नाम दिव्यदृष्टि या अर्न्तदृष्टि है। 'सूर' में इस दिव्यदृष्टि का प्रकाश, प्रायः समस्त बहिर्साक्ष में बतलाया गया है।

नाभादास जी ने 'भक्तमाल' में लिखा है कि ये अपनी दिव्यदृष्टि से भगवान की लीलाओं का अभ्यास पा सके। 'रामरसिकावलीकार' ने भगवान की दिव्य लीलाओं का आस्वाद इसी दिव्य दृष्टि के माध्यम से माना है– 'दिव्य दृष्टि देखहिं सुख भीना।' सामान्य रूप से 'सूर' के सम्बन्ध में ये बातें प्रचलित नहीं। प्राणनाथ ने भी अन्तर्चक्षुओं की विशालता का उल्लेख किया है। **बाहर नैन विहीन सो भीतर नैन विसाल।** कहा जाता है कि संप्रदाय में इनकी दिव्यदृष्टि की परीक्षा भी की जाती थीं। श्रीनाथ जी के श्रृंगार का आँखों देखा जैसा वर्णन सूर करते थे। एक दिन परीक्षा के लिए श्रीनाथ जी का नग्न श्रृंगार किया गया और सूर ने गा दिया– 'आज बने हरि नंगम नंगा।' चौरासी वार्ता में दिव्य दृष्टि की परीक्षा के सम्बन्ध में स्पष्ट उल्लेख है–

सो इनके हृदय में स्वरूपानन्द को अनुभव है। तासौ जैसौ तुम सिंगार करौगे सो तैसो हीं पद सूरदास जी वर्णन करिंकें गावेंगे। तासों भगवदीय की परीक्षा नाहीं करनी। सो सूरदास जी जगमोहन में बैठे हते। सो इनके हृदय में अनुभव भयौ।" इस प्रकार संप्रदाय में अर्न्तप्रकाश ज्ञान और तज्जन्य अनुभूतियों के धनी सूरदास की प्रतिष्ठा थी।

जन्मांघ सूरदास के जन्म से मॉ–बाप खिन्न हुए। सूर के प्रारंभिक जीवन का कुछ आभास हरिराय जी के भाव प्रकाश से होता है। भाव प्रकाश के अनुसार सूर का जन्म एक अत्यन्त दरिद्र ब्राह्मण परिवार में हुआ। जन्मांधत्व का संयोग सूर के वंश के दारिद्र्य से हुआ। कटुता बढती गई। वंश वालों को सूर भार स्वरूप प्रतीत होने लगे। बाल्यकाल से ही जन्मॉधत्व– जन्य हींनता से जिस बालक का अर्न्तमन एक कडवी घुटन से भर गया हो, वह दरिद्रता और उपेक्षा की चोट से अवश्य ही तिलमिला गया होगा। घर का समस्त वातावरण जैसे सूर को धकेल रहा हो: वहां रहना कठिन हो गया। छोटी अवस्था में ही सूर को गृह –त्याग करना पडा। गृहत्याग का कोई कारण भाव –प्रकाश में नहीं दिया गया है। उपेक्षा और तिरस्कार से बडा और कौन सा कारण हो सकता है ? यह दारूण कारण किसी भी छोटी घटना से मिलकर निष्क्रमणकी भूमिका तैयार कर सकता था। अपनी हीनता और सूर की अन्धता से सूर के मॉ बाप पीडित रहते थे। सूर के अपने अस्तित्व में एक व्यंग की पीडा घुलमिल गई। वे गृह–त्याग कर, सीहीं से चार कोस पर स्थित एक गांव में पेड के नीचे, तालाब के किनारे रहने लगे। **मियॉसिंह ने एक और वार्ता दी** है। 8 वर्ष की अवस्था में यज्ञोपवीत के अनन्तर सूर ने अपने मॉ–बाप के साथ ब्रजयात्रा की और मथुरा से उन्होंने लौटना स्वींकार नही किया। पर, इस वार्ता का संदिग्ध माना जाता है। तात्पर्य यह है कि उपेक्षा, हींनता और तिरस्कार से प्रताड़ित बाल सूर अधिक समय तक घर में न रह सका।

सूर का स्थान- एक पीपल के पेड के नीचे, तालाब के किनारे।

वैराग्य- भावना की अस्फुट छाया उनके मुख पर। छोटी अवस्था! इन सबका एक आकर्षण! सूर को एक बाल योगी की सी स्थिति प्राप्त हुई। गॉव का जन किसी आन्तरिक चमत्कार का दर्शन इस स्थिति में करता है। उपेक्षित और उत्पीडित सूर को अपने आस–पास एक मृदुल वातावरण का अनुभव हुआ। यहीं एक आकस्मिक चमत्कार घटित हुआ : 'सूर' ने स्थानीय जमींदार की कुछ खोई हुई गायों का पता बतलाया और वे मिल भी गई। बस, प्रसिद्धि हो गई– सूर शकुन बतलाते है; 'सूर' की वाणी सिद्ध वाणी है, जंमीदार ने उनके रहने खाने का प्रबन्ध कर दिया। सूर पूज्य हो। अन्न, वस्त्र और द्रव्य की कमी न रह गई : सूर के विकल–विक्षुब्ध अहं ने एक शीतलता का अनुभव कियाः तिरस्कार के प्रति मूक प्रतिहिंसा की चीख कुछ–कुछ शान्त हुई। सूरदास 'स्वामी जी' बन गये। कुछ लोगों ने उनसे दीक्षा ली : कुछ उनके सेवक हो गये। प्रातः–सायं संगीत कीर्तन भी जमने लगा।

सूर का काव्य और संगीत उनके सिद्ध व्यक्तित्व का अतिरेक्त आकर्षण बन गया। दरिद्रता की आरंभिक कटुता ऐश्वर्य की हलकी लहरों से धुलने लगी। उखडे हुए व्यक्तित्व को पैर रखने के लिये धरती मिलीं। अब हीनता–ग्रस्त व्यक्तित्व के लिये दो मार्ग हुएः सिद्ध वाणी के चमत्कार के द्वारा अपनी क्षति पूर्ति करें या काव्य और गायन की प्रतिभा साधना से उच्चतर क्षतिपूर्ति का मार्ग पकडे। सिद्धि और भक्ति में भी एक द्वन्द्व चलने लगा।

भक्ति का संकेत प्रातिभा साधना की ओर था– लोकरंजन की ओर। सिद्धि की सफलता कृच्छ् साधना पर आश्रित थीं– संदिग्ध भी थीं। सूर के अर्न्तद्वन्द्व का यही स्वरूप क्षतिपूर्ति के आरम्भिक क्षणों में घटित हुआ। इसी संघर्ष पूर्ण स्थिति मे सूर की अवस्था अठारह वर्ष की हो गई। सूर में वैराग्य भावना का जन्म तो हुआ, पर सिद्ध–जन्म मायाजाल में फॅसी रही। इसकी

सूचना उनके कुछ पदों में मिलती है। सत्य स्वरूप की खोज इस सबसे विलंबित हो गई। 'वे एक दिन गये अलेखै' जैसी उक्तियॉ पश्चाताप से विकल है। जब इस द्विविधा की मनः स्थिति को उचित मार्ग मिल गया, तब 'देर आये दुरूस्त आये' वाली कहावत चरितार्थ हुई। 'सूर 'की वाणी –

चल्यौ सबेरौ आयौ अवेरौ, लैकर अपने साजा।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे मिलि हैं, देखत जम दल भाजा।।[21]

इस प्रकार सूर ने अन्ततः द्विधा–ग्रस्त मनः स्थिति से छुटकारा पाया। इस स्थिति की चर्चा संभवतः सूर सम्प्रदाय में कभी–कभी करते रहे होंगे। इसीलिये यह अनुश्रुति प्रचलित होकर, हरिराय जी के 'भाव विलास' में अवतरित हुई। और सूरदास अपने कुछ सच्चे त्यागी सेवकों सहित मथुरा होते हुए गऊघाट पर आ गया। 'सिद्धि' की ओर चलने वाला व्यक्तित्व भक्ति की भावना में डूबने–उतराने लगा। काव्य–साधना के लिए अधिक अवकाश मिलने झंकृतियों ने सूर की उपासना के क्षणों को आप्लवित कर दिया : 'सूर' के अन्तराल का 'अभाव', घनीभूत भाव–संचार की चोटें खाकर खिसकने लगा। विनय और दैन्य अब व्यक्तित्व के बोझ नहीं थेः उनको काव्य का उदात्त माध्यम प्राप्त हुआ : यह काव्य 'हरि' को निवेदित होने लगा। 'दैन्य के उदात्तीकरण का क्षण अधिक से अधिक भाव–विह्वलता के क्षणों में कुछ ऐसी अनूठी उक्तियॉ भी निःसष्त होने लगीं जिनमें इष्ट के साथ अधिक सामीप्य प्रकट हुआ है। उसने अपनी मूलभूत अंधत्व–जन्य–हीनता झुँझलाहट को विशिष्ट विनयोक्तियों में डाल दिया है। एक दिन वह झगड पडा : किन तेरौ गोविंद नाम धर्‌यौ'? गोविंद तो वह है जो इन्द्रियों का दाता है। और तुम इतने निष्ठुी हो गये कि 'जन्म अंध कर्‌यौः' एक दिन उसने कह दिया, 'तुमने औरों को कुछ भी दिया होगा, पर मेरे ऊपर आपका कुछ भी अहसान नहीं है। मुझे तो आपसे नेत्र भी नहीं मिले –

21. डॉ0 चन्द्रभान रावत, सूर साहित्य : नव मूल्यांकन, पृ0 42

कहावत ऐसे त्यागीं दानि।
चार पदारथ दिए सुदामहिं अरू गुरू के सुत आनि।
रावन के दस मस्तक छेदे, सर गहि सारंग पानि।।
लंका दई विभीषन जन कों, पूरबली पहॅचानि।।
बिप्र सुदामा कियौ अजाची, प्रीति पुरातन जानि।।
'सूरदास' सों कहा निहोरौ, नैतन हू की हानि।।[22]

इस प्रकार की निर्भय, झुॅझलाहट से भरी उक्तियों के कारण ही तुलसी की ' विनय से सूर की विनय विशिष्ट हो जाती है। इनमें प्रभु के साथ समीप का सम्बन्ध व्यंजित है। अन्धत्व–जन्य–हीनता ने सूर की वाणी को खरा कर दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह अर्न्तमुख व्यक्तित्व इष्ट के साथ और घनिष्ट संबंधो की 'भावना'के लिए समुचित उपादान अभी नहीं जुड पा रहे थेः लीला पुरूष की लीलाओ। का रहस्य जानए इस भावना की परिणति के लिए आवश्यक है।

इस समय तक सूर संगीत–कला में कुशल हो चुके थे। सूर की संगीत कुशलता को देखकर कुछ विद्वान यह मानने लगे कि वे पहले हरिदासी संप्रदाय में दीक्षित थे। ब्रज के सभी संप्रदायों में संगीत का परिष्कर इसी सम्पर्क का परिणाम हो। इस प्रभाव–सम्पर्क के प्रमाण में सूर की राधा, यमुना और वृन्दावन के प्रति भक्ति–आसक्ति को बात भी कही जाती है। 'सूर ' को स्वामी भी कहा जाता था और यह उपाधि हरिदासी सम्प्रदाय में अधिक प्रचलित थीं। इन दृष्टियों से सूर का हरिदासी संप्रदाय से कुछ सम्पर्क प्रतीत तो होता है, पर इसका कोई पुष्टि प्रमाण प्राप्त नहीं है। इतना अवश्य माना जा सकता है कि 'सूर' का किसी माधुर्याश्रित संप्रदाय से कुछ सम्पर्क अवश्य था। उनके व्यक्तित्व में माधुर्य की एक अर्न्तधारा अवश्य प्रवाहित थी। वल्लभाचार्य जी से यह धारा सीधे–सीधे सूर को नहीं मिली। इस अर्न्तधारा में तीव्रता तब आई, जब गो0 बिट्ठलनाथ जी ने माधुर्य का समावेश सांप्रदायिक साधना में किया। संगीत

22. *डॉ0 चन्द्रभान रावत, सूर साहित्य : नव मूल्यांकन, पृ0 43*

और माधुर्य का स्त्रोत हरिदासी संप्रदाय को ही मानना आवश्यक और प्रामाणिक नहीं है। "ब्रज उस समय अवश्य ही संगीत का गढ रहा होगा। इस युग में ब्रज के जिस व्यक्ति से भी परिचय प्राप्त करते हैं, वही संगीतज्ञ है।" जिस समय गौघाट पर उनकी बल्लाभाचार्य जी से भेंट हुई, सूर संगीत कला का अर्जन कर चुके थे।

गऊघाट के पास श्री बल्लभाचार्य जी की बैठक है। अडैल से ब्रज जाते हुए महाप्रभू यहॉ ठहरे। सूरदास जी को उनके एक सेवक ने सूचना दी दक्षिण और काशी में मायावाद का खंडन करने वाले महाप्रभु बल्लभाचार्य जो गऊघाट पर पधारे है। उन्होने मायावाद का खंडन करके भक्तिमार्ग की स्थापना की है। सूर ने अपनी हींनता से निरन्तर संघर्ष करते हुए व्यक्तित्व को एक अत्यन्त महिमामय व्यक्तित्व से संपर्क करने की इच्छा हुई। जब आचार्य महाप्रभू भोजनादि से निश्चिन्त होकर बैठे , तब 'सूरदास' जी उनके दर्शन के लिए गए। वार्ताकार ने इस प्रसंग को इस प्रकार लिखा है– "तब सूरदास जी अपने स्थल तें आय कें श्री आचार्य जी महाप्रभु के दरसन कों आये। तब श्री आचार्य जी महाप्रभु ने कह्यो जो 'सूर' आओ, बैठो। तब सूरदास जी श्री आचार्य जी माप्रभून कौ दरसन करिकें आगे आय बैठे।"

सूर के क्षत–विक्षत और निरंतर संघर्षशील व्यक्तित्व को एक महान् व्यक्तित्व से जैसे मृदुल आह्वान मैने संदेह करते है। वास्तव में यह दर्शन चाक्षुष नहीं था। मानसिक था। आचार्य जी के सामने उपस्थित होना ही उनके दर्शन करना था।'सूर' के मन में आचार्य जी के व्यक्तित्व का एक बिम्ब अवश्य बन गया थाः एक भावना मूर्त हो उठी थी। वही दर्शन है। आचार्य जी के आह्वान–शब्द एक ध्वन्यात्मक बिंब सूर के मन में प्रस्तुत कर रहे थे। यह बिम्ब आत्मीयता से सजल था। जहां 'सूर' सम्बोधन में बाह्य रूप से एक व्यंग्य प्रतीत होता है, वहॉ ध्वनि भी निकलती है कि महाप्रभु जी ने कहा हो : सूर होना अभिशाप नही; यह वरदान भी बन सकता है। इन भावनाओं की मूक झंकृतियॉ

सूर के अन्तराल में ही रही थीं कि सूर को सुनाई पडाः 'भगवद् यश वर्णन करो', सूर! आचार्य जी गायन और प्रेम की बात सुन चुके थे। सूर को जैसे लगा कि उनके संकुलित व्यक्तित्व का उद्घाटन और विस्तार किया जा रहा है। सूर ने अपनी हीनता के स्वर को विनय–भाव में ढाल कर एक पद गायाः हौं हरि! सब पतितन को नायक।' और इसके पश्चात् इसीं भावना को एक अन्य स्वर और शब्द मिलाः 'प्रभु ! ही सब पतितन हो टीको।' जैसे समस्त वातावरण में सूर की आकुल–व्याकुल चेतना का नादात्मक संचार हो उठा हो! बल्लभाचार्य जी को सूर की स्वर लहरी में व्याप्त कुंठा और करूणा ने विगलित कर दिया। 'सूर' के संगीत में आचार्य जी को 'घिघियाकर दैन्य–प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं : तुम्हारी स्वर लहरी में लीला–भावना भी सज सकती है।' सूर को इसमें भी एक व्यंग्य ही सुनाई पडा। वे फूट पडे– 'कहां मैं और कहॉ लीला पुरूषोत्तम की सुर–मुनि मोहक लीलाएँ।' और आचार्य जी के आश्वासन की छाया और भी प्रगाढ हो गई–लीलाएँ।' और आचार्य जी के आश्वासन की छाया और भी प्रगाढ हो गई–लीलाओं का मर्म–बोध तुमको हम करायेंगे।' सूर जैसे वरदानों की फुहारों से सिहर उठा। उनके अन्तर्चक्षुओं के सामने इन्द्र–धनुष नाच उठे। एक चिर प्रतिक्षित क्षण सहसा खिल पडा। वह क्षण जिसमें सूर अशेष रूप से अपना समप्रण कर सकते थे; वह क्षण जिसमें सूर का हीनता–ग्रस्त व्यक्तित्व धीरे–धीरे 'गौरव' में संक्रमित होने लगा। तब सूर ने 'महाप्रभू के सन्निधान पद कीये'–

चकई री चलि चरन सरोबर, जहॉ न प्रेम वियोग।
जहॅ भ्रम–निसा होत नहिं कबहूँ , सो सायर सुख योग।।
सनक से हंस , मीन सिव मुनि जन, नख रवि–प्रभा प्रकास।
प्रफुलित कमल निमिष नहिं ससि डर, गुंजत निगम सुवास।।
जहाँ सुम श्री सहस्त्र सहित नित क्रीडत, सोभित 'सुरदास'।
अब न सुहाय विषय रस–छिल्लर, वा समुद्र की आस।।[23]

23. डॉ0 चन्द्रभान रावत, सूर साहित्य : नव मूल्यांकन, पृ0 45

इस प्रकार सूर के व्यक्तित्व के आगे का क्षितिज विस्तृत हुआ। अनजान में ही उनकी चेतन–हीनता के जीर्ण केंचुल को उतारकर महिमा की स्थिति में संक्रमित हो गई। दिक्भ्रान्त व्यक्तित्व को सुनिश्चित भाव–दिशा मिली। काव्य को विषय मिलाः अस्त–व्यस्त संगीत वीणा को अछूते–अज्ञात स्वर मिले। सूर का समय व्यक्तित्व–हीनता के भार से मुक्त होकर आभार–नत हो गया।

आचार्य जी ने 'सूर' को अपनी शरण में लिया। सांप्रदायिक विधि के अनुसार सूर दीक्षित हुए। 'सूर' के कानों में गुरूमुख से निर्गत अष्टाक्षर मंत्र 'नाम' गूँज उठा– 'श्रीकृष्णः शरणं मम।' 'नाम' की ध्वनि और गुरू के उष्ण श्वास का अनुभव 'सूर' ने साथ– साथ किया। दूसरी सांप्रदायिक औपचारिकता 'समप्रण–दीक्षा' हैः वह भी सम्पन्न हुई। तदनंतर लीला–अनुक्रम का कथन किया। 'दशम स्कंध की अनुक्रमणिका', भागवत की स्वचरित टीका सुबोधिनी' और भागवत–सार–समुच्चय रूप 'पुरूषोत्तम सहस्त्रनाम' के रूप में आचार्य जी ने निज प्रसाद दिया। सूर के सम्मुख समस्त गेय विषय की सीमाएँ निश्चित हो गई। 'सूर' को लीला–रहस्य अवगत हुआ। 'सूर' का चेतन–अचेतन कृष्ण–लीलाओं से भर उठा। उनके अन्तर्चक्षुओं को सब कुछ दृष्य हो गया। **वार्ता के अनुसार 'आचार्य जी ने तब पुरूषोत्तम सहस्त्रनाम सुनायी।** तब सूर का सम्पूर्ण भागवत की स्फुरना भई।' यह सब आचार्य जी के त्रिदिविसीय गौघाट–निवास काल में सम्पन्न हुआ।

1. **श्री बल्लभ अबकीं बेर उबारौ।**
   'सूर' अधम कौं कहूँ ठौर नही बिनु एक सरन तुम्हारौ।
   मन रे तू भूल्यौ जनम गॅवाबैं।
   'सूरदास' बल्लभ डर अपने चरन–कमल चित लाबै।
   मन रे तैं आयुष वृथा गॅवाई।
   अजहूँ चेत कृपाल सदा हरि श्री बल्लभ सुखदाई।
   'सूरदास' सरनागत हरि की और न कछू उपाई।।[24]

24. डॉ0 चन्द्रभान रावत, सूर साहित्य : नव मूल्यांकन, पृ0 46

2. अजहू सावधान किन होहि।
कृष्ण नाम सो मंत्र संजीवनि, जिन जग भरत जिवायौ।
बार बार ह्वै स्त्रवन निकट, तोहिं गुरू–गारुडी सुनायौ।।[25]

3. या में कहाघटैगौ तेरी।
नंदनंदन कर घर कौ ठाकुर, आपुन ह्वै रहैं चेरौ।
सबै समप्रन 'सूर' स्याम कों, यह सॉचौ मत मेरौ।।[26]

वहां से महाप्रभु बल्लभाचार्य जी गोकुल की ओर चले। 'सूर' गुरू के अनुवर्ती हुए। अब और कोई दिशा नहीं रही। 'सूर' आचार्य जी के साथ गोकुल गये। वार्ता में इस प्रसंग का कथन इस प्रकार हैः–

"अब जो श्री आचार्य जी महाप्रभु ब्रज कौ पॉव धारे, सो प्रथम श्री गोकुल पधारे। तब श्री आचार्य जी महाप्रभून के साथ सूरदास जी हू आये। तब श्री महाप्रभु जी अपने श्रीमुख सौं कह्यौ जो सूरदस जी श्री गोकुल को दरसन करो, सो सूरदास ने श्री गोकुल को दण्डवत करीं। श्री गोकुल की बाल–लीला सूरदास जी के हृदय में फुरी और शक्तिशाली संकेत ने सूर के मन को द्वन्द्वमुक्त कर दिया। यह 'द्विविध ऑधरे ' का जैसे ज्योति संस्कार हुआः चेतना को अन्तर्बाह्म अन्धत्व से छुटकारा मिला। गिरि गोवर्धन पर स्थित श्रीनाथ जी का मंदिर सूर की प्रातिभ साधना का केन्द्र बन गया। सूर–काव्य की अनिंद्य स्त्रोतस्विनी इसी स्त्रोत से प्रवाहित होकर, रसिकों के अँधेरे गह्वरों में प्रविष्ट होकर, ज्योति–निर्झरों की स्फूर्ति भरने लगी। श्रीनाथ जी को एक दिव्यदृष्टियुक्त अन्धा कीर्तनियां मिला– ब्रजभाषा को एक अमर गायक मिलाः वल्लभ संप्रदाय को एक 'जहाज' मिला : वल्लभाचार्य जी को अपनी भाव–साधना के एकान्त क्षणों का एक साथी मिला। इस प्रकार सूर के व्यक्तित्व का परिष्कार और पुर्नजन्म हुआ।

---

25. डॉ0 चन्द्रभान रावत, सूर साहित्य : नव मूल्यांकन, पृ0 46
26. डॉ0 चन्द्रभान रावत, सूर साहित्य : नव मूल्यांकन, पृ0 46

श्रीनाथ जी सूर के भ्रमित व्यक्तित्व के लिये आकर्षण केन्द्र बन गये। अनेक पदों में सूर ने अपनी भक्तिभावना उनको निवोदित की। – या यों कहिये सभी पद उनको संबोधित किये गये। सूर के व्यक्तित्व का बाह्म परिवेश श्री वल्लभाचार्य जी के प्रेरक शब्दों से गूँज रहा था। 'सूर' का अन्तराल श्रीनाथ जी की छाया से आच्छादित था। उन्हें अन्तध्वनि भी सुनाई देती थी। सूर को अपने आन्तरिक क्षणों में श्रीनाथ जी का साक्षात्कार जैसा होता था। उन्हें उनकी वरदान– वाणी भी सुन पडती थी– **'स्याम कह्यौ 'सूरदास'सौं मेरी लीला सरस बनाय' अथवा 'तब बोले जगदीस जगत गुरू सुनहु 'सूर' मम गाथ।'** ये स्वर सूर को भाव समाधि की स्थिति में सुनाई पडते थे। सूर संभवतः अष्टयाम भाव समाधि में लीन रहते थे। समस्त रस–कोष उमड कर समाधि और समाधि भाषा को स्नात कर देता था। अब उनका व्यक्तित्व अथाह–अकूल रसाम्बुधि का जीव था।

यह रस सागर श्री गिरि गोवर्धन की उपत्यका में उमडा था। यहॉ से लगभग एक मील की दूरी पर परासौली में सूर की कुटी थी। वहीं श्री आचार्य जी की बैठक है। आचार्य जी भाव साधना के अत्यन्त एकान्त क्षणों में सम्भवतः सूर का प्रवेश था। महाप्रभु सूर को 'सागर' नाम से भी पुकारते थे। भगवतोक्त लीलाओं के माध्यम से सूर ने जिस रस–सागर का उद्घाटन किया था, वह वस्तुतः उनके व्यक्तित्व से भिन्न नहीं था– सूर का व्यक्तित्व,एक लहराता हुआ चलता–फिरता रस – सागर।

महाप्रभु जी भगवान की लीलाओं को 'क्षीर सागर' से उपमित करते थे। जिस व्यक्तित्व में यह लीला– क्षीराब्धि अवशेष रूप से अवतरित हो गया हो– वही है 'सागर' सूर सागर, रस सागर इसकी आत्मचुंबी बीचियों की कल्कल् से साहित्य भर उठा। इस संबोधन को पाकर उनका व्यक्तित्व अज्ञात क्षितिजों तक विस्तृत हो गया।

साहित्य - सृजन : रचनाऐं (कृतियाँ)

सृजन के लिए जैसे उन्मुक्त व्यक्तित्व की आवश्यकता होती है वैसा सूर को मिला था। वह अत्यन्त केन्द्रित, समप्रित और गतिशील थे। दीर्घायु सूर को साधना की जहॉ आन्तरिक शक्तियॉ उपलब्ध थीं, वहॉ कालगत अवकाश भी अधिक मिला। 'सूर' की साहित्य साधना भाव विकास की दृष्टि से उत्कृष्ट और परिमाण की दृष्टि से विस्तृत होती गई। इस साधना के मार्ग में जो भी बाधाऍ आई, उनका निरसन भी उनका जाग्रत व्यक्तित्व करता गया। उनकी गतिशीलता जहाँ आन्तरिक शक्तियों से पुष्ट हुई थी, वहाँ उन्हें ब्राह्म परिस्थितियों के कारण भी भाव–विकास करना पडाः हीनताजन्य दैन्य–वल्लभोक्त वात्सल्य–साधनात्मक मधुराभक्ति–विट्ठलोक्त श्रृंगार–सेवा :

इस प्रकार साधना के आयासों को नवीन उत्तेजना मिलती गई। किसी स्थिति में सूर ने स्थैर्य या वासीपन का अनुभव नहीं किया। साधना में नवीनता और ताजगी बनी रही। साहित्य–साधना के इस पूर्ण सम्प्रति रूप ने हमको जो दिया, वह किसी भी देश या युग के लिए गर्व की वस्तु हो सकती है। सूर की दृष्टि हीनता के कारण बहुत कुछ लिपिबद्ध न हो सकाः बहुत कुछ अभी भी कहीं बंद पडा है। जो कुछ प्राप्त है, वह भी कम नहीं है। उसका सामान्य परिचय आगे दिया गया है।

रचना-तालिका

सूरदास के नाम से कई रचनाएँ प्रचलित हैं। इनमें से कुछ प्रकाशित है। और कुछ अप्रकाशित। इनमें से कुछ की सूचना खोज रिपोर्टो से प्राप्त होती है और कुछ का परिचय प्राचीन ग्रन्थागारों के संग्रहो से मिलता है। अब तक प्राप्त सूचनाओं के आधार पर उनकी 25 कृतियाँ बतलाई जाती है। उनकीं सूची इस प्रकार हैः

1. सूर सारावली
2. साहित्य लहरी
3. सूरसागर
4. भागवत भाषा (संस्कृत)
5. दशम स्कंध भाषा
6. सूरसागर सार
7. सूर रामायण
8. मानलीला
9. राधा रसकेलि कौतूहल
10. गोवर्धनलीला
11. दान लीला
12. भँवरगीत
13. नागलीला
14. व्याहलो
15. प्राणप्यारी
16. दृष्टि कूट के पद
17. सूर शतक
18. सूर– साठी
19. सूरपच्चीसी
20. सेवाफल
21. विनय के पद
22. हरिवंश टीका
23. एकादशी माहात्म्य
24. नल दमयंती
25. रामजन्म।

इनमें से अन्तिम चार (22–25) अप्रामणिक मानी जाती है। इनमें से 'सूरसागर' सर्वस्वीकृत प्रामाणिक रचना है। अतः इसके अंशभूत अन्य संग्रह जो उक्त सूची में सम्मिलित है, स्वतः प्रामाणिक सिद्ध हो जाते है। सूरसागर सार, सूर रामायण, मानलीला, राधारस केलि कौतुहल, गोवर्धन लीला (सरसलीला) दानलीला, भँवरगीत, नागलीला, ब्याहलो, प्राणप्यारी, दृष्टिकूट पद और सूरशतक, सूरसागर के ही अंश संस्करण है। सूर सारावली और साहित्य लहरी को मिश्रबन्धु, रामचन्द्र शुक्ल, डा0 दीनदयालु गुप्त, पं0 नंददुलारे बाजपेयी, श्री प्रभुदयाल मीतल तथा डा0 बेनीप्रसाद प्रामाणिक मानते हैं। केवल डा0 ग्रजेश्वर वर्मा ने दन्हें सूर–कृत नहीं माना है। इस मत पर अन्यत्र विचार किया गया है। इन तीन ग्रन्थों के अतिरिक्त चार और स्वतन्त्र रचनाएँ प्रामाणिक रूप से सूर कृत हैः सूरसाठी, सूर पचीसी, सेवा–फल और सूरदास के विनय आदि के स्फुट पद। **सूर के यश का प्रमुख स्तंभ 'सूरसागर'** है। **'साहित्य–लहरी'** काव्यरूप और शैली की दृष्टि से अपना स्थान रखती है। 'सूर–सारावली' का महत्व सूर के सैद्धान्तिक पक्ष और सांप्रादायिक परिवेश को स्पष्ट करने की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शेष चार रचनाएँ छोटी हैं। इस प्रकार सूर की सात प्रामाणिक रचनाएँ हुई।

यद्यपि इन रचनाओं के संपादन के संबन्ध में प्रयत्न हुए हैं, फिर भी पूर्ण वैज्ञानिक संस्करणों की आवश्यकता बनी हुई है।

सूर की उक्त प्रमाणिक रचनाओं को संदर्भ की दृष्टि से तीन भागों में रखा जा सकता हैः स्वान्तः सुखाय कृतियॉ, दूसरों के लिए लिखी कृतियॉ तथा संप्रदाय के लिये प्रस्तुत रचना। **'सूरसागर'** और स्फुट पद, पहले विभाग में आने वाली रचनाएँ है। इनमें संप्रदाय के तत्वों का सायास या सचेष्ट समावेश नहीं है। पूर्णतः भाव–समप्रित होकर सूर ने कृष्ण–लीलाओं की भावात्मक स्फीतियों का उद्घाटन किया है। जहॉ स्त्रोत–भागवत–के कथा–संग बन्धन बने है, वहॉ विवरणात्मक या इतिवृत्तात्मक पदों की रचना करके सूर ने मुक्तिलाभ किया है फिर भावाप्रित व्यक्तित्व स्वन्त्र साधना में लगा है। 'सूर' का व्यक्तित्व दूसरों के प्रति उदासीन नहीं था। दूसरों के प्रति सहानुभूति , उनकीं जिज्ञासा और आतुरता ने भी 'सूर' को कुछ करने के लिए उत्तेजित किया। दूसरों के लिए जो साहित्य– रचना की गई, उसके भी दो विभाग हैंः चेतावनी पूर्ण रचनाएँ और एक विशिष्ट पद्धति के भावोद्बोधन के लिए की गई रचनाएँ : चेतावनी पूर्ण रचनाओं में 'सूरपचीसी' 'सूरसठी' आती हैं। सूर के ऐसे पद जो किसी ज्वारी के लिए या अन्य किसी भ्रमित व्यक्ति के उद्धार के लिए लिखे गये, इसी श्रेणी की रचनाएँ कही जायेंगी। 'साहित्यलहरी' काव्य पद्धति से भक्ति रसोद्–बोध के लिए रची गई। 'सूरसरावली' और 'सेवाफल' सांप्रादायिक दृष्टि के स्पष्टीकरण और उसकी प्रतिष्ठा के लिए लिखी गई। संक्षेप में–

सूर सारावली

सूरसागर की कुछ मुद्रित प्रतियों के आरम्भ में यह ग्रन्थ संग्रथित है। इसमें 1107 तुकें है। इसके सम्बन्ध में यह मान्यता रही है कि इसमें 'सूर–सागर' का सार दिया गया है अथवा सूर के सवालाख पदों का यह सूचीपत्र है। इसमें स्वयं इस प्रकार का संकेत हैः

श्री वल्लभ गुरू तत्व सुनायौ, लीला–भेद बतायौ।
ता दिन लें हरि लीला गाई एक लक्ष पद बंद।
ताकौ सार 'सूर' सारावलि गावत अति आनंद।[27]

डॉ0 ब्रजेश्वर वर्मा ने इस ग्रन्थ को अप्रामाणिक माना है:'' यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि कथावस्तु, भाव, भाषा, शैली और रचना के दृष्टिकोण के विचार से 'सूरसागर–सारावली' सूरदास की प्रामाणिक रचना नहीं जान पडती।'' डा0 वर्मा ने अपने अभिमत के समर्थन में सूरसागर और सारावली के बीच 27 अन्तर दखलाए हैं। साथ ही डा0 वर्मा ने यह भी लिखा है कि 'सारावली' सूरसागर के पदों का सूचीपत्र नहीं है। यह एक स्वतंत्र रचना है, जिसकी कथावस्तु में सूरसागर की कथावस्तु से घनिष्ट साम्य होते हुए भी उसे निश्चित सूरसागर का संक्षेप नहीं कह सकते।

''श्री द्वारकादास परीख और श्री प्रभुदयाल मीतल ने इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता का परीक्षण अन्तर्साक्ष और सांप्रादायिक साक्ष के आधार पर किया है। पहले तो उन्होंने यह सिद्ध किया है कि यह सवालाख पदों की सूची नहीं है। वास्तव में यह एक स्वतन्त्र रचना है। इसकी विषयवस्तु और सूरसागर के कीर्तन भाग की विषयवस्तु में इतना साम्य है, जो सूरसागर और सारावली के एक ही कर्त्ता को सिद्ध करता है। अन्त में उन्होंने इसे पूर्ण प्रामाणिक रचना माना है।

सरावली की सूचना के अनुसार इसकी रचना कवि ने 67 वर्ष की आयु में की थीं। जो लीला रहस्य शिव के लिए भी अप्राप्य था, उसका साक्षात्कार कवि ने गुरूकृपा से 67 वर्ष की अवस्था में किया। यदि जन्म संवत् की दृष्टि से 67 वर्ष की अवस्था देखी जाय, तो इसका रचना काल सं0 1602 वि0 ठहरता है। मीतल जी ने विषय वस्तु के सांप्रादायिक विकास

---

27. डॉ0 चन्द्रभान रावत, सूर साहित्य : नव मूल्यांकन, पृ0 105

सिव विधान तप करेऊ बहुत दिन, तऊ पार नहीं लींन। तुक, 1102 की दृष्टि से इसी रचना काल को उचित कहा है। साथ ही यह सूरसागर का सूची पत्र न होकर एक स्वतंत्र रचना सिद्ध होती है।

इसकी विषयवस्तु को भी कवि ने स्पष्ट किया है। उसने लिख है कि आरंभ में मैने कर्म–योग के मार्गों को अपनाया और भ्रमित होता रहा; अन्ततः श्री वल्लभाचार्य जी ने लीला–रहस्य का उद्‌घाटन किया और मैंने भगवान की लीलाओं का गायन आरम्भ कर दिया। इससे प्रकट होता है कि सूर ने भगवान की दिव्य लीलाओं का तात्विक स्वरूप इसमें स्पष्ट किया है। लीलाओं का सांप्रादायिक दृष्टि से तत्व निरूपण ही कवि की इस रचना में अभीष्ट है। वार्ता–साहित्य के साक्ष से प्रतीत होता है कि शरणागति के समय महाप्रभु बल्लभाचार्य जी ने 'दशम स्कंध की अनुक्रमणिका' और 'पुरूषोत्तम सहस्त्रनाम' सुनाया था। इसी प्रारम्भिक ज्ञान के आधार पर सूर को श्री वल्लभकृत 'सुबोधिनी' का बोध हुआ था।

"पाछें आप दशम स्कंध की अनुक्रमणिका करी हती सो सूरदास को सुनाये ..... सो सागरी श्री सुबोधिनी को ज्ञान श्री आचार्य जी ने सूरदास कूँ पुरूषोत्तम सहस्त्रनाम सुनायौ। तब सगरे श्री भागवत की लीला सूरदास के हृदय में स्फुरी। सो सूरदास ने प्रथम स्कंध श्री भागवत सों द्वादस स्कंध पर्यत कीर्तन वर्णन कियौ।"

इस प्रकार 'पुरूषोत्तम सहस्त्रनाम' के श्रवण के पश्चात् सूर को समग्र विषय का अंर्तज्ञान हुआ। 'पुरूषोत्तम सहस्त्रनाम' वास्तव में श्रीमद्‌भागवत का 'सार समुच्चय' ही हैं। 'श्रीमद्‌भागवत' में से ही महाप्रभु ने शुद्धाद्वैत सिद्धान्त प्रतिपादक एक हजार नामों को उद्‌धृत कर 'पुरूषोत्तम सहस्त्रनाम' की रचना की है।'' सूर ने 'तत्व' कर यहॉ तात्पर्य है– शुद्धाद्वैत दर्शन की दृष्टि से भागवत का तत्वाख्यान। पुरूषोत्तम सहस्त्रनाम में महाप्रभु जी ने भागवतोक्त सर्ग, विसर्ग,

स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय नामक दशविध लीलानामों का स्कंधानुसार निरूपण किया है। 'लीला–भेद बतायौ' से सूर ने इसी लीला– दर्शन के प्रबोध की ओर संकेत किया है। लीला–तत्व का बोध समग्र भागवत के अर्थ–बोध का सूचक है। इसी समग्र अर्थ को 'सूर' ने सारावली में अनुस्यूत किया है। श्रीमद्भागवत की लीलाओं का कथासूत्रावलंबी भाव–विस्तार सूरसागर में किया गया है और उसी का सरल भाषा में तत्वाख्यान सारावली' में। 'सारावली' में कथासूत्र और भाव विस्तार की ओर कवि का इतना ध्यान नहीं है, जितना तत्व के स्पष्टीकरण की ओर। 'उसके सिद्धान्तात्मक सर्गादि दशविध लीलाओं के सार–तत्व रूप से, जिसको उन्होंने सारावली नाम दिया है। 'सार' का तात्पर्य संक्षिप्ति या सूची नहीं है। इसका अर्थ है सिद्धान्त का सार या तत्व।' **'सूरसागर' यदि कीर्तन – काव्य है, तो सारावली सिद्धान्त काव्य।** महाप्रभु जी ने दशधा लीलाओं का समग्र तत्व 'सूर' के अंतकरण में प्रतिष्ठित कर दिया था। इसी के फलस्वरूप 'सूर' स्वयं सागर बने थे। इसी सागर के तात्विक रत्नों का आकलन 'सारावली' में है। 'पुरूषोत्तम सहस्त्रनाम' और 'सारावली' के अनुक्रम और विवेचन में पूर्ण साम्य है। सारावली की रचना का उद्देश्य 'सूरसागर' के उद्देश्य से भिन्न है।

सारावली के विषय का एक दूसरा विभाग भी है– 'सरस संवत्सर लीला।' डा0 मुंशीराम शर्मा ने 'सरस' नामक संवत्सर की कल्पना की है। वास्तव में इसका अर्थ है 'संवत्सर की सरल लीला।' वर्ष भर की दान–मानादि रसात्मक लीलाओं का निरूपण भी 'सारावली' में हुआ है। रसात्मक श्री कृष्ण ने शुद्ध आनन्दमयी लीलाएँ भौतिक नहीं, शुद्ध भावमय हैं। इन्हीं लीलाओ का गायन पद्म, बह्म, वाराह् आदि पुराणों, श्रीमद्भागवत,

गर्ग संहिता, नारद पांचरात्र आदि में हुआ है। पुष्टिमार्गीय सेवचा–विधान में भी इनका महत्वपूर्ण स्थान है। इन लीलाओं से संबंद्ध वर्षोत्सवों की तथा नित्य भावनाएँ है। नित्य की भावनाएँ। लीला–चर्या से सम्बन्धित हैं। नन्द–भवन

की बालभावना और निकुंज की किशोर–भावना तक नित्य–भावना का विस्तार है। प्रातः काल से शयन पर्यत नित्य–भावना के अनेक रूप घटित होते हैं। वर्षोत्सव की लीलाओं में प्राकट्य से लेकर, ऋतुपरक लीलाओं (हिलना, होलीं आदि) तक का भाव–प्रसार समाविष्ट है। 'सूरदास जी ने रसात्मक कृष्ण की इन नित्य और वर्षोत्सव भावनाओं आरम्भ जन्माष्टमी से माना गया है। यदि विषय के पूर्वाद्ध में शुद्धाद्वैत दर्शन का तत्वान्वेषण किया गया है, तो उत्तरार्द्ध में पुष्टिमार्गीय सेवा' भावना का स्वरूप और अनुक्रम स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार सारावली शुद्धाद्वैत दर्शन और संप्रदाय में मान्य लीला–भावनाओं का कथन करने वाला ग्रन्थ है। इसकी रचना में शुद्ध सांप्रदायिक उद्देश्य निहित प्रतीत होता है।

सूर की शैलीगत प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर भी 'सारावली' पर विचार किया जा सकता है। सार, सूचीपत्र या संक्षिप्ति देने की प्रवृत्ति 'सूरसागर' में प्रायः एक लीला प्रसंग को एक लम्बे पद में कह दिया गया है। इसकी शैली भाव–प्रवण पदों से भिन्न होती हैं। बहुधा 'चौपाई' या सारावली की 'तुक शैली' का प्रयोग ऐसे पदों में हुआ है। इन लम्बे पदों में आये संभावनापूर्ण भाव–सूत्रों का विस्तार कीर्तन–पदों में किया गया है। लम्बे पदों की शैली बहुधा विवरणात्मक रही है। जिस प्रकार इस प्रकार इस प्रसंग के सार को समेटे हूए लम्बे पद सूरसागर में मिलते है, उसी प्रकार समस्त भागवतोक्त लीला–पुंज का भी सार विवरणात्मक शैली में दिया जाना आश्चर्य की बात नहीं है। जहॉ सूरसागर के लम्बे पदों में आये भाव–सूत्रों का प्रसार कीर्तन के गेय–मुक्तकों में किया गया है, उसी प्रकार सारावली में सैद्वान्तिक विस्तृति की ओर कवि का ध्यान रहा है। जहॉ कीर्तन पदों में भावों की ज्ञात–अज्ञात छबियों की खोज और उनकी निवृत्ति 'सूरसागर' के कवि को अभीष्ट है, वहॉ सांप्रदायिक सिद्धान्तों का स्पष्ट कथन सारावली के कविं का अभिप्रेत है। इस प्रकार सारावली में कवि की एक शैलीगत प्रवृत्ति का ही सैद्धान्तिक विकास माना जाना चाहिए।

'सारावली' का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने पर ज्ञात होगा कि इसमें सूर के व्यक्तित्व का बौद्धिक पक्ष ही विशेष सजग है। बल्लभचार्य जी ने सूर के व्यक्तित्व का बौद्धिक दृष्टि से सूर का संप्रदाय सिद्धान्त और सेवा विधियों का यथार्थ ज्ञान कराया गया। वल्लभाचार्य जी के पश्चात् यहीं एक ऐसा व्यक्ति था जिसने आचार्य जी के श्रीमुख से संप्रदाय के रहस्यों को सुना था और सभी का मर्मस्पर्श किया था। आचार्य जी के व्यावहारिक जीवन को जितने समीप से सूरदास जी ने देखा था, उतने समीप से सम्भवतः किसी ने नहीं देखा था। संप्रदाय से सिद्धान्तों की उलझनों को सूर बिना लिखित प्रमाण और ज्ञान के अत्यन्त सरलता से सुलझा देते थे। इस दृष्टि से उन्होंने एक रचना ऐसी करना उचित समझा जो संप्रदाय के तत्वों का निरूपण कर सके। स्पष्टः इसके दो विभाग प्रतीत होते हैः विशुद्ध सैद्धान्तिक और वर्षोत्सवों की व्यावहारिक सेवा विधियों से संबन्धित।

इस रचना नें 'सुर' को सांप्रदायिक–दायित्व से मुक्त किया। रस दायित्व को पूर्ण करना सुर के लिए इसलिए भी आवश्यक हो गया कि उन्हें भाव साधना के लिए पर्याप्त अवकाश मिल सके। सांप्रदायिक सिद्धान्तों का ज्ञान उनके लिए गर्व की वस्तु भी बन सकती थी, पर सूर की दृष्टि विशुद्ध भावत्मक थी। उन्हें लीलासक्ति का ही विस्तार करना अभीष्ट था। उसके लिए व्यावहारिक या लौकिक जीवन से वे संदर्भ चुनने थे। जो लीलासक्ति को सैद्धान्तिक जड़ता से मुक्त करके समग्र अभिवयक्ति को सजीव कर सके। अतः 'सारावली' की रचना करके वे सांप्रदायिक दायित्व से गए–एक बद्धता को समाप्त किया। इससे उन्हें अपनी निजी साधन के लिए अपेक्षित स्वच्छन्द्रता मिल सकी।

साहित्य लहरी–

{रचनाकाल –सं0 1607–1627 के बीच कहीं।}

इसमें 118 ट्टष्टकूट पदों का संग्रह हैः डा0 ब्रजेश्वर वर्मा ने इस कृति को सूरकृत नही माना है। अधिकांश विद्वानों नें इसे सूर की प्रमाणिक।

रचना के रुप में स्वीकृत किया है। इस वर्ग के विद्वान इस रचना के केवल दो पदों–109 तथा 118–को प्रक्षिप्त मानते है। पद संख्या 109 में साहित्य लहरी का रचना काल और 118 में सूरदास का वंश परिचय दिया गया है। डा0 ब्रजेश्वर वर्मा ने इसे आप्रामाणिक मानने में एक यह तक्र भी दिया है : 'सूरसागर जैसे वष्हद् ग्रंथ मेंकवि अपनी रचना के विषय मैं मौन रहा हो, वह साहित्य लहरी' जैस असफल प्रयत्न में नाम और रचनाकाल में इतना मुखर हो जाए , यह भी उसी प्रतिकूल जान पड़ता है"। इस तक्र का समाधान उक्त दो पदों को अमान्य ठहरा कर हो जाता है। अधिकांश विद्वान इन दो पदों के अतिरिक्त समस्त रचना को प्रामाणिक मानते हैं।

संप्रदाय में रसेश्वर कृष्ण की प्रतिष्ठा थी। श्रुति ने भी उसे 'रसो बै सः' कहा और भगवान की रसात्मक लीला–भावना और कल्पना के लिए द्वारा उन्मुक्त कर दिया। ब्राह्म जगत में जहाँ–जहाँ रस–कणों की स्थिति है, वह भगवान के रस की ही छाया है। अष्टछाप के कवियों में भी इसी भावना

भक्ति नहीं.....'। ..... साहित्य लहरी का रचना काल सं0 1627 मानें तो यह स्वीकार करना पडेगा कि यदि और सूरदास ने इसकी रचना की है, तो अपनी मृत्यु के कुछ ही पहले उन्होंने अपनी भक्ति भावना पूर्ण मनोवषत्ति में आकस्मिक परिवर्तन कर दिया और मानो वे अपने साधन को साध्य रुप में ग्रहण करके मरते–मरते एक दिया और मानो वे अपने साधन को साध्य रुप में ग्रहण करके मरते–मरते एक असफल और शिथिल लक्षण ग्रंथ रचकर अपने भावी साहित्यिक बन्धुओं का नेतृत्व करने के लिए तत्पर हो गए।"

का अवतरण हुआ था। इस प्रकार लौकिक रस–रूप भी प्रच्छन्न रूप से अलौकिक संबन्ध रखता है। लौकिक रस–रूप का, अलौकिक छाया का संकेत करते हुए, वर्णन करना भी वर्जित नहीं है। श्रीमद्भागवत में भी रास पंचाध्या के अन्तिम अध्याय में यही बात कही गई–

रचना के रुप में स्वीकृत किया है। इस वर्ग के विद्वान इस रचना के केवल दो पदों–109 तथा 118–को प्रक्षिप्त मानते है। पद संख्या 109 में साहित्य लहरी का रचना काल और 118 में सूरदास का वंश परिचय दिया गया है। डा0 ब्रजेश्वर वर्मा ने इसे आप्रामाणिक मानने में एक यह तक्र भी दिया है : 'सूरसागर जैसे वष्हद् ग्रंथ मेंकवि अपनी रचना के विषय मैं मौन रहा हो, वह साहित्य लहरी' जैस असफल प्रयत्न में नाम और रचनाकाल में इतना मुखर हो जाए , यह भी उसी प्रतिकूल जान पड़ता है"। इस तक्र का समाधान उक्त दो पदों को अमान्य ठहरा कर हो जाता है। अधिकांश विद्वान इन दो पदों के अतिरिक्त समस्त रचना को प्रामाणिक मानते हैं।

संप्रदाय में रसेश्वर कृष्ण की प्रतिष्ठा थी। श्रुति ने भी उसे 'रसो बै सः' कहा और भगवान की रसात्मक लीला–भावना और कल्पना के लिए द्वारा उन्मुक्त कर दिया। ब्राह्म जगत में जहाँ–जहाँ रस–कणों की स्थिति है, वह भगवान के रस की ही छाया है। अष्टछाप के कवियों में भी इसी भावना

भक्ति नहीं.....'। ..... साहित्य लहरी का रचना काल सं0 1627 मानें तो यह स्वीकार करना पडेगा कि यदि और सूरदास ने इसकी रचना की है, तो अपनी मृत्यु के कुछ ही पहले उन्होंने अपनी भक्ति भावना पूर्ण मनोवष्त्ति में आकस्मिक परिवर्तन कर दिया और मानो वे अपने साधन को साध्य रुप में ग्रहण करके मरते–मरते एक दिया और मानो वे अपने साधन को साध्य रुप में ग्रहण करके मरते–मरते एक असफल और शिथिल लक्षण ग्रंथ रचकर अपने भावी साहित्यिक बन्धुओं का नेतृत्व करने के लिए तत्पर हो गए।"

का अवतरण हुआ था। इस प्रकार लौकिक रस–रूप भी प्रच्छन्न रूप से अलौकिक संबन्ध रखता है। लौकिक रस–रूप का, अलौकिक छाया का संकेत करते हुए, वर्णन करना भी वर्जित नहीं है। श्रीमद्भागवत में भी रास पंचाध्यायी के अन्तिम अध्याय में यही बात कही गई–

एवं शशाक्ड़ांशु निशाः ससत्यकामोऽनुरताबला गणः।
सिषेव आत्मन्युपरूद्धसौरतः सर्वाः शरकाव्यकथा रसियाः।।[28]

इस कथन से ध्वनित होता है कि काव्य–रस की पद्धति से भी भगवान कृष्ण ने लीला विस्तार किया था। इसका स्पष्टीकरण महाप्रभु बल्लभाचार्य जी ने किया। काव्योक्त रीति या 'गीति गोविन्द' की पद्धति से भी भगवान ने रमण किया। भागवत और भक्ति–आचार्यो के ऐसे संकेतो को पाकर ही भक्ति–रस की काव्यशास्त्रीय व्याख्या का सूत्रपाठ हुआ। भक्तिकाव्य के लगभग दो दर्जन रीतिकार हुए। बंगाल में मधुसूदनसरस्वती, रूपगोस्वामी, कवि कर्णपूर गोस्वामी और जीवगोस्वामी जैसे भक्ति–रस के काव्यशास्त्रीय आचार्य हुए। स्वयं वल्लभाचार्य जी ने भी अपना मन्तव्य इस संबंध में स्पष्ट किया। सभी ने लौकिक रति के संबंध में कुछ न कुछ कहा है।

मधुसूदन सरस्वती ने स्वीकार किया है कि साहित्य या काव्य के भाव भगवद् आलंबन से संबंद्ध होकर शुद्ध होकर भक्तिरस के बाधक न होकर पोषक बन जाते है। शुद्ध भाव (भक्तिरस) अपनी शक्ति से संकीर्ण (साहित्यभाव) भावों की भी पुष्टि करके अपना अंग बना लेता है। साथ ही उन्होंने वह भी स्वीकार किया है कि भक्तरस में श्रृंगार (काव्यशास्त्रीय) का मिश्रण, प्रथम को बलवत्तर और तीब्रतर बना देता है। इस प्रकार काव्योक्त लौकिक श्रृंगार से समन्वित भक्ति ग्राह्म है।

1. रूप प्रेम आनन्द रस जो कछु जग में आहि।
   से सब गिरिधर देव कौ निधरक बरनौं ताहि।।

2. काव्यकथा अपि नीताः। काव्योक्त प्रकारेण गीतगोविन्दोक्तन्यायेनारपि रतिं कृतवान्। तत्र हेतु रसाक्ष्या इति। सुबोधिनी 10–33–26।

3. इनका ग्रन्थ 'भगवद्भक्ति रसायन' है।

---

28. डॉ0 चन्द्रभान रावत, सूर साहित्य : नव मूल्यांकन, पृ0 111

4. इन्होंने 'श्री हरिभक्तिरसामृतसिन्धु' नामक ग्रंथ की रचना की।

5. इस दृष्टि से इनका 'अलंकार कौस्तुभ' नामक ग्रंथ उल्लेखनीय है।

6. 'रासपंचाध्यायी' की सुबोधिनी टीका में इस प्रकार की व्याख्या की गई है।

रूपगोस्वामी की विचारणा कुछ भिन्न प्रकार की व्याख्या की गई है।

सार इस प्रकार हैः भक्तिकाव्य की आत्मा भक्तिरस है। यदि भक्तिकाव्य में काव्यरस की प्रधानता हो जायेगी तो श्रृंगार, हास्य, करूण आदि की अभिव्यक्ति होगी। यह अभिव्यक्ति भक्तिकाव्य का दूषण ही कहीं जायेगी। जिन काव्यों में लौकिक भावों की ध्वनि या रस–ध्वनि का संचार होगा, उनसे भक्ति रस का समर्थन नही हो सकता। यदि काव्योक्त भाव प्रधान हो जायेंगे तो, भक्ति रस अखंड नही रह पाता। यदि काव्य रसों की कुछ भी स्थिति है, तो गौण, अंगभूत रूप में। काव्योक्त रस भक्तिकाव्य में स्वतन्त्र न होकर भक्तिरस के आश्रित रहते है। क्योंकि इनके आलंबन–आश्रय कृष्ण हैं तथा विषय भक्तिगण। इस प्रकार अंगभूत रूप में ही सही, काव्योक्त भावों और विधान का कुछ स्थान भक्तिकाव्य में है।

इस प्रकार बंगाली वैष्णव आचार्यों ने भक्ति–साहित्य को लक्ष्य करके भक्तिमूलक रस–शास्त्र के लक्षण ग्रंथो का प्रणयन किया। आचार्य वल्लभ ने भी भागवत के आधार पर भक्तिमूलक मधुर भाव की कुछ शास्त्रीय व्याख्या की। वल्लभाचार्य जी की दृष्टि में राधाकृष्ण की श्रृंगार लीला 'लीलारस' के अर्न्तगत आती है। भागवत इस लीला–रस का पोषण करती है। 'लीलारस' काव्य सामान्य रस–काव्य से श्रेष्ठतर है। इस श्रेष्ठता के मूल में भक्ति में अनिवार्य रूप से व्याप्त उदात्तना, पवित्रता और अलौकिकता जैसे तत्व है। आचार्य महाप्रभु जी ने वेणुगीत की सुबोधिनी टीका में रस को दो भागों में विभक्त किया

है: केवल रस भक्तिकाव्य में संचरित रहता है। भक्ति–काव्यों में विश्मवस्तु कृश्ण की रूपलीला है। गोपीभक्त एवं पातृभक्त धर्म संवृत रस के उपभोक्ताओं की दो श्रेणियाँ है। गोपीभक्तों में परम प्रेमा भक्ति की व्याकुलता, हरिचरणामृत की प्यास, ज्ञानाज्ञान से मुक्ति, नान विलास–कला, केलि–क्रीडाए आदि रहती हैं। वे कामुककृष्ण के प्रति आसक्त–आकृष्ट रहती हैं और प्रतिक्षण काम उत्पीड़िता के रूप में स्थित रहती हैं। यह भी मान गया है कि कृष्ण का रसात्मक कामभाव अत्याधिक गूढ है। गोपीभाव की आकुल–व्याकुल कामना से ही गूढ रस का आस्वादन सम्भव है। इस रसास्वाद क लिए भक्त को स्त्रीभाव का आरोपण अनिवार्य होता है। यह स्त्रीभाव अत्यधिक गूढ भाव है। इस स्त्रीभाव की स्वीकृति बल्लभ संप्रदाय में थी। सम्प्रदाय में इसीलिए गोपियों को गुरू के रूप में स्वीकार किया गया है। सूर का गोपी –हृदय की सिद्धि हो चुकी थी। स्त्रीभाव की अनिवार्यता का कथन सूर ने इस प्रकार किया है –

भज सखि भाव भाविक देव।
कोटि साधन करी कोऊ, तौऊ न मानें सेव।।
धूमकेतु कुमार मॉग्यौ, कौन मारग रीत।।
पुरूश तें तिय भाव उपज्यौ सबै उलटी रीत।।
बसन भूशन पलटि पहरे भाव सों संजोय।
उलटि मुद्रा दई अंकन वरन सूधे होय।।
वेद–विधि कौ नेम नहिं जहाँ प्रीति को पहँचान।
ब्रजबधू बस किये मोहन, 'सूर' चतुर सुजान।।[29]

भावना के उद्रेक से पुरूष में भी स्त्रीभाव जागृत हो जाता है। इसी बात को परमानंददास जी ने भी स्वीकार किया है।

इस विवेचन से यह निष्कर्ष निकला कि वृन्दावन के, बंगाल के सभी राधावादी संप्रदाय में स्त्रीभाव की मान्यता थी। इसी भावना से भक्त कृष्ण की रूप–श्रृगांर लीलाओं में प्रविष्ट होता है। शुद्ध भक्तिरस यहाँ उमड़ पड़ता है।

---

29. डॉ0 चन्द्रभान रावत, सूर साहित्य : नव मूल्यांकन, पृ0 113

इसके साथ लौकिक काव्यरस भी संयुक्त या अंगभूत रह सकते है। इनसे भक्तिरस बलवत्तर और तीव्रतर होता है। यहीं मधुर रस–साधनों में कायोक्त पद्धति का समावेश होता है। इसी काव्यौत पद्धति में नायिका भेद का प्रवेश हो जाता है। विविध नायिकाओं के रूप में भावति होकर गोपीजन कृष्ण–संभोग का रसास्वादन करती है। 'साहित्य–लहरी' इसी नायिका भेद के आश्रय से मधुर लीलाओं के कथन और आस्वादन की पद्धति को लेकर चली है इस रचना में श्री कृष्ण के नायिका भेद की पद्धति से भक्तिरसास्वादन का स्वरूप स्पष्ट किया है। नायिका–भेद पद्धति का प्रवेश बंगाली वैष्णव साहित्य में भी हुआ था। रूप गोस्वामी का 'उल्ज्वलनीमणि' इस दृष्टि से उल्लेखनीय ग्रन्थ है। नायिका–भेद को उन्होंने 'मधुर' भाव की संरचना में ढाल दिया। उज्ज्वल या मधुर रसराट् है। इसका स्थायीभाव मधुरारति है। इसके आलंबन विभाव में रस–विग्रह कृष्ण और उनकी वल्लभाएँ आती है। समस्त नायक–नायिका भेद को कृष्ण,राधा एवं गोपियों पर घटित करने को यह प्रथम शास्त्रीय प्रयास माना जा सकता है।

अष्टछाप के शिरोमणि सूर ने 'साहित्य–लहरी' के द्वारा इसी पद्धति का उपक्रम किया। इसका लक्ष्य पक्ष ही सूर को अभीष्ट था। लक्ष्य पक्ष पर रूप–गोस्वामी की पद्धति का प्रभाव स्मष्ट है। भक्तिकाव्य में कृपाराम ने 'हिततरं–गिणी' नामक नायिका भेद का ग्रन्थ लिखा। इस रचना के नाम से सिद्ध होता है कि यह कवि श्री हित हरिवंश जी के संप्रदाय का अनुयायी था। पर इसमें भक्ति तत्व इतने प्रमुख नहीं हैं। 'सूरदास' ने साहित्य लहरी में भक्ति के तत्वों का समन्वय किया। इसी पद्धति पर आगे चलकर नन्दरास ने 'रसमंजरी' की रचना की। इसकी लक्षण–पति भानुमिश्र के समान और लक्ष्य पद्धति रूप गोस्वामी और सूर के समान है। केशव ने अपनी कृति 'रसिक प्रिया' मे भक्त कवियों के लक्ष्य साहित्य की पद्धति का ही अवलम्बन किया। इस प्रकार भक्ति और रीति दोनों ही साहित्य– परंपराएँ राधा की मधुर लीलाओं को लेकर चली। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि 'सूर' की साहित्य–लहरी में

काव्य शास्त्रोक्त पद्धति से भक्तिरस का निरूपण हुआ है। यहाँ एक बात और हमारा ध्यान आकर्षित करती है। सूर ने लिखा है– "नंदनदंनदास" दास साहित्य लहरी कीन।" 'नंदनंदनदास' का सामान्य अर्थ 'भक्तजन' होता है। पर इसका विशिष्ट अर्थ नंददास' भी सम्प्रदाय में मान्य है। नंददास पहले रामभक्त थे।

वक्ष्यमार्णविभावाघैः स्वाद्यतां मथुरा रतिः।
नीता भक्तिरसः प्रोक्तो मधुराख्यो मनीशिभिः।।
अस्मिन्नालम्बनाः प्रोक्ताः कृष्णस्तस्य बल्लभाः।[30]

पीछे वे पुष्टिमार्ग में दीक्षित हुए। प्रवेशांतर वे आरम्भ में सांप्रदायिक रहस्य–ज्ञान के लिए 'सूरदास' के पास छः मास तक चन्द्रसरोवर (परासौली) में रहे। नन्ददास जी को स्पष्ट किया। इसी की नादात्मक जी पूर्णतः गोपी प्रेम से भावित हो गये।

अब प्रश्न 'साहित्य लहरी' की दृष्टिकूट शैली का रह जाता है। वैसे रहस्यवादी साहित्य मे रहस्य शैली के रूप नवीन नहीं है। सिद्ध साहित्य में 'संध्या भाषा' और उलटासियों की शैली का प्रयोग गूढ तत्वों के विवेचन के लिए किया गया है सिद्ध– नाथ परम्परा में पारिभाषिक अर्थों की निश्पत्ति के लिए विरोधी– शब्दावली और अद्‌भूत रूपकों एवं प्रतीकों का योग 'गुह्य–वाणी' और 'संधाभाषा' के रूप में होता था। ..... उपमानों की विरोधातमक योजना पर आधारित उलटवासियों की चमत्कारपूर्ण शैली सिद्धों के काव्य में भी व्यवह्रत होती थीं। ..... कबीर तथा उनके बाद के संतो में इस उलटबासी पद्धति का बहुत प्रचलन रहा है ..... तांत्रिक साहित्य मे इस शैली का प्रयोग चतर रूप से होता रहा। वैष्णव तंत्रो में भी इस शैली की थोड़ी बहुत मान्यता रही। तब तंत्रो का वैष्णवीकरण हुआ, तब किसी न किसी रूप में शैली भी स्वीकृत रही। इस शैली के प्रयोग के उद्‌देश्य उपयोगितावादी भी था और चमत्कारवादी भी।

30. डॉ0 चन्द्रभान रावत, सूर साहित्य : नव मूल्यांकन, पृ0 114

उपोगितावादी दृष्टि से अलौकिक या आध्यात्मिक स्थिति का लैकिक स्थिति से वैसा दृश्य के द्वारा गूढ अर्थो की व्यंजना इससे की जाती थी। देसरे गूढ़ तत्वों को छुपाने या अनाधिकारी से इनको सुरक्षित रखने के लिए यह एक शैली तात्विक वर्जन के रूप मे दृष्टिकूट का प्रयोग होता था। 'सूर' की अन्य रचनाओं में छिटपुट रूप से इस शैली के निदर्शन मिलते हैं। साहित्य लहरी में यह शैली पुंजीभूत हो गई है। सूर का उद्दे य दस शैली में यही उद्देय ज्ञात होता है कि कृष्ण लीला रस का अति श्रृग्डारी रूप कहीं अपात्र के हृदय में पड़कर लांछन न बन जायेः "..... इन पदों में काव्योक्त (लौकिक प्रकारों वाली) कृष्ण लीलाएँ होने से उन्हें गूढ रखना आवश्यक था। अतः लौकिक इनमें प्राप्त नायिकाओं के उल्लेखों में भी कुछ गूढता लायी गयी है जिसके कारण नखशिख वर्णन न होते हुए भी इसमें दृष्टिकूट शैली की नितांत आवश्यकता थी।" साहित्य लहरी की विषयवस्तु और शैली का यही स्पष्टीकरण है। इसमें कुछ सामान्य शैली के पदों का भी समावेश है। अधिकांश विद्वान इसे प्रामाणिक रचना स्वीकार करते है। इसकी प्रामाणिकता का सबसे बड़ा प्रमाण सांप्रदायिक रस–रीति–निरूपण और सेवा भावना है।

सूरसागर

यह सूर की सर्व स्वीकृत प्रामाणिक रचना है। इसकी अनेक हस्त–लिखित प्रतियाँ भारत के विभिन्न ग्रन्थागारों में मिलती है। इनका विस्तार समस्त उत्तरी भारत में मिलता है। 'सूरसागर' का प्रकाशन लखनऊ। बन्बई आदि से आरम्भ हुआ। बम्बई वाले संस्करण का कार्य भारतेन्दु जी ने आरम्भ किया था और इस कार्य को बाबू राधाकृष्णदास ने पूर्ण किया। इनकें आधार पर कुछ संक्षिप्त संस्करण भी संपादित हुये। इनके संपादक डा0 बेनीप्रसाद (1922), डा0 धीरेन्द्र वर्मा (1926) तथा डा0 रामकुमार वर्मा (1933) रहे। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने भी वियोगी हरि द्वारा संस्करण प्रकाशित किया। नागरी प्रचारिणी सभा का काशी ने पं0 नन्द दुलारे बाजपेयी द्वारा संपादित 'सूर–सागर' प्रकाशित

किया। अब यह कार्य पं0 जवाहरलाल चतुर्वेदी ने अपने हाथ में लिया है। कलकत्ते से उनके द्वारा संपादित 'सूर–सागर' का बृहत् संस्करण प्रकाशित हो रहा है।

इसका प्रथम भाग प्रकाशित भी हो गया है। चतुर्वेदी जी ने अनेक अछूती प्रतियों का उपयोग भी इसमें किया है और नवीन सामग्री जोड़कर इसके आकार में वृद्धि की है।

'सूरसागर' शब्द का प्रयोग आचार्य जी ने सूरदास जी के लिए किया था। सूर के व्यक्तित्व का काव्यमय संस्करण ही 'सूरसागर' है। व्यक्तित्व और रचना में इतना घनिष्ठ साम्य एक अत्यन्त विरल साहित्यिक घटना मानी जानी चाहिए। सूर के व्यक्तित्व की सागरोपम विस्तृति की बल्लभाचार्य जी द्वारा स्वीकृत इस रचना की प्रमुख प्रेरणा कहीं जा सकतर है। विषय का बोध या आध्यात्मिक संक्रमण भी आचार्य जी ने किया। 'दशम स्कन्ध की अनुक्रमणिका' सुबोधिनी और 'पुरूषोत्तम सहस्त्रनाम' के द्वारा बल्लाभाचार्य जी ने विषय का रहस्य–बोध सूर को कराया। इससे सूर को भगवान की दशधा लीलाओं का बोध हुआ। इसका स्त्रोत श्रीमद्भागवत है। द्वादश स्कन्ध पर्यत भागवत कथा का इसमें विस्तार हुआ है। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि सूरसागर भागवत का अविकल अनुवाद है। समस्त कथा सूत्रो के निर्वाह की सूर ने चिन्ता नहीं की। केवल भागवत की संरचना को सूर लेकर चले हैं। वैसे उनकी वृत्ति दशमस्कंध में ही रमी हुई है। अन्य स्कंधों के प्रसंग–विधान में कवि की वृत्ति नहीं रमी है। यह नीचे की स्कन्धानुसार पद–सांख्यिकी से स्पष्ट होती है –

प्रथम स्कंध	.....	343 पद	पंचम स्कंध	.....	4 पद
द्वितीय स्कंध	.....	38 पद	षष्ठ स्कंध	.....	8 पद
तृतीय स्कंध	.....	13 पद	सप्तम स्कंध	.....	8 पद
चतुर्थ स्कंध	.....	13 पद	अष्टम स्कंध	.....	17 पद
नवम् स्कंध	.....	174 पद	एकादश स्कंध	.....	4 पद
दशम स्कंध	.....	4309 पद	द्वादश स्कंध	.....	5 पद

प्रथम स्कंध की पद संख्या इसलिए बढी है कि इसमें 223 पद विनय के है। शेष में भागवत प्रसंग है। नवम स्कंध मं रामचरित्र होने के कारण पद संख्या बढी है। इस प्रकार 'सूर' ने केवल 12 स्कंधो की संरचना को ग्रहण किया है। उनका रागात्मक तादात्म्य केवल दशमस्कंध के साथ है। इस संख्या वैषम्य को देखते हुए डा0 ब्रजेशवर वर्मा ने सूरसागर को भागवत का अनुवाद नहीं माना हैं। भागवत और सूरसागर की परिमाणगत तुलना से यह तथ्य प्रमाणित हो जाता है।

सूरसागर के पद

परिमाण के संबन्ध में विरोधी मत मिलते हैं। 'सूरदास' संबन्धी 'वार्ता' के अनुसार सूर ने सवा लाख पदों की रचना का संकल्प किया था। अन्तिम समय तक वे एक लाख पदों की रचना कर सके, और शेष पच्चीस हजार कीर्तन स्वयं श्री गोवर्धननाथ जी ने पूरे किये। सूर सारावली के अनुसार भी सूर के एक लाख पदों की ही सूचना मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि सूर–काव्य की विशालता को देखते हुए संप्रदाय में सवालाख पदों की संख्या प्रचलित हो गई थी। यह संख्या भावात्मक है, या यथार्थ, यह कहना कठिन प्रतीत होता है। एक अनुश्रुति से यह भी प्रकट होता है कि सूर के नाम से अनेक पद इस 'सागर' में आ मिले थे। अनुश्रुति इस प्रकार है : **"पाछें देशाधिपति ने आगरे में आयकें सूरदास के पदन की तलास कीनी।** जो कोऊ सूरदास जी के पद लावे तिनकूँ रूपैया और मौहौर देय। सो वे पद बनाय कें लामें" आगे कहा गया है कि इनकी प्रामाणिकता की परीक्षा अकबर (देशाधिमति) ने पदों को पानी पर तैर कर की है।

इसमें संदेह नहीं कि सूर के नाम से अन्य कवियों के पद भी चल पड़े होंगे। साथ ही 'सूर' नाम धारी व्यक्ति भी कई थे। उनके पद भी सागर में आकर मिल गये होंगे। पर, सत्य यह भी है कि सूर– रचित अनेक पद

की है। यह 'समाधि' भाषा ही साहित्य ने व्यक्तिनिष्ठ प्रगीतों की आत्मा है। लीला–रस समाधि भाषा की स्फूतियों में आवशिष्ट रहता है। 'परमत' ने भगवान के ऐश्वर्य और माहात्म्य का वर्णन ही विशेष रूप से हुआ है जहाँ तक लौकिक' भाषा का प्रश्न है, सूर ने प्रथम से द्वादश सर्ग के कथा भाग को, वर्णनात्मक रीति से, लम्बे पदों के माध्यम से भाव–स्फीति के बिना ही, वर्णन कर दिया है। जहाँ भगवदीय करूणा, महिमा आदि प्रसंग आते हैं, वहाँ 'सूर' की भावना कुछ विरम गई है और स्फुट पदों में भक्ति–तन्तुओं को सजीव कर दिया है। 'द्रोपदी सहाय' जैसे प्रसंग इसके उदाहरण है। इन स्थलों को अधिक भाव–संकुल या विशद बनाने के लिए भागवत के अतिरिक्त अन्य पुराणों से भी सूत्र संकलित किए गए हैं। फिर भी 'लौकिक' भाषा के तत्व ही उसमें विशेष हैं। 'समाधि' भाषा में प्रविष्ट होने पर अनुपात की दिशा बदल जाती है। प्रसंग, कथांश, या इतिवृत्त उसी प्रकार के लम्बे पदों में कह दिया जाता है। भावात्मक स्फीति का अनुपात अत्यधिक हो जाता है। समस्त दशम् स्कंध में यह अनुपात ही चलता रहता है। सूर भी जैसे भाव–समाधि में तन्मय होकर अनुभूति की चरम स्थितियों के अल्वेषण और आकलन में लग जाते हैं।

दूसरे शब्दों में सूरसागर में तीन विषय हैः पुराण कथा, वर्णन और भाव–सम्पदा। पुराण कथा कहते समय सूर सूत जी के समकक्ष रहता है। कवि शुद्धि कथा का कथन करके माहात्म्य के संकेत कर देता है। कथाओं मे अवतार कथाओं का प्राघान्य है। वर्णन–वैभव में भक्ति के परिवेश, रूप–कल्पना और श्रृंगार आदि आते हैं। इस वर्णन में ही यथा स्थान भावों के संकेत मिलते हैं। भाव–सम्पदा के क्षेत्रों में सूर बड़े विश्वास के साथ चलते मिलते हैं। मनोमय कोश से लेकर आनन्दमय कोश तक की यात्रा में जितने ज्ञात–अज्ञात संदर्भ प्राप्त होते हैं, उन सबका सूर साक्षात्कार कर लेते है। मुख्यतः वात्सल्य और श्रृंगार के खरे और स्वच्छ चित्र भाव– संपदा के सजीव प्रमाण है। इसका विकास वात्सल्य से वियोग तक हुआ है। इन भाव–स्थितियों में अनेक लीलाएँ

अलिखित रहने के कारण खो भी गये हों। अकबर वाली अनुश्रुति से यह भी स्पष्ट होता है कि सूर के पदों का संग्रह और परीक्ष्ण होने लगा था। प्रसिद्ध संस्करणों में जितने पद संकलित हैं, उनके अतिरिक्त अनेक पद सांप्रदायिक कीर्तन संग्रहों में संगृहीत है नागरी प्रचारिणी के 'सूरसागर' के प्रकाशन के प्श्चात् भी नवीन सामग्री खोज में मिली है। खोज अभी चल रही है। अब तक सूर के 8'10 हजार पदों का अनुसंधान किया जा सका है। यह कहा जाता है कि 'सूर' ने कीर्तन में कभी पुराना पद नहीं गाया। गणितीय पद्धति से हिसाब लगाकर, सूर निर्णय के लेखकों ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि सवालाख वाली संख्या नितांत अविश्वसनीय नहीं है। अन्त में यह निष्कर्ष दिया हैः "हमने सूरदास के पदों की जो आनुमानिक गणना की है , वह कम से कम है और प्रामाणिक आधार पर है, अतः उसमें शंका के लिए कोई स्थान नहीं है।" इस प्रकार सूर के रचे हुए सवालाख पदों की जो रचना को सिद्ध करने का प्रयास हुआ है। संभवतः यह अन्तिम शब्द इस संबन्ध में नहीं है। जो रचना–परिमाण अब तक सिद्ध हो सका है, वह भी सूरसागर की महिमा को प्रतिष्ठित करने के लिए पर्याप्त है।

जहाँ तक सूरसागर के विषय का प्रश्न है, इसके तीन स्तर हैं। बल्लभाचार्य जी के अनुसार भागवत में त्रिबिध भाषा प्रयुक्त हैः लौकिकी, परमत और लौकिकी। ऐतिहासिक या पौराणिक चरित्र–कथन लौकिकी भाषा के अन्तर्गत आता है। भागवत में ऐसे स्थल भी हैं जहां विभिन्न ऋषियों –मुनियों ने सैद्धान्ति अभिमत प्रस्तुत किये हैं। इन स्थलों की भाषा 'परमत' है। व्यास जी ने जिस भाषा का प्रत्यक्ष अनुभव अपनी समाधि की अवस्था में किया, वह समाधि भाषा है। यही समाधि भाषा आचार्य जी ने प्रमाण–चतुष्टय में स्वीकार की है। यहीं वह भाषा है जिसमे भक्तिरस उच्छलित हुआ है। भक्तिमार्ग का यही प्राण है। सांप्रदायिक दृष्टि और अपने भाव–शबल व्यक्तित्व की छाया में भागवत यहीं प्राण है। अनुपातिक दृष्टि से वे अत्यल्प हैं। 'परमत' की सूर ने और भी उपेक्षा

घटित होती हैं। लोक संगहात्मक लीलाएँ मुख्यतः 'लौकिक' और 'परमत' भाषाओं में ही कही गई है, और विशेष रूप से वात्सल्य–समाधि में प्रविष्ट होती रहती है।

भावात्मक स्थलों पर भी लीला–वृत्त संलग्न रहता है। उसका एक क्रम है। उस क्रम के निर्वाह में प्रबन्ध–कम मिलता है। कृष्ण–चरित्र की तात्विक और भावात्मक विस्तृति से पूर्व सूर ने दशावतार–कथा की योजना की है दशावतार कथा जयदेव ने भी संक्षेप में कही। इसी ने जयदेव के गीत–साहित्य की भूमिका प्रस्तुत की है। समस्त भाव–गीत मिल कर सूरसागर को एक कीर्तन–काव्य या भावात्मक गीत ही अधिक प्रसिद्ध हो गये। हो सकता है कि उनके कथात्मक और वर्णनात्मक पदों की उपेक्षा हो गई हो और वे संकलित नहीं किये जा सके। अतः सूरसागर के पदो की संख्या की समस्या बनी ही रहती है।

'सरसागर' की लोकप्रियता एक ओर तो उसकी हस्तलिखित प्रतियों की भारत व्यापी स्थिति से मिलती है, दूसरी ओर इससे भी मिलती है कि उसके छोटे–छोटे अंश भी भिन्न–भिन्न पुस्तकों के रूप में लिखे गए। पीछे इस प्रकार के 14 छोटे संग्रहों की चर्चा हो चुकी है।

'सूरसागर' सूर की निजी साधना का फल है इसमें उनके स्वछन्द व्यक्तित्व का ही विलास अधिक है। 'सूर' का स्वछन्द व्यक्तित्व वस्तुतः गीतों की मधुरिमा से भर गया था। उन्होंने अपने व्यक्तित्व की इस साधना में बद्धता का अनुभव केवल इतिवृत्त के निर्वाह की दृष्टि से किया। उनको भागवत के ढाँचे में रंग भरना था। कृष्ण की लीलाएँ वस्तुतः अपने में पूर्ण लघु कथांश ही थे। प्रसंग–कथा बड़ी भी हो सकती है, छोटी भी। गीत में प्रसंग की प्रबधतात्मकता का ध्यान नहीं रहताः भाव की दृष्टि से ही उसे स्वयं पूर्ण होना चाहिए। प्रबंध संबन्धी दायित्व का निर्वाह करके ही सूर का व्यक्तित्व भाव–व्यंजना के लिए पूर्ण स्वछन्द हो सकता था अतः विविध छन्दों प्रबन्धों की परम्परागत शैली, दीर्घ

पदों की योजना करके प्रबन्धात्मक बद्धता से मुक्ति पाने की चेष्टा की गई। बौद्धिक तत्वों को शान्ति करके विश्राम दिया। फिर केवल भाव की पूर्णता का ध्यान करके, सूर का भावाकुल व्यक्तित्व साधना में निरस्त कर दिया।

संप्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व का दैन्य और दास्य भी साधना के इन स्वछन्द क्षणों को कभी–कभी बाधित करता था। इस भाव राशि का लीलारस से अभिभूत व्यक्तित्व में कोई स्थापना नहीं हो सकता था। अतः इन भाव–छायाओं को इन्होंने संप्रदाय कि समप्रित करना ही श्रेयष्कर समझा। 'मंगला की आरती' से 'शयन' तक श्रीनाथ जी का मंदिर लीला–कीर्तन की ध्वनियों से गूँजता रहता था। इस वातावरण में विनय–भाव के लिए स्थान नहीं था। अतः मंगला से पूर्व की भूमिका में तथा शयन के अनन्तर के उपसंहार में सूर की विनयोक्तियों का प्रयोग हुआ। इस प्रकार 'शान्त–रस' में उनकी परिणति करके सांप्रदायिक कीर्तन में उनका भी स्थान निश्चित किया। इन उक्तियों का व्यावहारिक उपयोग 'चेतावनी' साहित्य के रूप में भी हुआ।

संक्षेप में यही सूर के व्यक्तित्व की 'सूरसागरीय' परिणति है।

अध्याय-3

राम काव्य की परम्परा

भारतीय धर्म साधना में अवतारवाद की कल्पना के पश्चात् राम और कृष्ण को प्रायः समान दृष्टि से देखा जाता रहा है। यों तो उपासकों को अपनी भावना के अनुरूप विष्णु के किसी एक अवतार को चुन लेने की पूरी छूट रही किन्तु एक अवतार की उपासना करते हुए दूसरे अवतार के प्रति कभी धृणा नहीं देखी गयी। दक्षिण भारत के आलवारों ने विष्णु के विभिन्न अवतारों में कोई भेद नहीं किया। राम और कृष्ण ने उन्हें विशेष रूप से आकृष्ट किया। यह सच है कि उनके 'तमिल प्रबन्धम्' में कृष्ण की अपेक्षा राम का विस्तार कम है किन्तु रामकथा के कुछ विशिष्ट प्रसंगों को उन्होंने अपने काव्य में स्थान दिया है। वैष्णव पुराणों में सर्वाधिक लोकप्रिय श्रीमद्भागवत में राम और कृष्ण का अभेद प्रतिपादित कर भगवान के विविध अवतारों में एकत्व स्थापित कर दिया गया है।

प्रथम स्कन्ध के तीसरे अध्याय में भगवान् के बाईस अवतारों का उल्लेख करते हुए दाशरथिराम को 18वाँ और श्रीकृष्ण को 20वाँ अवतार कहा गया है। ध्यातव्य है कि भागवत में दाशरथिराम के लिए नरदेव अर्थात् 'राजा' शब्द का प्रयोग किया गया है और 'राम' शब्द से श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम को सम्बोधित किया गया है। नरदेव के रूप में भगवात् के जिन कार्यों का वर्णन है उनसे स्पष्ट हो जाता है कि भागवतकार का संकेत दाशरथिराम की ओर है–

नरदेवत्वमापन्नः सुर कार्य चिकीर्षया।
समुद्र निग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम्।।[1]

(देवताओ का कार्य सफल करने की इच्छा से अन्होंने राजा के रूप में अवतार ग्रहण किया और सेतुबंधन, रावणबध आदि वीरतापूर्ण बहुत सी लीलाएँ की।)

1. *श्रीमद् भागवत्, प्रथम स्कन्ध, श्लोक 22*

रामानुज के आविर्भाव के पश्चात् उपासना के क्षेत्र में जब राम को विशिष्ट स्थान प्राप्त होने लगा और उनके पश्चात् रामानन्द ने उसे चरम उत्कर्ष पर पहुँचा दिया, तब राम और कृष्ण दोनों समान रूप से महत्वपूर्ण हो गये। रामानन्द की शिष्य परम्परा में तुलसी और आचार्य बल्लभ की शिष्य परम्परा में सूर का आविर्भाव हुआ था। उक्त दोनो महाकवियों ने क्रमशः राम और कृष्ण को जन–जन तक पहुँचाने का कार्य किया। सूर मुख्यतः कृष्ण के उपासक थे किन्तु राम के प्रति उनके हृदय में प्रगाढ श्रद्धा थी। इसी प्रकार तुलसी राम के उपासक होते हुए कृष्ण के प्रति समान भाव से श्रद्धावनत थे। फलतः सूर ने 'रामकाव्य' और तुलसी ने 'कृष्ण गीतावली' के नाम से पृथक कृष्ण काव्य की रचना की।

राम शब्द की व्युत्पत्ति एवं विविधि अर्थ

हरि हरि हरि हरि सुमिरन करौ।
हरि चरनारबिंद उर धरौ।।
जय अरु विजय पारषद दोई
ब्रिप सराप असुर भए सोइ।।
एक बराह रूप धरि मार्‌यौ।
एक नरसिंह रूप संहार्‌यौ।।
रावन कुंभकरन सोइ भए।
राम जनम तिनकै हित लए।।
दसरथ नृपनि अजोध्या राव।
ताकै गृह कौ आविर्भाव।।
नृप सौ ज्यौ सुकदेव सुनायो।
सूरदास त्यौंही कहि गायो।।[2]

हरि का बार–बार स्मरण करो। भगवान के चरण कमलों को हृदय में धार करो। (विष्णु के) जय और विजय नाम के दो द्वारपाल थे। ब्राह्मणों टसनकादि ऋषियों) के शाप से वे असुर हो गए। उनमें से एक (हिरण्याक्ष) को

2. *डॉ0 हरदेव बाहरी व राजेन्द्र प्रसाद, सूरसागर सटीक, भाग–1, 1991, पृ0 218*

भगवान् ने वराह रूप धारण करके मारा और दूसरे (हिरश्कशिपु) का संहार नृसिंह रूप धारण करके किया। वे दोनों फिर रावण और कुम्भकरण के रूप में उत्पन्न हुए। उनके उद्धार हेतु ही श्रीराम ने अवतार धारण किया। अयोध्या के राजा दशरथ रथ के घर पर श्रीराम का अविर्भाव हुआ। राजा परीक्षित को जिस प्रकार शुकदेव जी ने (यह प्रसंग) सुनाया, सूरदास ने उसी प्रकार वर्णन करके उसका गान किया।

एक किम्बदन्ती के अनुसार जब तुलसीदास अपने भाई नन्ददास से मिलने के लिए ब्रज में आए थे, तब वे चन्द्रसरोवर पर सूरदास से भी मिले थे। तुलसीदास को श्रीरामचन्द्र जी का इष्ट था, अतः उनको श्रीनाथ जी के प्रति भक्तिभाव प्रकट करने में संकोच हुआ है।

उस समय सूरदास ने एक पद गाकर श्रीनाथ जी से प्रार्थना की कि वे तुलसीदास को रामचन्द्र के रूप में दर्शन दें। उस पद की पंक्तियाँ इस प्रकार है–

जे पद सकटासुर संहारी। जे पद पांडव गृह पगधारी
जे पद रज गौतम तियतारी। जे पद भक्तन के सुखकारी
सूरदास सुर जाँचत ते पद। करहु कृपा अपने जन पर सद[3]

स्पष्ट है कि सूरदास सकटासुर का बध करने वाले और पाण्डवों के घर निवास करने वाले कृष्ण तथा गौतम पत्नी अहिल्या का उद्धार करने वाले राम में कोई अन्तर नहीं मानते।

कृष्ण की बाल लीला से सम्बन्धित एक पद में सूरदास ने सांकेतिक शैली में राम और कृष्ण की एकता प्रतिपादित की है। यह सर्वविदित है कि राम का अवतार कृष्ण से पहले हुआ था। त्रेता में भगवान् विष्णु ने राम के रूप में

3. डॉ0 हरदेव बाहरी व राजेन्द्र प्रसाद, सूरसागर सटीक, भाग–1, 1991, पृ0 218

अवतार लिया और द्वापर में वे पुनः कृष्ण के रूप में अवतरित हुए। माता यशोदा बालक कृष्ण को सुलाने के लिए लोरियाँ सुना रही हैं। उस लोरी में वे राम की कहानी कहती हैं। श्री कृष्ण लोरी सुनते सुनते सोने लगते हैं लेकिन माता जब यह कहती हैं "रावन हरन सिया को कीन्हों" तब अचानक श्रीकृष्ण की नींद खुल जाती है और वे बार बार "लक्ष्मण मेरा धनुष लाओ" कहते हुए उठ जाते हैं। यशोदा इसका रहस्य नहीं समझ पातीं।

रावन हरन सिया को कीन्हों सुनि नन्दनन्दन नींद निवारी।
चाप–चाप करि उठे सूर प्रभु, लछिमन देहु जननि भ्रमभारी।[4]

सूरसागर के नवें स्कन्ध में रामकथा से सम्बन्धित सौ से अधिक पद हैं। उन पदों की रचना समय–समय पर हुई और वे सभी पूर्वापर क्रम निरपेक्ष, स्वतः पूर्ण और स्वतंत्र हैं। फिर भी, सूरसागर के वर्तमान संस्करण में उन्हें जिस क्रम में रखा गया है, उससे उनमें प्रबन्धात्मकता आ गयी है। राम के जन्म से लेकर उनके लंका से अयोध्या वापस आने तक की सभी प्रमुख घटनाओं पर सूरदास ने पद रचना की है लेकिन अपनी रूचि एवं प्रवृत्ति के अनुसार कुछ घटनाओं के वर्णन पर उन्होंने अधिक ध्यान दिया है और कुछ घटनाओं की उपेक्षा कर दी है। आचार्य शुक्ल ने 'तुलसी की भावुकता' नामक अपने प्रसिद्ध निबन्ध में रामकथा के कतिपय मार्मिक स्थलों की ओर संकेत किया है। वे स्थल हैं– राम का अयोध्या त्याग और पथिक के रूप में बनगमन, चित्रकूट में राम और भरत का मिलन, शबरी का आतिथ्य, लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम का विलाप और भरत की प्रतीक्षा। शुक्ल जी के अनुसार इन स्थलों को गोस्वामी जी ने अच्छी तरह पहचाना है।

4. *डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 118*

इनका उन्होंने अधिक विस्तृत और विशद् वर्णन किया है। सूरदास ने रामकथा के जिन स्थलों का वर्णन करने में अधिक रूचि दिखाई है, उनमें कुछ तो वे ही स्थल हैं जिनका निर्देश तुलसीदास के संदर्भ में शुक्ल जी ने किया है किन्तु कुछ ऐसे स्थल भी हैं जिनका वर्णन रामचरित मानस में विस्तार से नहीं हुआ है। उदाहरण के लिए मानस में राम की बाललीलाओं का वर्णन संक्षेप में किया गया है जबकि सूरसारगर में राम की बाललीला से सम्बन्धित पद अधिक संख्या में हैं। तुलसीदास ने कवितावली और गीतावली में बाललीला का वर्णन करने पर जो विशेष ध्यान दिया है वह सम्भवतः सूर का प्रभाव है।

सीताहरण के अवसर पर राम के विलाप का गोस्वामी जी ने यद्यपि मार्मिक वर्णन किया है किन्तु उसका विस्तार अधिक नहीं है और उसमें परम्परा का निर्वाह अधिक हुआ है। राम कहते हैं–

खंजन सुक कपोत मृगमीना। मधुप निकर कोकिला प्रवीना
कुंद कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहि भामिनी
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाई जनु राजू।[5]

शरीर के विभिन्न अंगों से संबंधित उपमानों का नाम गिनाने के बाद यह कहना कि तुम्हारे बिना आज वे सभी प्रसन्न हो रहे हैं, निश्चित रूप से परम्परागतक वर्णन कहा जाएगा। इसमें कोई विशेष मार्मिकता नहीं है। इस प्रसंग में केवल एक चौपाई ऐसी आई है, साहित्य जगत् में जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई –

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृग नयनी[6]

सूरदास ने सीताहरण पर राम के विलाप का बहुत विस्तार से वर्णन किया है। जिस बात को तुलसीदास ने एक चौपाई में कहकर संतोष कर लिया, उस पर सूरदास ने पूरा एक पद गाया है–

---

5. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 118
6. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 119

फिरत प्रभु, पूछत वन–द्रुम बेली।
अहो बंधु काहू, अवलोकी इहिं मग बधू अकेली?
अहो विहंग, अहो पन्नग पति या कंदर के राइ।
अबकै मेरी विपत्ति मिटावौ, जानकि देहु बताइ।।
चंपक–पुहुप बरन–तन–सुन्दर, मनो चित्र अवरेखी।
हौ रघुनाथ, निसाचर के संग अबै जात हौं देखी।।
यह सुनि धावत धरनि, चरन की प्रतिमा पथ में पाई।
नैन–नीर रघुनाथ सानि सो, सिव ज्यौं गात चढाई।
कहुँ हिय–हार, कहूँ कर कंकन, कहु नूपुर कहुँ चीर।
सूरदास बन–बन अवलोकत, बिलख बदन रघुबीर।[7]

सूर की रामायण में सबसे अधिक विस्तार लंका काण्ड और सुन्दर कांड का है जबकि बाल्मीकि और तुलसी दोनों ने सबसे अधिक विस्तार "बालकांड" और "अयोध्या कांड" का किया है। इसका कारण स्पष्ट है। सुन्दरकांड और लंकाकांड दोनो में सीता की बिरह व्यथा के वर्णन के लिए प्र्याप्त अवसर था। सूर उस प्रसंग की उपेक्षा कैसे कर सकते थे। रामकथा में जहाँ कहीं करूण रस अथवा उससे मिलते जुलते भाव की व्यंजना के लिए अवसर मिला है, सूरदास ने उसका अत्यन्त विस्तार से वर्णन किया है। राम के शक्ति और शौर्य समन्वित रूप की यद्यपि सूर ने उपेक्षा नहीं की है तथापि उनके दयालु और पर दुःख कातर रूप पर उनका ध्यान अधिक रहा है। सूरदास ने सीता की व्यथा पर यद्यपि सबसे अधिक दृष्टि केन्द्रित की है फिर भी वे उन प्रसंगों की उपेक्षा नहीं कर सके हैं जो रामकथा में परम्परा से प्रसिद्ध हो गये थे। रामायण और रामचरितमानस दोनों में राम ने सीता को अग्नि परीक्षा से होकर गुजरने का आदेश दिया है। सूर ने भी अपने पदों में इस प्रसंग की चर्चा की है। कहाँ उनके कृष्ण सोलह सहस्र गोपियों के साथ रमण करते हैं फिर भी गोपियों को किंचित् दोष का भागी नहीं होना पड़ता और कहाँ सती सीता को अग्नि परीक्षा से होकर गुजरना पड़ता है। सूर चाहते तो इस प्रसंग की उपेक्षा कर सकते थे

7. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 119

अथवा इसे किसी अन्य रूप में प्रस्तुत कर सकते थे किन्तु रामकथा में यह प्रसंग परम्परा से इतना प्रसिद्ध हो चुका था कि वे उसे नजरअंदाज नहीं कर सके। हाँ हनुमान के माध्यम से उन्होंने राम के इस कठोर व्यवहार पर अपनी प्रतिक्रिया अवश्य व्यक्त कर दी है।

यह सुनि हनूमान दुःख पायो, मोप्रै लख्यौं न जाई।[8]

और सीता के पवित्र एवं निष्कलंक होने की घोषणा कर दी है–

लै उछंग उपसंग हुतासन, 'निहकलंक रघुराई'।
लई विमान चढाइ जानकी, कोटि मदन छवि छाई।[9]

सूरदास के परम आराध्य भगवान श्री कृष्ण लीला पुरूषोत्तम है। वे राधा और गोपियों के साथ बहुविध प्रेम लीलाएं करते समय सामाजिक मर्यादाओं का ध्यान नहीं रखते। लेकिन सूरदास ने राम को सर्वत्र मर्यादा का पालन करते हुए दिखाया है। लक्ष्मण को शक्ति लगने पर जब उनके जीवित बचने की आशा क्षीण हो जाती है और राम शोक से विलाप करने लगते हैं, तब भी उन्हें विभीषण की चिन्ता बनी रहती है। वे हनुमान से कहते हैं–

मैं निज प्रान तजौंगो सुनि कपि तजिहिं जानकी सुनिकै।
ह्वै है कहा विभीषन की गति, यहै सोच जिय गुनिकै।[10]

लक्ष्मण के मरने पर राम का जीवित रहना असंभव है और राम के न रहने पर सीता निश्चय प्राण त्याग देंगी। राम को चिन्ता इस बात की सता रही है कि उनके न रहने के बाद विभीषण का क्या होगा। मित्र को दिए गए वचनों का इतना ध्यान राम के अलावा दूसरा कौन रख सकता है?

---

8. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 119
9. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 120
10. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 120

सूरसागर के दशम स्कन्ध में जहाँ सूरदास ने श्रीकृष्ण के सौन्दर्य और माधुर्य व्यंजक रूप पर विशेष ध्यान दिया है, वहीं नवम स्कंध में उन्होंने राम के शक्ति–शील– समन्वित रूप का चित्रण किया है। मानस में मुनियों के अस्थि समूह को देखकर जिस प्रकार राम की भुजाएँ फड़क उठी थीं और उन्होंने दोनों हाथ उठाकर राक्षसों का बध करने का संकल्प किया था (निसिचरहीन करौं महि भुज उठाइपन कीन्ह), उसी प्रकार सूरसागर में राम सुग्रीव के समक्ष राक्षस समूह का बध करने की प्रतिज्ञा करते हैं–

दूसरैं कर बान न लैहौं।
सुनि सुग्रीव, प्रतिज्ञा मेरी, एकहिं बान असुर सब हैहौं।
सिव पूजा जिहिं भांति करी है, सोइ पद्धति परतच्छ दिखैहौं।
दैत्य प्रहारि पाप–फल–प्रेरित, सिर–माला सिव–सीस चढहौं।।
मनौ तूल–गन परत अगिनि–मुख, जारि जड़नि जम–पंथ पठैहौं।
करिहौं नाहिं बिलंब कछू अब, उठि रावन सन्मुख है धैहौं।।
इमि दमि दुष्ट देव–द्विज मोचन, लंक विभीषन, कौ दैहौं।
लछिमन सिया समेत, "सूर" कपि, सब सुख सहित अयोध्या जैहौं।[11]

मन्दोदरी ने रावण के सम्मुख राम के प्रताप का वर्णन इन शब्दों में किया है–

मो मति अजहुँ जानकी दीजै।
लंकापति–तिय कहति पिया सौं, यामै कछू न छीजै।।
पाहन तारे, सागर बॉध्यौ, तापर चरन न भीजै।
बनचर एक लंक तिहिं जारी, ताकी सरि क्यौं कीजै।।
चरन टेकि दोउ हाथ जोरि कै, बिनती क्यौं नहिं कीजै ?।
वे त्रिभुवनपति, करहिं कृपा, अति कुटुंब–सहित सुख जीजै।।
आवत देखि बान रघुपति के, तेरौ मन न पसीजै।
'सूरदास' प्रभु लंक जारि कै, राज विभीषन दीजै।।[12]

रामचरित मानस में भी मन्दोदरी ने लगभग इसी प्रकार रावण को समझाया है–

---

11. *डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 120*
12. *डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 121*

कंत समुझि मन तजहु कुमति हीं। सोह न समर तुम्हहिं रघुपतिहीं
पिय तुम्ह ताहि जितव संग्राम। जाके दूत केर यह कामा
जारि सकलपुर कीन्हेस छारा। उतरे प्रभु दल सहित सुबेला
अंगद हनुमत अनुचर जाके। रनबाँकुरे वीर अति बाँके
तेहि कहँ पिय पुनि– पुनि नर कहहू। मुधा मान ममता मद बहहू।[13]

सूरसागर के रामकथा विषयक पदों और रामचरित्र मानस के कतिपय अंशों में इतनी समानता है कि रामचरितमानस पर सूरसागर का प्रभाव मानने को विवश होना पड़ता है। राम की वन यात्रा के समय मार्ग में पुरबधुएँ सीता से प्रश्न करती हैं–

इनमें को पति आहिं तिहारे पुरजनि पूछैं धाइ।
राजिव नैन मैन की मूरति सैननि दियौ बताइ।[14]

इसी प्रंसग का वर्णन तुलसीदास ने इन शब्दों में किया है–

कोटि मनोज लजावनि हारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे
खंजनि मंजु तिरीछे नैननि। निज पति कहेउ तिनहिं सिय सैननि।[15]

सूर और तुलसी के उपर्युक्त वर्णनों में न केवल भाव साम्य है बल्कि शब्दसाम्य भी विद्यमान है। सूर और तुलसी की भेंट हुई थी या नहीं, इस संबंध में विवाद हो सकता है किन्तु यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि तुलसीदास सूर के रामकथा विषयक पदों से भली भाँति परिचित थे।

श्री राम के दरबार मे पहुँचना मुश्किल जानकर सूरदास ने उनके पास अर्जी लिखकर भेजी है–

विनती केहिं विधि प्रभुहिं सुनाऊँ।
महाराज रघुवीर धीर कौ, समय न कबहूँ पाऊँ।
तुमही कहौ कृपानिधि रघुपति किहि गिनती मै आऊँ।
एक उपाय करौ कमलापति, कहौ तौ कहि समुझाऊँ।
पतित उधारन नाम सूर नाथ यह लिखि कागद रूक्का पहुँचाऊँ।।[16]

---

13. *डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 121*
14. *डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 121*
15. *डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 121*
16. *डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 121*

हू–बहू इसी पद्धति पर तुलसीदास ने भी राम के दरबार मे अपनी विनय पत्रिका पहुंचायी है–

विनय पत्रिका दीन की बापु आपु ही बाँचौ।[17]

क्या तुलसीदास को इसकी प्रेरणा सूरदास से प्राप्त हुई थी? इस प्रश्न पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है।

राम आराधना का प्रारम्भ एवं विकास

सूरदास के रामकाव्य की पृष्ठभूमि बल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित कृष्णोपासक भक्त कवि सूरदास के प्रसिद्ध ग्रंथ 'सूरसागर' मे विभिन्न स्थलों पर राम सम्बन्धी बड़े ही मार्मिक पद मिलते हैं। सूरदास जी ने लीला पुरूषोत्तम श्रीकृष्ण जी के कितने मनोमुग्धारी चित्र अपनी काव्य तूलिका से उतारे हैं, मर्यादा पुरूषोत्तम, आनन्दनिधि, भक्तवत्सल, परमदयालु श्रीराम के भी उतने ही लोकाभिरामचित्र उन्होंने उपने काव्य पटल पर अवतरित किये हैं इसका क्या कारण है ? इस पर विद्वानों ने आज तक गम्भीर अनुशीलन नहीं किया है। कुछ विद्वानों ने इसका कारण यह बताया है कि प्रारम्भ में महाकवि सूरदास जी रामानन्द सम्प्रदाय से प्रभावित थे इसलिए वे रामचरित के पद भी गाते थे। कुछ विद्वानों का मत है कि श्रीमद्भागवत–पुराण के नवम स्कंध में रामकथा का वर्णन है अतएव सूरसागर में भी, रामकथा का गायन किया गया है। बात इतनी सरल और सहज प्रतीत नहीं होती, क्योंकि मात्र प्रसंग वश, चलताउ ढंग के पद 'सूरसागर' में नहीं हैं, वरन् बड़े ही मार्मिक, मंजुल, मधुर तथा मनोरम ही नहीं बहुत डूबकर कहें गये राम सम्बन्धी पदों की 'सूरसागर'में कमी नहीं है।

'सूरसागर' में विभिन्न पुराणों का प्रभाव भी विद्वानों ने सिद्ध किया है। इसके अतिरिक्त महाप्रभु बल्लभाचार्य और निम्बार्काचार्य के सम्प्रदाय को भी

17. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 121

रामकथा से किस प्रकार प्रभावित किया है इस पर भी संक्षेप में चर्चा कर लेना इस विषय को समझने में सहायक होगा।

महाप्रभु बल्लभाचार्य और रामकाव्य

श्रीमद्भागवत द्वितीय स्कंध के सप्तम अध्याय में श्री ब्रह्मा ने नारद जी को भगवान के अवतारों के विषय में क्रमवार बताया है। उस क्रम में श्री राम बीसवें अवतार हैं। आचार्य श्री बल्लभ ने अपनी पुस्तक 'श्रीसुबोधनी' में इस प्रसंग का बड़ा ही मार्मिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इन्होंने बताया कि 'हास' तीन प्रकार का होता है। प्रसन्नता के कारण होने वाला 'हास' सात्विक हास कहलाता है लोगों को मोहित करने के लिए किया जाने वाला हास 'राजसहास' है और अभिमानियों के अभिमान खण्डन के लिए किया जाने वाला हास 'तामसहास' कहा जाता है।

भगवान के इन तीनों हासों के उदाहरण में वह रामकथा की चर्चा करते हैं। ब्रह्मादि देवताओं ने जब रावण के बध के लिए भगवान से प्रार्थना की भगवान को 'हास' हुआ कि इस रावणादि बध को तो मेरी एक ही कला कर सकती है, जो वैकुन्ठ में विष्णु के रूप में स्थित है। आगे श्री बल्लभ कहते हैं कि देवताओं को घबराया हुआ देखकर पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान ही श्री रघुनाथ के रूप में प्रकट हुए और ज्ञान कला सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्यमयी शक्ति श्री सीता रूप से विदेह वंश में प्रकट हुई। इन्होंने भगवान के सात्विक चरित्र का वर्णन करते हुए देवताओं का हित साधन, धर्मादि कलाओं का पालन, भक्तोद्धार, पिता की आज्ञा का पालन, वनवास तथा अहिल्या का उद्धार, शबरी का आतिथ्य स्वीकार और सेतुबन्धन इत्यादि की भी वृहद चर्चा की है।

बल्लभ सम्प्रदाय में आज भी रामजन्म तथा इससे सम्बन्धित उत्सव मनाये जाते हैं।

निम्बार्काचार्य सम्प्रदाय और रामकाव्य

ब्रह्म अद्वैत, अविभक्त और सदा निर्विकार है। वह सर्व शक्तिमान सर्वज्ञ तथा सब गुणों का आश्रय भी है। निम्बाक्र के मत में ब्रह्म की कल्पना सगुण रूप से की गयी है। यद्यपि ब्रह्म निर्विकार है तथापि माया के कारण उसका स्वाभाविक आनन्द अनन्त रूप में अनुभूत होता है। ब्रह्म में ऐसा सामर्थ्य है कि वह अपने को अविकृत और अविभक्त रखते हुए नाना रूपात्मक पदार्थो में उत्पन्न करके आनन्द का उपभोग कर सकता है इस प्रकार निम्बार्क के ईश्वर भी रामानुज के अनुसार चित अचित् युक्त है। श्री निम्वार्क के दो ग्रंथ प्रसिद्ध हैं – (1) 'वेदान्त–पारिजात सौरभ' और (2) 'दशश्लोकी' एक 25 श्लोकों का स्तोत्र भी, जिसका नाम "सविशेष निविशेष श्रीकृष्ण स्तवराज" है डॉ0 हरवंशलाल शर्मा ने श्री निम्बार्क रचित बताया है इनका समस्त साहित्य राधा–कृष्ण की भक्ति से ओतप्रोत है परन्तु कालांतर में श्री निम्बार्क सम्प्रदाय के सर्व–मूर्धन्य पूर्वाचार्य एवं परवर्ती आचार्य चरणों ने भी श्रीराम महिमा का गुणगान जिस अनुपमेय, अतिललित भाषा में किया है वह द्रष्टव्य है।

जगद्गरू श्रीकेशव काश्मीरी भट्टाचार्य जी महराज ने 'श्रीकृष्ण शरणापत्ति स्तोत्र' मे भगवान श्रीकृष्ण की प्रसन्नता की आकांक्षा करते हुए भगवान श्रीराम की भी प्रपत्ति बड़ी ही सरसता से की है। इसी प्रकार श्री निम्बार्क–पीठाधीश्वर जगद्गुरू श्री परशुराम देवाचार्य जी ने 'श्री परशुराम सागर' नामक वृहद् ग्रंथ की रचना की है उसमें अनेक पदों में श्री राजीवलोचन भगवान राम का गुणवान किया गया है।

सूर के राम काव्य का मुख्य स्रोत

श्रीमद् भागवत पुराण के प्रथम स्कंध के तृतीय अध्याय के 22 वें श्लोक में अवतार वर्णन के प्रंसग में श्रीराम का वर्णन करते हुए कहा गया है कि श्रीराम ने देवताओं का कार्य सम्पन्न करने की इच्छा से राजा के रूप में अवतार ग्रहण किया और समुद्र में पुल बाँधकर वीरता पूर्ण लीलायें की।

द्वितीय स्कंध के सातवें अध्याय में ब्रह्मा ने भगवान के लीलावतारों की कथा सुनायी है। इसके अन्तर्गत 3 श्लोकों में रामावतार का काव्य पूर्ण वर्णन है।

नवम स्कन्ध के नवम अध्याय में सूर्यवंशानुवर्णन के बाद दसवें अध्याय का आरम्भ ही भगवान श्री राम की कथा से किया है। इस अध्याय में कुल 56 श्लोकों में रामकथा वर्णित है। इसके बाद 11वें अध्याय में रामकथा 36 श्लोकों वाला अध्याय रामकथा के बाद समाप्त हो जाता है। इसके बाद 12वें अध्याय मे इक्ष्वाकुवंश के शेष राजाओं का वर्णन है।

श्रीमद्भागवत की परम्परा तथा सूर के रामचरित वर्णन के प्रसंग पर डॉ0 दीनदयाल गुप्त ने लिखा है "अष्ट छाप के प्रथम चार कवियों से पहले की राम–काव्य परम्परा मे केवल दो व्यक्तियों का उल्लेख हमें हिन्दी साहित्य के इतिहास में मिलता है। एक भागवत दास और दूसरे भूपति कवि। कवि भागवत दास के हिन्दी में लिखे 'भेद–भास्कर' ग्रंथ के नाम के अतिरिक्त डॉ0 रामकुमार वर्मा ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में उक्त ग्रंथ का और कोई परिचय नहीं दिया। हस्तलिखित पुस्तको का संक्षिप्त विवरण भाग 1 नामक पुस्तक में आचार्य श्याम सुन्दर दास ने भी कवि भागवतदास के बारे में लिखा है– इनके विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। इसलिए इस रचना के सम्बन्ध में यहाँ कुछ नहीं कहा जा सकता। भूपति की भागवत भाषा दशम स्कंध तथा रामचरित रामयण रचनाओं के सम्बन्ध में खोज रिपोर्टों की सूचनाओं तथा हस्तलेखों के आधार पर डा0 गुप्त ने यह सिद्ध किया है कि इनका समय विक्रम की अठारहवीं शताब्दीं (संवत 1744) है। आगे डॉ0 गुप्त ने अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है "इस प्रकार अष्ट छाप के प्रथम चार कवियों से पहले रामकाव्य परम्परा में आने वाला कोई ग्रंथ अभी तक नहीं मिला। सूरसागर के नवम् स्कंध में सूरदास द्वारा वर्णित रामचरित भागवत नवम स्कंध का अनुकरण है रामकाव्य परम्परा के किसी हिन्दी कवि का प्रभाव नहीं है। नन्द दास आदि दूसरे वर्ग के चार अष्ट छाप

भक्तों के समय अवश्य उनके जीवन काल में तुलसी का रामचरित मानस आ गया था।" परन्तु डॉ0 दीनदयाल गुप्त की यह स्थापना कि सूरदास द्वारा वर्णित रामचरित भागवत नवम स्कंध का अनुकरण है, उचित प्रतीत नहीं होता। इसे आगे स्पष्ट किया गया है।

रामकाव्य का उद्‌भव एवं विकास

सूरसागर के नवम् स्कंध का प्रारम्भ राग विलावल में राजा पुरूरवा के वैराग्य की कथा से होता है। इसके बाद च्यवन ऋषि की कथा, हलधर विवाह, राजा अम्बरीष की कथा, सौमारि ऋषि की कथा, श्री गंगा आगमन, गंगा–विष्णु पादोदक स्तुति और परशुराम अवतार के बाद रामकथा वर्णित है। बालकाण्ड आरम्भ होने के पूर्व छः पंक्तियों के एक पद में भगवान का स्मरण करते हुये, तथा उनके चरण कमल को हृदय में धारण कर यह बताया गया है, कि जय और विजय नाम के दो पार्षद थे। वे ब्राह्मण के शाप से राक्षस हो गये थे। उनमें एक का बध भगवान ने बारह अवतार में किया तथा दूसरे का संहार नृसिंह रूप धारण कर किया। ये दोनों ही बाद के जन्म में रावण और कुंभकर्ण के रूप में जन्में। इनके बध के लिये भगवान श्रीराम अयोध्या के राजा दशरथ के यहाँ अवतरित हुए। सूरदास जी कहते हैं, कि जो कथा शुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित को सुनाई, वही मैं गा रहा हूँ। परन्तु अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि सूर की रामकथा तथा श्रीमद्‌भागवत की रामकथा में बहुत अन्तर है।

सूर के रामकाव्य में कुल 158 पद हैं। सूरसागर का पद क्रमाँक 616 इनके रामकाव्य का अन्तिम पद है। इसमें सूरदास जो अपनी विनयपत्रिका रामचन्द्र जी तक पहुंचाना चाहते हैं, परन्तु उन्होंने देखा कि रामचन्द्र जी प्रातः से लेकर रात्रि तक पूर्णरूप से व्यस्त हैं, अतएव उन्हें संकोच हो रहा है कि किस प्रकार किस समय वे रामचन्द्र जीको अपना रूक्का पहुँचायें। सूरदास जी

को विश्वास हैं कि भगवान पतित उधारन हैं अतएव इनकी विनयपत्रिका प्रभू तक पहुँच ही जावेगी। यहीं तक कुल रामकथा है। इसके बाद "कच देवयानी" कथा है।

रामकाव्य का शिल्प वैशिष्ट्य

पश्चिमी विद्वान काव्य को 'कला' मानते हैं। ड्राइडन के अनुसार –'कविता शब्द चित्र है तो चित्र मूक कविता'टालस्टाय, क्रोचे, हेगिल सभी काव्य को कला मानते हैं।

भारतीय परम्परा में काव्य को कलाओं में नहीं माना गया है। कला के अंतर्गत–संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला के अतिरिक्त पुस्तक बांधना और सूक–सारिका पढ़ाना जैसे साधारण कौशलयुक्त कार्यों की गणना की गयी है। कामशास्त्र में जिन चौंसठ कलाओं का वर्णन है उसमें 'काव्य–समस्या पूर्ति को अवश्य कला माना गया है परन्तु 'काव्य की मूल संरचना' एक अलग शिल्प है। हमारे यहां पूर्ति काव्य का क्षेत्र कला से उच्च बताया गया है। आचार्य भामह ने कला की विशेषता 'विचक्षणता ' को माना है– वैवक्षण्यं कलासु च'। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं– 'कलाओं के संबंध में जिनका लक्षण केवल सौन्दर्य की अनुभूति उत्पन्न करना है,यह मत कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता है। इसी से चौंसठ कलाओं का उल्लेख हमारे यहां काम–शास्त्र के भीतर हुआ है। पर काव्य की गिनती कलाओं में नहीं की गयी है।'

वैसे देखा जाये तो काव्य और कला दोनों सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति ही हैं। रसाननद दोनों में है। कौन किसके अंतर्गत आता है यह प्रश्न महत्वहीन है। काव्य– शिल्प है और इसके उपकरण शब्द और अर्थ हैं। व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'श्ल्प'शब्द 'शिला' से सम्बंधित है। 'शिला 'को अपनी भावना, हस्त कौशल और कल्पना के आधार पर काट–छांट कर शिल्प का स्वरूप दिया है। यह शिल्प अंग्रेजी के 'क्राफट के समतुल्य चीज है।

कवि धर्म के विषय में आचार्य शुक्ल ने लिखा है– ''कवि–धर्म में कल्पना की बहुत आवश्यकता होती है, पर यह कल्पना विशेष प्रकार की होती है। उसकी क्रिया कवि की भावुकता के अनुरूप होती है। कवि अपनी भावुकता की दृष्टि के लिए ही कल्पना को रूप विधान में प्रवृत्त करता है। जब भाव की उमंग ही कल्पना को प्रेरित करती है तब कवि का मूल गुण भावुकता अर्थात अनुभूति की तीव्रता है। कल्पना उसकी सहयोगिनी है। पर ऐसी सहयोगिनी है जिसके बिना कवि अपनी अनुभूति को दूसरे तक पहुंचा ही नहीं सकता। अनुभूति को दूसरे तक पहुंचाना ही कवि धर्म है। अतः हम कह सकते हैं कि कल्पना और भावुकता कवि के लिए दोनों अनिवार्य हैं। भावुक जन कल्पना–सम्पन्न और भाषा पर अधिकार रखने वाला होता है, तभी कवि होता है।''

कल्पना कवि के अन्तर्मन में उत्पन्न होती है। अन्तर्मन का संयोग आनंद का संयोग है। अन्तर्मन की विराटता और संयोग की यह उदात्त स्थिति सहज कवि को जन्म देती है, उनकी भाषा भी उतनी ही सहज होती है। आनंदवर्धन कहते हैं "काव्य की वह अर्थ वस्तु और उसे व्यक्त करने वाला शब्द"कोई ही हीती है। महाकवियों को इन शब्दार्थो की पहिचान प्रयत्न पूर्वक करनी चाहिये।"

इस तरह कवि की रचना–प्रक्रिया में अंतर्मन और भाव जब परस्पर प्रत्यक्ष हो जाते हैं तब उसकी भाषा का उदय होता है। कवि की सर्जना में भाषा की इस अपरिहार्य स्थिति से फिर वही चिरंतन प्रश्न उपस्थित होता है। काव्य की रचना में भाषा का क्या स्थान है? काव्य का "जीवित" क्या है? भाषा का वैशिष्ट्य या अर्थ का वैशिष्ट्य? जयशंकर त्रिपाठी अपनी पुस्तक "कवि का रचना व्यापार और साहित्यशास्त्र" में कहते है, संस्कृत काव्य शास्त्र के चिंतन के प्रथम एक हजार वर्ष की अवधि में चार बार भाषा वादियों ने अपने क्रान्तिकारी पक्ष प्रस्तुत किये हैं– (1) "सौशब्द्य" को काव्य मानने वाले आचार्यो का सम्प्रदाय, दंडी के "काव्यादर्श" में इनका संकेत और भामह के "काव्यालंकार" में स्पष्ट

उल्लेख मिलता है। यह काव्य के अस्तित्व की मूल स्थिति थी। (2) दूसरी क्रांति तब हुई जब दंडी (4 थी शती ई0) ने गुण को काव्य का प्राण बताया। (3)वामन (8 वीं शती ई0) ने इन गुणों से विशिष्ट–पद की रचना–रीति को काव्य की आत्मा कहा (रीति रात्मा काव्यस्य) तथा (4)कुंतक (11वीं शती ई0) ने गुण–रीति से आगे बढकर भाषा की शक्ति को अधिक गहराई से पहिचाना और उन्होंने भाषा की उस शक्ति को लक्ष किया जो हठात् मनोहर अर्थ को अपने मे समाहित कर लेती है। भाषा की इस शक्ति का उदय कवि के व्यापार अर्थात उसकी सज्रना में होता है, अतः काव्य क्या है, इसके उत्तर मे कुंतक ने कहा कि कवि व्यापार की मनोहर (वक्र) सर्जना में शब्द और अर्थ की सम्मिलित आल्हादकारिणी स्थिति काव्य है। अर्थात क्रोधित काव्य का जीवित है। कारिका में 'वक्र कवि व्यापार शालिनि' कह देने के बाद "तद्–विदाल्हादकारिणी" विशेषण की आवश्यकता नहीं थी, वक्र कवि व्यापार तो इस वैशिष्ट्य के साथ प्रवष्त्त ही होगा, एकान्त आल्लाद ही सर्जना की प्रेरणा है। कुतंक ने दूसरे विशेषण का प्रयोग कर पुनरूक्ति की है, किन्तु उनकी यह पुनरूक्ति कवि की सर्जना में उसके पाठक के अस्तित्व की ओर इंगित करती है। पाठक इस बात का प्रमाण है कि वह भाषा के वैशिष्ट्य पर आकर्षित होता है।"–

अन्य स्फुट पद

सूरसागर के प्रथम स्कंध में पद क्रमाँक 3 में श्रीराम विषयक एक पंक्ति है। इसके बाद पद क्रमांक 11 पूर्ण पद है। इस स्कंध में श्रीराम जी से सम्बन्धित 55 पद हैं। पद क्रमांक 11 और 39 भक्त वत्सलता से सम्बन्धित पद हैं, यथाः– भगवान राम भक्त वत्सल हैं। वे जाति पांति पर ध्यान नहीं देते, और न उनके समक्ष धनवान या निर्धन का कुछ भेदभाव है। केवल जहां अहंकार है वहां भगवान नहीं रहते। वे भक्तों के हाथ में बिके हुए हैं। इनके गुण अपार हैं जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

राम भक्तवत्सल निज बानौ ।
जाति गोत कुल नाम गनत नहि रंक होइ कै रानौ।।
सिव ब्रह्मादिक कौन जाति प्रभु हौ अजान नहि जानौ।
हमता जहाँ तहाँ प्रभु नाही सो हमता क्यौ मानौ।।
प्रगट खंम तै दए दिखाई जद्यपि कुल कौ दानौ।
रघुकुल राघव कृस्न सदा ही गोकुल कीन्हौ थानौ।।
बरनि न जाइ भक्त की महिमा बारंबार बखानौ।
ध्रुव रजपूत हाथ बिकानौ।
राजसूय मै चरन पखारे स्याम लिए कर पानौ।।
रसना एक अनेक स्याम गुन कहँ लगि करौं बखानौ।
सूरदास प्रभु की महिमा अति साखी बेद पुरानौ।।[18]

भक्त–वत्सल होना राम का निजी स्वरूप है। जाति, गोत्र, कुल और नाम को गिनती में नहीं लाते, चाहे कोई रंक हो चाहे राजा। हे स्वामी। ब्रह्मा आदि और शिव किस जाति के हैं, यह मैं अज्ञानी नहीं जानता। अहंकार जहाँ है वहाँ प्रभु नहीं है; तब उस अहं को मैं क्यों मानू ? खम्बे से निकलकर दर्शन दिये जबकि प्रह्लाद दानव कुल के थे। राम ने रघुकुल को और कृष्ण रूप में सदा गोकुल को अपना स्थान बनाया। बार–बार वर्णन करता तो हूँ, पर भक्त का माहात्म्य वर्णित नहीं किया जा सकता। ध्रुव व क्षत्रिय थे, विदुर दासी–पुत्र थे, किन्तु प्रभु ने किसको (अपने से) अलग रखा युग–युग से भगवान् की यही यश चला आया है कि भक्तों के हाथ बिके हुए हैं। हाथ में पानी लेकर कृष्ण ने राजसूय में सबके पैर धोये। जिह्वा तो एक है, कृष्ण के गुण अनेक हैं, कहाँ तक वर्णन करूँ ? सूरदास जी कहते है कि प्रभु की महिमा बहुत है, वेद–पुराण इसके साक्षी हैं।

जिनके मन में राम का निवास है उस भक्त को क्या कमी हो सकती है? उसकी मनोकामना पूर्ण हो जाती है, और उसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारो फलों की प्राप्ति हो जाती है। राम रूपी धन खर्च करने पर भी समाप्त नहीं होता।

---

18. डॉ0 हरदेव बाहरी व राजेन्द्र प्रसाद, सूरसागर सटीक, भाग–1, 1991, पृ0 121

कहा कमी जाके राम धनी।
मनसा नाथ मनोरथ पूरन सुख निधान जाकी मौज धनी।।
अर्थ धर्म अरू काम मोक्ष फल चारि पदारथ देत गनी।
इन्द्र समान हैं जाके सेवक नर बपुरे की कहा गनी।।
कहा कृपिन की माया गनियै करत फिरत अपनी अपनी।
खाइ न सकै खरचि नहिं जानै ज्यौं भुवंग सिर रहत मनी।।
आनंद मगन राम गुन गावै दुख सँताप की काटि तनी।
सूर कहत जे भजत राम कौं तिनसौं हरि सदा बनी।।[19]

(जिसके) राम धनी हैं, उसके लिए कमी क्या है? वे मन के स्वामी, सारे मनोरथों को पूरा कर देने वाले हैं, सुख–विधान हैं, उनकी माया वे उदार हैं और चार पदार्थ–फल देते हैं–अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष। जिसके सेवक इन्द्र के समान हैं (उस प्रभु के लिए) बेचारे मनुष्य की गणना कहाँ? जो 'अपनी–अपनी' कहता घूमता है, उस कृपण की सम्पत्ति की गणना से क्या लाभ? जो खा नहीं सकता और खर्च करना नहीं जानता (वह वैसे ही है) जैसे सर्प के सिर पर मणि रहती है। दुःख और संतोष का तनी काटकर आनन्द–मग्न होकर राम का गुणगान करना चाहिए। सूरदास कहते है – जो राम का भजन करते हैं उनसे और हरि में सदा बनी रहती है।

तृष्णा विषयक पद क्रमांक 57 और 71 में सूरदास ने राम को न समझने के संदर्भ में कहा है कि मनुष्य कितना मूर्ख है, जो राम नाम आगे जपूँगा, यह कह कर बालपन, खेलकूद में तथा जवानी धन कमाने में बिता देता है। इस प्रकार बिना भगवान का नाम लिये, उसका अन्त समय आ जाता है।

मनुष्य, राम का नाम एक भी घड़ी नहीं लेता, यद्यपि उसे बड़े भाग्य से इस जन्म में मनुष्य का शरीर मिला है। वह काम, क्रोध, मद और लोभ तथा अहंकार में फँसा रहता है। बंधु–बांधव व कुटुम्बी जन सभी स्वार्थ के साथी हैं।

---

19. डॉ0 हरदेव बाहरी व राजेन्द्र प्रसाद, सूरसागर सटीक, भाग–1, 1991, पृ0 5

मर जाने के बाद वे शरीर को तुरन्त घर से बाहर निकाल देते हैं। उसे शमशान में, लकड़ी से दबाकर जला देते हैं, और जो कुछ धन जोड़कर रखा है, उसमें कुटुम्बीजन निकाल लेते हैं।।

नाम महिमा विषयक पद क्र0 90 और 92 में कहा गया है, कि रामनाम का अंक अद्‌भुत है। रामनाम की बड़ी महिमा है। हम निर्धन लोगों का, एक मात्र धन, तो राम नाम ही है। इसे चोर चुरा नहीं सकता। यह कभी कम नहीं होता और संकट में काम देता है। यह पानी में डूब नहीं सकता। आग में जलता नहीं। इस राम नाम की महिमा अनुपम है। इसके बाद भागवत अवतरण की कथा में पद क्रमांक 231 में "कह्यो सुक श्री भागवत विचार" की टेक पर एक पद है। इसमें भी राम नाम की महिमा गायी गयी है। पद 232 में रामनाम को पारस बताया गया है, जिसे छू लेने से, मानुष तन जैसी तुच्छ वस्तु भी, सोने की तरह श्रेष्ठ हो जाती है। पद 297 में राम नाम धन की महिमा का वर्णन है। पद क्रमांक 310, 311, 318 और 330 में सूरदास जी ने अपने मन को समझाया है, कि उसे रामनाम सुमरन करना चाहिए। सब बात का सार तत्व यही है।

कहते है आगैं जपिहैं राम।
बीचहिं भई और की औरे परचौ काल सौं काम।।
गरभ बास दस मास अधोमुख तहँ न भयो विश्राम।
बालापन खेलतहीं खोयौ जोबन दाम।।
अब तौ जरा निपट नियरानी करचौ न कछुवै काम।
सूरदास प्रभु कौं बिसरायौ बिना लिऐ हरि नाम।।[20]

कहते थे, आगे चलकर हम राम को जप लेंगे। किन्तु बीच में ही और का और हो गया, काल से काम पड़ गया। नीचे मुख किए हुए दस महीने गर्भ में रहना पड़ा, वहाँ विश्राम नहीं मिला। बालपन खेलते–खेलते और यौवन धन–संग्रह में खो दिया। अब तो वृद्धावस्था बिलकुल पास आ गई, कुछ काम

20. डॉ0 हरदेव बाहरी व राजेन्द्र प्रसाद, सूरसागर सटीक, भाग–1, 1991, पृ0 16

पूरा नहीं किया। सूरदास कहते हैं–तुमने अपने प्रभु को भुला दिया और (कभी) भगवान् का नाम नहीं लिया।

राम न सुमिरयौ एक घरी।
परम भाग सुक्रित के फल तैं सुंदर देह धरी।।
जिहिं जिहीं जोनि भ्रम्यौ संकट बस सोइ सोइ दुखनि भरी।
काम क्रोध मद लोभ गरब मैं बिसरयौ स्याम हरी।।
भैया बंध बुटुंब घनेरे तिनतैं कछु न सरी।
लै देही घर बाहर जारी सिर ठों की लकरी।।
मरती बेर सम्हारन लागे जो कछु गाड़ि धरी।
सूरदास तैं कछू सरी नहिं परी काल फँसरी।।[21]

एक घड़ी भी राम का स्मरण नहीं किया। अच्छे कर्म करने के फलस्वरूप बड़े भाग्य से तुने इस सुंदर शरीर को प्राप्त किया है। जिस–जिस योनि के संकट के कारण भ्रमित होता रहा वह–वह दुःखों से परिपूर्ण रही। काम, क्रोध, मोह तथा लोभ के कारण भगवान् कृष्ण को तू भूल गया। भाई, बंधु तथा कुटुम्ब परिवार बहुत हुए, उनसे कोई कार्य पूरा नहीं हो सका। (उन्होंने) तेरे शरीर को ले जाकर घर के बाहर जला दिया तथा उन्त में सिर पर लकड़ी, ठोंक कर कपाण क्रिया कर दी। जो कुछ गाड़–गाड़ कर रखा था उसे मरते समय सम्हालने लग गये। सूरदास करते हैं कि काल फाँस पड़ी और तुझसे कुछ भी नहीं हो पाया।

अद्भुत राम नाम के अंक।
धर्म अँकुर के पावन द्वै दल मुक्ति बधू ताटंक।।
मुनि मन हंस पच्छ जुग जाकै बल उड़ि ऊरध जात।
जनम मरन काटन कौ कर्तरि तीछन बहु बिख्यात।।
अंधकार अज्ञान हरन कौं रबि ससि जुगल प्रकास।
बासर निसि दोउ करैं प्रकासित महा कुमग अनयास।।
दुहूँ लोक सुखकरन हरनदुख बेद पुराननि साखि।
भक्ति ज्ञान के पंथ सूर ये प्रेम निरंतर भाखि।।[22]

---

21. डॉ0 हरदेव बाहरी व राजेन्द्र प्रसाद, सूरसागर सटीक, भाग–1, 1991, पृ0 23–24
22. डॉ0 हरदेव बाहरी व राजेन्द्र प्रसाद, सूरसागर सटीक, भाग–1, 1991, पृ0 29

राम नाम अक्षर अद्‌भुद हैं। वे धर्म रूपी अंकुर के दो पवित्र दल हैं और मुक्ति रूपी वधू के कुंडल हैं। मुनियों के मन रूप हंस के ये दो पंख है; जिनके बल से मुनिजन उड़कर उड़ जाते है। जन्म मरण के बन्धनों को काटने के लिए यह नीक्ष्ण कैंची प्रसिद्ध है। अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करने के लिए ये (दो अक्षर) सूर्य और चन्द्रमा के प्रकाश–युग्म है। इस संसार के कुमार्ग को रात दिन ये नाम अनायास प्रकाशित करते रहते हैं। ये दोनों लोकों (इहलाक और परलोक) के दुःख को दूर कर सुख प्रदान करते हैं– वेद–पुराण इस बात के साक्षी हैं। सूरदास कहते है, ये भक्ति एवं ज्ञान के पंथ है, अतः प्रेम से इनका निरन्तर उच्चारण किया करो।

हमारे निर्धन के धन राम।
चोर न लेत घटत नहिं कबहूँ आवत गाढैं काम।।
जल नहिं बूड़त अगिनि न दाहत है ऐसौ हरि नाम।
बैकुँठनाथ सकल सुख दाता सूरदास सुख धाम।।[23]

मुझ गरीब के राम ही धन हैं। इसे चोर नहीं चुराता, यह कभी घटता भी नहीं तथा मुश्किल के दिनों में काम आता है। यह जल में नहीं डूबता; इसे अग्नि नहीं जला सकती। इस प्रकार यह हरि नाम (अत्यन्त प्रभावशाली) है। सूरदास के सुख के आगार बैकुंठवासी भगवान् सभी सुखों को प्रदान करने वाले हैं।

कह्यौ सुक श्री भागवत बिचार।
जाति पाँति कोउ पूछत नाही श्रीपति कैं दरबार।।
श्रीभागवत सुनै जो हित करि तरै सो भव जल पार।
सूर सुमरि सो रटि निसि बासर राम नाम निज सार।।[24]

श्री भागवत को सुकदेव ने विचार कर कहा। भगवान् लक्ष्मीपति के दरबार में जाति–पाँति कोई नहीं पूछता, जो प्रेम से भागवत सुनता है वह संसार–सागर को पार कर पाता है। सूरदास कहते है कि राम नाम का रात दिन स्मरण करते और रटते रहो, वही अपना का सार है।

---

23. डॉ0 हरदेव बाहरी व राजेन्द्र प्रसाद, सूरसागर सटीक, भाग–1, 1991, पृ0 34
24. डॉ0 हरदेव बाहरी व राजेन्द्र प्रसाद, सूरसागर सटीक, भाग–1, 1991, पृ0 35

बड़ी है राम नाम की ओट।
सरन गएँ प्रभु काढ़ि देत नहिं, करत कृपा कैं कोट।।
बैठत सबै सभा हरि जू की कौन बड़ौ को छोट।
सूरदास पारस के परसैं मिटति लौह की खोट।।[25]

राम–राम का सहारा बहुत बड़ा है। शरण में आने पर प्रभु भक्त को निकालते नहीं हैं अपितु उसे कृपा के दुर्ग में सुरक्षित करते हैं। भगवान् की सभा में बिना छोटे–बड़े के भेद के सभी बैठते है। सूरदास कहते है कि पारस पत्थर के स्पर्श से लोहे का खोटापन दूर हो जाता है। (भगवान् के सम्पर्क से सबका उद्धार हो जाता है।)

राम नाम अपने की महिमा पद क्रमांक 351 में भी है। द्वितीय और षष्ठम स्कंध में राम विषयक तीन तीन पद हैं, दशम स्कन्ध में 28 और द्वादश स्कन्ध में 1 पद है। पूरे सूरसाागर में राम शब्द का उल्लेख अथवा रामकथा का कई प्रसंग, जैसे गिद्ध को तारना या शूप्रणखा की नाक काटना आदि के रूप में, मात्र किंचित उल्लेख की भी गणना की जावे तो स्फुट रूप से 90 पद मिलते हैं। इसमें पद क्रमांक 3410 और 3446 जैसे पदों की गणना नहीं की गयी है क्योंकि शब्द 'राम–राम' इसमें 'नमस्ते' के अर्थ में आया है। दशम स्कंध में पद क्रमांक 816 और 817 में माता यशोदा बालकृष्ण को सुलाते समय क्या कहती हैं जो पुरानी रामकथा है जिसमें सीताहरण तक का प्रसंग ही माता यशोदा कह पाती हैं, कि बालकष्ण 'लक्ष्मण धनुष दो तो कहकर उठ पड़ते हैं। ये दोनों पद चमत्कारिक है। इनका सम्बन्ध सूर की अभेदोपासना से है। पद 379 में अवतार वर्णन के सन्दर्भ में रामजी की चर्चा है। इसके अतिरिक्त सूरसागर के परिशिष्ट क्रमांक 1 और 2 के रामविषयक पदों पर विचार नहीं किया गया, क्योंकि उनका सूर रचित होना असंदिग्ध नहीं है।

---

25. डॉ0 हरदेव बाहरी व राजेन्द्र प्रसाद, सूरसागर सटीक, भाग–1, 1991, पृ0 91

सूरसागर और श्रीमद्भागवत की रामकथा में अन्तर

विद्वानों ने सूरदास रचित रामकाव्य का अध्ययन अभी तक गम्भीरता से नहीं किया है। डॉ0 दीनदयाल गुप्त ने कहा है कि "सूरदास द्वारा वर्णित रामचरित भागवत नवम स्कंध का अनुकरण है। यह कथन सही नहीं है। श्रीमद्भागवत की रामकथा सर्वथा इतिवृत्तात्मक है उसमें कोई भी मार्मिक प्रसंग नहीं है, जबकि सूरदास ने कई नवीन और मौलिक प्रसंगों की उद्भावना "सूरसागर" के रामकाव्य में की है। पदों की रचना बड़े मार्मिक ढंग से की गयी है।

जहाँ उन्होंने भागवत का किंचित अनुसरण किया है वहां 'सूर कह्यों भागवतानुसार' अथवा 'नृप सों ज्यों सुकदेव सुनायौ, सूरदास त्यों ही कहि गायौ' लिखा है।

डॉ0 माता प्रसाद गुप्त ने कहा है 'सूरदास सामान्यतः बल्लभ पुष्टि सम्प्रदाय के कहे जाते हैं, किन्तु उनमें हमें वह साम्प्रदायिकता बिल्कुल नहीं मिलती जो उस सम्प्रदाय के शेष सभी कवियों में मिलती है। सम्प्रदाय के और किसी प्रमुख भक्त ने रामचरित का गान नहीं किया है। आइये सूरसागर और श्रीमद्भागवत की रामकथा में अन्तर की दृष्टि से अनुशीलन करें।

बालकाण्ड

रामजन्म पर अयोध्या में जो उत्साह और हर्ष का वातावरण था, सूरदास ने उसका सजीव चित्रण तो किया ही है, परन्तु श्रीराम की बाल–लीला गाये उनका उनका मन नहीं माना। श्रीपद्भागवत में बालक राम के शर क्रीड़ा का चित्रण नहीं है। 'सूरसागर' में इस विषय पर दो पद हैं (पद क्रमांक 463, 464) रामचन्द्र धुनही लेकर खेलते हैं। लाल–लाल जूती पहने कनकमय आंगन में राम क्रीड़ा को देखकर माता कौशल्या तथा पिता दशरथ आनन्द विभोर हो रहे हैं।

राम अपने भाइयों सहित खेल रहे हैं, कटि में पीताम्बरी सिर में काक पच्छ सहित वे इतसे मनोहर दिखते हैं कि नारद, शिव इन्द्र सहित तैंतीस कोटि देवता उनकी क्रीड़ा देखने के लिए उपस्थित हो जाते हैं। सीता स्वयंवर देखने ऋषि विश्वामित्र के साथ जनकपुरी जाते समय मार्ग में गंगातट पर शिलावत् अहिल्या का उद्धार करने का प्रसंग भी सूरदास ने गाया है। यह प्रसंग भागवत में नहीं है। यह मार्मिक कल्पना भी भागवत में नहीं है, जिसे दो पदों में (पद क्रमांक 467 और 470) सूरदास ने मुग्ध भाव से रचा है। सीता, रामचन्द्र जी को देखकर मोहित हो जाती हैं, परन्तु रामचन्द्र की कोमलता तथा उनकी किशोर वय को देखकर वे विधि से निहोरा करती हैं कि यह शिव का विशाल कठोर तथा दींघ्र धनुष, यह कोमल राम कैसे उठायेंगे ? पिता ने ऐसा कठोर प्रण क्यों किया ? धनुष भंग का इस प्रकार वर्णन बड़ा सजीव है। राम विवाह में महाराज दशरथ का जनकपुर आना, कंकण मोचन का प्रसंग, तथा जनकजी का, दशरथजी को दहेज सहित, विदा करना आदि प्रसंग भी भागवत में नहीं है।

करतल सोभित बान धनुहियाँ।
खेलत फिरत करकमय आँगन पहिरे लाल पनहियाँ।।
दसरथ कौसिल्या कै आगै लसत सुतन की छहियाँ।
मानौ चारि हंस सरबर तैं बैठे आइ सदेहियाँ।।
रघुकुल कुमुद चंद चिंतामनि प्रगटे भूतल महियाँ।
आए ओप देन रघुकुल कौ आनँद निधि सब कहियाँ।।
सो सुख तीनि लोक मैं नाहीं जो पाए प्रभु पहियाँ।
सूरदास हरि बोलि भक्ति कौं निरबाहत गहि बहियाँ।।[26]

(बच्चो के) हाथ में (छोटे–छोटे) धनुष और बाण सुशोभित हो रहे हैं। व लाल रंग की जूतियाँ पहने हुए स्वर्णमय आँगन में खेलते फिरते हैं। दशरथ और कौशल्या के सामने प्रसन्नचित पुत्रों की छाँव इस प्रकार सुशोभित होती है मानों चार हंस सदेह सरोवर से आकर बैठ गए हों। रघुवंश रूपी कुमुदिनी के लिए चन्द्रमा के समान प्रिय श्री राम चिन्तामणि के रूप में पृथ्वी पर प्रकट हुए हैं। वे

26. डॉ0 हरदेव बाहरी व राजेन्द्र प्रसाद, सूरसागर सटीक, भाग–1, 1991, पृ0 91

रघुकुल को प्रकाश और सभी लोगों को आनन्द–निधि देने के लिए अवतरित हुए हैं। जो सुख इनके पास प्राप्त होता है वह सुख तीनों लोक मे अन्यत्र दुर्लभ है। सूरदास कहते हैं कि भगवान् भक्त को दिए अपने वचन का निर्वाह उसकी बाँह पकड़ कर करते है।

धनुहीं बान लए कर डोलत।
चारौं बीर संग इक सोभित बचन मनोहर बोलत।।
लछिमन भरत सत्रुहन सुन्दर राजिवलोचन राम।
अति सुकुमार परम पुरूषारथ मुक्ति धर्म धन धाम।।
कटितट पीत पिछौरी बाँधे काकपच्छ धरे सीस।
सर क्रिड़ा नित देखन आवत नारद सुर तैं तीस।।
सिव मन सकुच इंद्र मन आनँद सुख दुख बिधिहिं समान।
दिति दुर्बल अति अदिति ह्रष्टचित देखि सूर संधान।।[27]

चारों वीर बालक हाथ में (छोटे–छोटे) धनुष–बाण लिये हुए, तथा मनोहर वाणी बोलते हुए, एक साथ घूमते हुए सुशोभित हो रहे है। कमल के समान नेत्र वाले राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुह्न अत्यंत सुन्दर, सुकुमार, पुरूषार्थ तथा मुक्ति, धर्म अर्थ और धन के घर हैं। वे कमर में पीले रंग का फेंटा कसे हुए हैं तथा सिर पर कान तक बढ़े हुए बाल धारण किये हैं। उनके वाणों का खेल नित्य नारद और तैतीसों देवता देखने आते हैं। यह उनकी क्रिया को देखकर शंकर जी मन ही मन सकुचाते हैं, इन्द्र के मन में आनन्द उत्पन्न होता है, ब्रह्मा को सुख–दुःख समान रूप से मिलता है। सूर कहते है कि उनके धनुष पर चिल्ला चढ़े देखकर (दैत्यमाता) दिति दुर्बल हुई जाती है, अदिति (देवमाता) प्रसन्नचित होती है।

अयोध्याकाण्ड

अपनी वृद्धावस्था का ध्यानकर महराज दशरथ का मन भारी होना, राम को युवराज बनाने का उनका विचार, कैकेयी द्वारा इसी समय दो वर माँगना,

27. डॉ0 हरदेव बाहरी व राजेन्द्र प्रसाद, सूरसागर सटीक, भाग–1, 1991, पृ0 220

कैकेयी का राम को यह कहना कि संकोच के कारण महाराज दशरथ यह नहीं कह पा रहे हैं कि तुम्हें चौदह वर्ष के लिए वनवास और भरत को राजगद्दी देने का वर उन्होंने मुझे दिया है, सर्वथा मौलिक प्रसंग है। राम का कौशल्या माता से वन गमन हेतु आज्ञा लेना, कौशल्या का कातर हो उठना, दशरथ जी का राम के लिए विलाप राम का वन के कष्टों का वर्णन कर सीता को मायके में रहने की सलाह, लक्ष्मण को भी अयोध्या में रहने की सीख और लक्ष्मण का मौन होकर राम के चरणों में दीनता से लोटना, दशरथ जी का पश्चाताप, वर देने के सन्दर्भ में, यह 'सूरसागर' मे मार्मिक ढंग से वर्णित है और भागवत में इसका संकेत तक नहीं है।

महाराज दसरथ मन धारी।
अवधपुरी कौ राज राम दै लीजै ब्रत बनचारी।।
यह सुनि बोली नारि कैकेई अपनौ बचन सँभारौ।
चौदह बर्ष रहैं बन राघव छत्र भरत सिर धारौ।।
यह सुनि नृपति भयौ अति ब्याकुल कहत नहिं आई।
सूर रहे समुझाई बहुत पै कैकेई हठ नहिं जाई।।[28]

महाराज दशरथ ने मन में यह बात ठानी कि राम को अयोध्या का राज्य देकर वानप्रस्थ का व्रत लेना चाहिए। सुनकर रानी कैकेयी बोली–अपने वचनों को याद किजिए। राम को चौदह वर्ष का वनवास और भरत के सिर पर राज–छत्र रखिए। यह सुनकर महाराज अत्यन्त व्याकुल हो गए। उनसे कुछ भी कहते नहीं बना। सूरदास कहते हैं कि महाराज दशरथ अनेक प्रकार से समझाकर थक गए परन्तु कैकयी ने अपना हठ नहीं छोड़ा।

केवट प्रसंग का सूरदास ने तीन पदों (पद क्रमांक 484, 485, और 486) में बड़ा ही मनोवैज्ञानिक और मार्मिक चित्र खींचा है, यह भी श्रीमद्भागवत में नहीं हैं। केवट का यह कहना कि नेकैं ही जल थाह है, चलो तुम्हें बताऊँ" कितनी मौलिक कल्पना है और कितनी प्रभावी है कि बाद में तुलसीदास ने इसे

28. डॉ0 हरदेव बाहरी व राजेन्द्र प्रसाद, सूरसागर सटीक, भाग–1, 1991, पृ0 220

ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिखा है "यहि घाट ते थोरिक दूर अहे, कटिलों जल थाह देखाइहों जू"। सूरदास ने पुरबधुओं का सीता जी से प्रश्न करना, राम लक्ष्मण तुम्हारे कौन हैं और क्या लगते हैं, इस प्रकार की मनोवैज्ञानिक तथा सहज जिज्ञासा का भी बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है, जो भागवत में नहीं है। सीता का तिरछे नैनों के इशारे से राम को अपना पति बताना, बाद में तलसीदास ने ज्यों का त्यों वर्णित किया है।

राजा दशरथ का पुत्र वियोग में देह त्याग, कौशल्या विलाप और उनका इस राजनैतिक संकट की ओर इशारा कि अयोध्या में महाराज की मृत्यु के बाद कोई उत्तराधिकारी तत्काल उपस्थित नहीं है, इसलिए राम को रोका जावे, भरत का ननिहाल से लौटना, कैकेयी के प्रति भरत के कठोर बचन, भरत का चित्रकूट गमन, राम–भरत मिलन, राम का भरत को राजनैतिक शिक्षा देना, भरत का राम की पादुका लेकर अयोध्या वापस जाना, आदि कई प्रसंगों पर सूरदास ने पद रचे हैं, परन्तु भागवत में यह सब नहीं है।

अरण्य काण्ड

रघुपति कहि प्रिय नाम पुकारत।
हाथ धनुष लीन्हे कटि माथा चकित भए दिसि बिदिसि निहारत।।
निखरत सून भवन जड़ ह्वै रहे खिन लोटत धर बपु न सँभारत।
हा सीता कहि सियपति उमँगि नयन जल भरि भरि ढारत।।
लगत सेष उर बिलखि जगत गुरू अद्भुत गति नहिं परति बिचारत।
चिंतन चित्त सूर सीतापति मोह मेरु दुख टरत न टारत।।[29]

रघुनाथ प्रिया का नाम ले लेकर पुकार रहे हैं। हाथ में धनुष लिये और कमर में तरकश कसे, वे चकित होकर इधर–उधर देख रहे है।अपने भवन (कुटिया) को सूना पाकर जड़वत् हो गए। उसी क्षण पृथ्वी पर लोटने लगते हैं,

29. डॉ0 हरदेव बाहरी व राजेन्द्र प्रसाद, सूरसागर सटीक, भाग–1, 1991, पृ0 224

अपने शरीर को भी सँभाल नहीं पाते। सीता–पति राम, "हा सीता! हा सीता" कहकर आवेग से नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लगा देते हैं। वे जगद्गुरू बिलखते हुए लक्ष्मण के गले लग जाते हैं। उनकी यह विचित्र गति समझ में नहीं आती। सूरदास कहते हैं कि सीतापति मन में अत्यन्त चिन्ताकुल हैं। मेरू के समान (भारी) उनका मोहजन्य दुःख टालने से भी नहीं टल रहा।

सीता द्वारा वाटिका लगायी जाना, सीता का अग्नि में वास करना तथा माया रूप से कुटी में रहना, सीताहरण पर राम का विलाप करना तथा लता पादपों और पशु–पक्षियों से सीता जी के विषय में पूछना, जटायु का दाह संस्कार, सीता को रावण द्वारा अशोकवन में रखा जाना, राम का शबरी के जूठे बेर खाना, राम द्वारा शबरी की अन्तेष्टि कथा भी श्रीमद्भागवत में नहीं है।

किष्किन्धा काण्ड

रिष्यमूक परबत बिख्याता।
इक दिन अनुज सहित तहँ आए सीतापति रघुनाथा।।
कपि सुग्रीव बालि के भय तै बसत हुतौ तहँ आइ।
त्रास मानि तिहि पवनपुत्र कौ दीनौ तुरत पठाइ।।
को ये बीर फिरैं बनबिचरत किहिं कारन ह्याँ आए।
सूरज प्रभु के निकट कपि हाथ जोरि सिर नाए।।[30]

ऋष्यमूक नाम का पर्वत प्रसिद्ध है। एक दिन छोटे भाई (लक्ष्मण) के साथ सीतापति राम यहाँ पर आए। बालि से भयभीत कपि सुग्रीव वहाँ पर आकर रह रहा था। उसी भय से उसने तुरन्त हनुमान को यह पता लगाने भेजा कि वन में विचरण करने वाले ये वीर कौन हैं और किस प्रयोजन से यहाँ आये हैं ? सूरदास कहते हैं कि हनुमान ने प्रभु के पास पहुँच कर हाथ जोड़कर सिर झुकाया (प्रणाम किया)।

30. डॉ0 हरदेव बाहरी व राजेन्द्र प्रसाद, सूरसागर सटीक, भाग–1, 1991, पृ0 236

श्रीमद्–भागवत में बहुत ही चलताऊ ढंग से "सुग्रीव आदि बानरों से मित्रता करके बालि का बध किया" कहने के बाद "बानरों से अपनी प्राणप्रिया का पता लगवाकर" राम जी का समुद्र पहुँचना बताया गया है। महाकवि सूरदास ने, ऋष्यमूक पर्वत पर बालि–भय से निवास करने वाले सुग्रीव का दो बीरों को (राम–लक्ष्मण) देखना, हनुमान जी द्वारा इन दोनों के विषय में पता लगवाना, हनुमान जी का रामचन्द्र जी से मिलना तथा उनका परिचय प्राप्त करना, हनुमान राम'संवाद, बालिबध, सुग्रीव को राज्य देना, सीता शोध हेतु राम का कथन, सम्पाती वानर संवाद, सम्बन्धी अनेक पद रचे हैं।

सुन्दर काण्ड

तब अंगद यह बचन कह्यौ।
को तरि सिंधु सिया सुधि ल्यावे किहिं बल इतौ लह्यौ।।
इतनौ बचन स्त्रवन सुनि हरष्यौ हँसि बोल्यौ जमुवंत।
या दल मध्य प्रगट केसरि सुत जाहि नाम हनुमंत।।
वहै ल्याइहै सिध सुधि छिन मैं अरू अइहैं तुरंत।
उन प्रताप त्रिभुवन कौ पायौ वाके बलहिं न अंत।।
जौ मन करै एक बासर मैं छिन आवै छिन जाइ।
स्वर्ग पताल माहिं गम ताकौ कहियै कहा बनाइ।।
केतिक लंक उपारि बाम कर लै आवै उचकाइ।
पवन पुत्र बलवंत बज्त्र तनु कापै हटक्यौ जाइ।।
लियौ बुलाइ मुदित चित हूँकै कह्यौ तँबोलहि लेहू।
ल्यावहु जाइ जनक तनया सुधि रघुपति कौ सुख देहु।।
पौरि पौरि प्रति फिरौ बिलोकत गिरि कंदर बन गेहु।
समय बिचारि मुद्रिका दीजौ सुनौ मंत्र सुत एहु।।
लियौ तँबोल माथ धरि हनुमत कियौ चतुरगुन गात।
चढ़ि गिरि शिखर सब्द इक उचरयौ गगन उठ्यौ आघात।।
कंपत कमठ सेष बसुधा नभ रवि रथ भयौ उतपात।
मानौ पच्छ सुमेरहि लागे उड़्यौ अकासहि जात।।
चक्रित सकल परस्पर बानर बीच परी किलकार।
तहँ इक अदभुत देक्षि निसाचरी सुरसा मुख बिस्तार।।
पवन पुत्र मुख पैठिपधारे तहाँ लगी कछु बार।
सूरदास स्वामी प्रताप बल उतरयौ जलनिधि पार।।[31]

31. डॉ0 हरदेव बाहरी व राजेन्द्र प्रसाद, सूरसागर सटीक, भाग–1, 1991, पृ0 238

तब अंगद ने यह बात कही–समुद्र को लाँघ करके सीता जी की खबर कौन लायेगा? किसने इतनी शक्ति पायी है? इतनी बात कानों से सुनते ही जाम्बवंत हर्षित हुए और हँसकर बोले–''इस दल के बीच प्रत्यक्ष विद्यमान हैं केशरी–पुत्र जिका नाम हनुमान है; वे ही सीता का समाचार क्षण भर में लाकर तुरन्त लौट भी आवेंगे। उन्होंने तीनों लोकों का प्रताप पाया है और उनके बल का कोई अंत नहीं है। यदि व चाहें तो एक ही दिन में अनेको बार जल्दी–जल्दी आ–जा सकते है। अधिक बढ़कर क्या कहा जाय, स्वर्ग और पताल 'तक की उनकी गति है। कितनी ही लकां जैसी नगरियों को बाएँ हाथ से उखाड़ कर उठा ला सकते है। वे पवनकुमार बड़े बलवान् हैं, वज्त्रांगी हैं। उन्हें कौन कहीं रोक सकता है?'' (सुग्रीव ने) प्रसन्नचित उन्हें अपने पास बुलाकर कहा–'यह बीड़ा उठाओ और सीता जी की खोज खबर लाक श्रीराम जी को सुख प्रदान करो। हे तात प्रत्येक द्वार पर जाकर अच्छी तरह देख लेना; गिरि, गुफा, बन और गृहों में देख लेना। अवसर पाकर (सीता को) अँगूठी भी दे देना, मेरी यह सलाह सुन लो।' हनुमान ने बीड़ा उठाकर सिर पर रखा और अपने शरीर का चौगुना विस्तार किया।

पर्वत के शिखर पर चढ़कर एक हुँकार की। उसकी प्रतिध्वनि से आकाश निनादित हो उठा; कच्छप, शेष नाग, पृथ्वी और आकाश काँपने लगे, सूर्य का रथ भी हिलने–डुलने लगा। वे आकाश में इस प्रकार उड़ते जा रहे थे, मानों सुमेरू पर्वत के पंख लग गये हों। सब वानर आश्यर्यचकित हो आपस में किलकारी मारने लगे। वहाँ सुरसा नाम की अद्‌भुत राक्षसी देखी जिसने अपने मुख को फैला रखा था किन्तु पवनकुमार (अपने शरीर को छोटा करके) उसके मुख में घुस गए, फिर वहाँ से निकलते उन्हें कुछ देर लगी। वे सूरदास के स्वामी (श्रीराम) के प्रताप के बल से समुद्र पार कर गए।

अंगद का सलाह करना कि समुद्र को लांघकर सीता जी का पता कौन ला सकता है? जामवन्त का इस हेतु हनुमान को लंका को उपयुक्त बताना,

हनुमान जी के बल का विस्तार से वर्णन, अंगद का हनुमान को लंका में जाकर क्या–क्या कार्य करना है, यह समझाना, हनुमान के लंका प्रस्थान का दृश्य, लंका दुर्ग पहुँचकर नगर निरीक्षण, सीता का दर्शन न पाकर ब्याकुल होना, लंका के राक्षसों का कार्य कलाप, सीता को पहचानूँगा? इसका मनोवैज्ञानिक सोच, रावण के महल का भव्य वर्णन, अशोक वन में एक वृक्ष के नीचे एक दीन, हीन, मलीन महिला को राक्षसियों से घिरी बैठी देखकर उसका सीता होने का अनुमान, क्या वही जानकी हैं?

इस प्रकार की दुविधा की स्थिति में होने पर आकाशवाणी का होना, कि यही जानकी हैं, सीता का एक निशाचरी का समझाना कि वह रावण की पटरानी हो जावें, इस पर सीता का क्रोधित होना, निशाचरी–रावण संवाद, त्रिजटा–सीता संवाद, त्रिजटा द्वारा स्वप्न–वर्णन, सीता का बीती बातों का स्मरण कर विलाप, हनुमान का सीता के सामने प्रगट होना, सीता को परिचय देना, सीता–हनुमान संवाद, हनुमान द्वारा सीता को ढाढस बंधाना, यह सब अनेक–अनेक पदों में सूरदास ने गाया है, जबकि इन प्रसंगों का संकेत तक भागवत में नहीं है।

इसी प्रकार सीता द्वारा हनुमान के माध्यम से राम को संदेश देना, हनुमान द्वारा अशोक वन उजाड़ना तथा अनेक राक्षसों को मार डालना, हनुमान का नागपास में बंधना, रावण के समक्ष उनके दरबार मे लाया जाना, हनुमान–रावण संवाद, हनुमान द्वारा लंका दहन, हनुमान का यह सोचकर पछताना कि उनने बिना रामाज्ञा लंका क्यों जलाई? कहीं सीता तो नहीं जल गयीं? सीता द्वारा चूणामणि प्रदान, हनुमान का वापस रामशिविर में आना, हनुमान–राम संवाद इत्यादि एक प्रकार से पूरे सुन्दरकाण्ड का प्रसंग श्रीमद्भागवत में नहीं है।

लंका काण्ड

वै लखि आए राम रजा।
जल कै निकट आइ भए ठाढ़े दीसति बिमलन ध्वजा।।
सोवत कहा चेत रे रावन अब कत खात दगा।
कहाति मँदोदरि सुनु पिय रावन मेरी बात अगा।।
तृन दसननि लै मिलि दसकंधर कंठनि मेलि पगा।
सूरदास प्रभु आए दहपट होइ लंका।।[32]

(मंदोदरी कह रही है) वह देखो राजा राम आ गए हैं और समुद्र के किनारे खड़े हैं! उनकी श्वेत ध्वजा दिखाई पड़ रही है। अरे रावण सोते क्यों हो? सावधान हो जाओ। अब धोखा क्यों खाते हो ? हे दशानन! दाँतों तले तिनका दबाकर और गले में रस्सी (पगहा) बाँध कर आओ; उनसे मिल लो। प्यारे रावण, मेरी बात पहले सुनो क्योंकि सूर के रघुनाथ आ गए हैं और लंका चौपट हो जाएगी।

श्रीमद्भागवत में लंका काण्ड श्लोक क्रमांक 13 से 56 तक वर्णित है। इसमें 11 श्लोकों में राम–रावण युद्ध, 5 श्लोकों में रावण बध के बाद मंदोदरी आदि का रावण बध के बाद विलाप, 3 श्लोकों में विभीषण द्वारा रावण की अन्तेष्टि सीता दर्शन तथा विभीषण को लंका का राज्य देना और शेष 25 श्लोकों में राम का लंका से अयोध्या लौटना तथा राज्याभिषेक का वर्णन है। 'सूरसागर' मे निम्नलिखित प्रसंग अधिक हैं। हनुमान द्वारा पूरी लंका को नष्ट करने और रावण के संहार करने की बात करना, विभीषण का रावण को समझाना तथा रावण द्वारा अपमानित होने पर राम की शरण में आना, राम प्रतिज्ञा, रावण–मन्दोदरी संवाद, (पद क्रमांक 558 से 564 तक 569 से 571 तक तथा 583 और 584) अंगद का रामदूत होकर लंका जाना रावण का बड़े कूटनीति ढंग से अंगद को यह कहना कि राम ने तुम्हारे पिता बालि का बध किया है इसका बदला तुम राम से लो और मैं स्वयं तुम्हारी तरफ से लड़ूँगा,

---

32. डॉ0 हरदेव बाहरी व राजेन्द्र प्रसाद, सूरसागर सटीक, भाग–1, 1991, पृ0 240

अंगद–रावण संवाद, लक्ष्मण द्वारा युद्ध, कुम्भकर्ण, रावण संवाद, लक्ष्मण जी को शक्ति लगना तथा मूर्छित हो जाना, राम का विलाप, हनुमान का राम को समझाना, संजीवनी बूटी के लिए हनुमान का जाना, द्रोणगिरि पर्वत सहित हनुमान की वापसी के बीच में भरत का बाण उन्हें लगना और उनका अयोध्या में उतारना तथा हनुमान भरत संवाद। सूरदास ने यहाँ एक बड़ा मौलिक कथोपकथन कौशल्या और सुमित्रा जी के बीच कराया है। लक्ष्मण को शक्ति लगने के समाचार से दोनों माताएँ अधीर होकर विलाप करती हैं इसके बाद सुमित्रा कौशल्या से कहती है कि आप धन्य हैं जो आपने राम जैसे पुत्र को जन्म दिया, यदि लक्ष्मण राम के लिए काम आ गये तो भी मै सपूती ही कहलाऊँगी। कौशल्या जी हनुमान से कहती हैं कि राम से कहना कि बिना लक्ष्मण के वे अयोध्या न आवें और लक्ष्मण के लिए न्योछावर हो जावें। सुमित्रा जी कहती है कि सेवक के युद्ध में खेत रहने पर भी स्वामी तो घर आते हैं। यह प्रथा है। कितनी मौलिक कल्पना है।

इसके बाद भरत के वाण में बैठकर हनुमान का द्रोणागिरि को लेकर रामशिविर में आना, संजीवनी द्वारा लक्ष्मण–मूर्छा का दूर होना, यह सब प्रसंग श्रीमद्भागवत में नहीं है।

उत्तर काण्ड

अति सुख कौसिल्या उठि धाई।
उदित बदन मन मुदित सदन तै आरति साजि सुमित्रा ल्याई।।
जनु सुरभी बन बसति बच्छ बिनु परबस पसुपति की बहराई।
चली साँझ समुहाइ स्त्रवत थन उमगि मिलन जननी दोउ आई।।
दधि फल दूब कनक कोपर भरि साजत सौंज बिचित्र बनाई।
अमी बचन सुनि होत कुलाहल देवनि दिवि दु दुभी बजाई।।
वरन बरन पट परत पाँवड़े बीथिनि सकल सुगंध सिंचाई।
पुलकित रोम हरष गदगद स्वर जुबतिनि मंगल गाथा गाई।।
निज मंदिर मैं आनि तिलक दै द्विज गन मुदित असीस सुनाई।
सिया सहित सुख बसा इहाँ तुम सूरदास नित उठि बलि जाई।।[33]

33. डॉ0 हरदेव बाहरी व राजेन्द्र प्रसाद, सूरसागर सटीक, भाग–1, 1991, पृ0 262

कौशल्या अति हर्षपूर्वक उठकर दौड़ पड़ी। माता प्रफुल्लमुख एवं प्रसन्नचित भवन से आरती सजाकर ले आई। दोनों माताएँ उत्साहपूर्वक उसी प्रकार से मिलने आई जैंसे परवाह गायें अपने स्वामी के द्वारा बाहर निकाली गई, बछड़ों के बीना, वन में रहती हैं लेकिन संध्याकाल थनों से दूध अपकाती सामने आ जाती हैं। दही, फल, दूध आदि स्वर्ण के पात्रों में रखकर तरह–तरह की सामग्रियां सजा रही थी। (राम के) अमृत–वचन सुनकर कोलाहल मच गया। स्वर्ग में देवताओं ने दुन्दुभी बजाई। सभी गलियों में सुवासित जल छिड़का गया और मार्ग में रंग–बिरंगे पाँवड़े बिछाए गए। रोम–रोम में पुलकित होकर, हर्ष से गद्‌गद स्वर मे युवतियों ने मंगलगान किया। अपने भवन में लाकर, श्रीराम को तिलक लगा कर, विप्र–वर्ग ने प्रसन्न होकर आर्शीवाद दिया कि आप जानकी जी के साथ सुखपूर्वक रहें। सूरदास नित्य उठ कर आप पर बलिहारी जाता है।

श्रीमद्‌भागवत में उत्तर काण्ड की कथा नवम् स्कंध के ग्यारहवें अध्याय में विस्तार से 36 श्लोकों में वर्णित है। इसमें राम का वशिष्ठ को आचार्य बनाकर यज्ञ करना, सर्व भू–मण्डल का ब्राह्मणों को दान, ब्राह्मणों को दान, ब्राह्मणों द्वारा राम की भूमि वापस, प्रजा की स्थिति जानने के लिए राम का रात्रि में राज्य में घूमना, धोबी द्वारा सीता पर दोषारोपण, सीता निर्वासन, वाल्मीकि आश्रम में लव–कुश का जन्म, सीता का धरती में प्रवेश, परीक्षित की जिज्ञासा कि राम अपने भाइयों के साथ कैसा व्यवहार करते थे, राम की प्रजावत्सलता, राम का देह त्याग, इत्यादि कथा कही गयी है।

सूरदास को सम्भवतः इनमें से बहुत से प्रसंग अप्रिय या निरर्थक लगे, इसलिए उन्होंने मात्र यह गाया है कि माता कौशल्या आदि को राम के लौटने के समय अयोध्या में शकुन होते हैं। काग को देखकर उसकी चोंच सोने से मढने की बात कौशल्या करती हैं। राम का जन्मभूमि प्रेम, अयोध्या में राम के आगमन पर सजावट तथा रामदर्शन के लिए नगर का उमड़ पड़ना और अन्त में राजकार्य में व्यस्त राम की कल्पना, जिनके सम्मुख सूरदास अपनी विनय

पत्रिका प्रस्तुत करना चाहते हैं, का प्रसंग मात्र ही सूर ने अपने रामकाव्य में उपस्थित किया है।

इस प्रकार बिल्कुल स्पष्ट है कि सूरसागर का रामकाव्य, श्रीमद्भागवत का अनुकरण कदापि नहीं है अपितु अनेक मौलिक प्रसंगों की सूरदास न कल्पना की है, जिसका अनुकरण पारवर्ती रामकथाओं में किया गया है।

अध्याय-4

सूर के काव्य में प्रबन्धन

सूरदास काव्य की प्रासंगिकता

सूर के योगदान के संदर्भ में अनेक उपलब्धियां हैं। कहीं वे वात्सल्य के मर्मज्ञ हैं, कहीं श्रृंगार के चतुर चितेरे, कहीं भक्ति–मार्ग पर चलने वाले अतिविनयी पथिक, कहीं सख्य–भाव के कुशल चित्रकार। इसी तरह के न जाने कितने क्षेत्र हैं जहाँ सूर की विलक्षण काव्य–प्रतिभा और वैशिष्टय के दर्शन होते हैं। सूर–काव्य का कथ्य और शिल्प दोनों ही हिन्दी साहित्य ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि है इसमें कोई संदेह नहीं हैं।

"महाकवि" का विशेषण जो वर्षो से कवि सूरदास के नाम के साथ जुड़ता चला आ रहा है, उसके पीछे एक गहन अर्थ छिपा हुआ है, वह यह कि सूर काल, देश और अवधि की सीमायें लाँघकर आज भी जीवित हैं, प्रेरणा के स्रोत हैं और उनके काव्य की असधारणतया आज भी अक्षुण्ण हैं।

"सूर" के संदर्भ में दृष्टव्य यह भी है कि इतनी शताब्दियों के अन्तराल के बाद आज की बढती वैज्ञानिकता, भौतिक–साधनों और सुविधाओं की अति विस्तृति के बीच उनका साहित्य अपनी सार्थकता को प्रमाणित करता चला आ रहा है।

भक्ति–काव्य के परिप्रेक्ष्य में सर–काव्य का वैशिष्ट्य यह है कि उनका आराध्य लोक–जीवन का प्रतिनिधि है। राजा–महराजाओं की दिनचर्या और राजमहलों की जीवन– पद्धति में सूर का आराध्य अपना जीवन नहीं जीता, वह प्रकृति से शक्ति सँजोता है, और प्रकृति के खुले प्राँगण में ही उसकी कीड़ाए संम्पन्न होती हैं।

हिन्दी साहित्य का भक्ति–काव्य स्वयं में एक आन्दोलन था, आन्दोलन इस अर्थ में कि उस युग की परिस्थितिजन्य जो समस्याएं थीं, अथवा जो चुनौतियाँ जन जीवन के सामने थीं, उनका समाधान और उत्तर भक्ति–काव्य ने

दिया। यदि एक ओर तुलसी ने "मानस" के द्वारा ऐसे अनूठे चरित्रों को जन–जीवन के समक्ष रखा जो उनके विषमता–पूर्ण जीवन के लिए प्रकाश–स्तम्भ के समान थे, तो दूसरी ओर "सूर" ने एक ऐसे चंचल, सुन्दर, जीवन्त, आकर्षक और अबोध बालक के गतिशील चित्र दिए जिसमें जीवन के सम्पूर्ण प्रस्फुटन की संभावनाए थी।

सूर काव्य का कृष्ण एक ऐसा बालक है जिसकी दिनचर्या गाँव के बच्चों जैसी हैं और मनोवैज्ञानिक धरातल पर वह हर साधारण बालक जैसा है। कहीं वह मिट्टी खाता है, कहीं माखन–चोरी करता है, कहीं माँ की डाट खाता है, कहीं माँकी क्षमा–शीलता का पात्र बनता है।

इसके अतिरिक्त सूर के काव्य में मातृ–हृदय के जो भाव–पूर्ण चित्र हैं, वे केवल यशोदा के ही चित्र नहीं हैं वरन् किसी भी माँ के हृदय की सूक्ष्म भावनाओं के चित्र हैं। मातृ हृदय का यह सहज अंकन और शैशव की ये मनोहारी छबियाँ क्या कभी अप्रासगिक हो सकती हैं? क्या विज्ञान शिशु क्रेड़ाओं को किन्हीं नियमों, सिद्धान्तों या "फार्मूलों" के द्वारा नियन्त्रित कर सकता है? क्या मातृ–हृदय की वेविष्यमयी भावनाए और आकांक्षाए भौतिक–अभिवृद्धि के वातावरण में लुप्त होकर अप्रासंगिक हो सकती हैं? क्या बच्चों की सहज क्रीड़ाएं देखकर एवं साधारण मानव–मन की आकर्षित होने की स्वाभाविकता की कोई राजनीतिक हलचल बदल सकती है ?

सूर द्वारा चित्रित बालक कृष्ण की चेष्टाएँ और क्रीड़ाएं तथा माँ यशोदा की विविध भंगिमाएं–जो निश्चय ही कभी अप्रासंगिक नहीं हो सकती, निम्नलिखित कुछ पदों में उदाहरणार्थ अंकित हैं –

"मोहन कांहे न उगिलौ माटी
बार बार अनरूचि उपजावति, महरि हाथ लिए साँटी।"[1]

1. *डॉ0 सरला शुक्ला एवं कृष्ण चन्द्र अग्रवाल, महाकवि सूरदास, प्रथम संस्करणः 1985, पृ0 77*

"मो देखत जसुमति तेरै ढोटा, अबहीं माटी खाई।
यह सुनि कै रिस करि उठि धाई, बाँह पकरि लै आई।।
ठक कर सौं भुज गहि गाढ़ै करि, इक कर लीन्हों साँटी।
मरति हों तोहि अबिंह कन्हैया, बेगि न उगिलै माटी।।"[2]

"स्याम कहा चाहत से डोलत ?
पूछे तैं तुम बदन दुरावत, सूधे बोल न बोलत।
पाए आइ अकेले धर मैं दधि भाजन में हाथ।
अब तुम काकी नाँउ ले लेउगे माहिं न कोऊ साथ।
मैं जान्यों यह घर मेरी है, ता धीखे मै आयौ।
देखत हों गोरस मैं चींटी, काढ़न को कर नायौ।
सुनि मृदु वचन, निरखि मुख–सोभा, ग्वालिनि मुसुकानी।
"सूर" स्याम तुम ही अति नागर बात तिहारो जानी।"[3]

"अब ये झूठहु बोलत लोग
पाँच बरष अरू कछुक दिननि कौ, कब भयौ चोरी जोग।
"कैसे करि याकी भुज पहुँची, कौन वेग ह्याँ आयौ ?"
'ऊखल ऊपर आनि, पीठि दै, तापर सखा चढ़ायौ।"
जौ न पत्याहु चलौ सँग जसुमति दखौ नैन निहारि।
सूरदास नैकुं न बरजौ, मन में महरि बिचारि।[4]

मेरो गोपाल तनक सौ, कहा करि जानै दधि की चोरी।
हाथ नचावत आवति ग्वारिनि जीभ करै किन थोरी।
कब सीकैं चढ़ि माखन खायौ, कब दधि–मटुकी फोरी ?
अँगुरी करि कंबहूँ नही चाखत, घर ही भरी कमोरी।।"[5]

"मेरे लाड़िले हो ! तुम जाउ न कहूँ।
तेरे ही काजैं गोपाल, सुनहु लाड़िले लाल, राखे हैं भाजन भरि सुरस छहूँ।
काहै को पराऐं जाइ, करत इसे उपाइ, दुध–दही–घृत अरू माखन तहूँ।
करति कछू न कानि, बकति है कटु बानि, निपट निलज बैन बिनखि सहूँ।"[6]

2. *डॉ0 सरला शुक्ला एवं कृष्ण चन्द्र अग्रवाल, महाकवि सूरदास, प्रथम संस्करणः 1985, पृ0 77*
3. *डॉ0 सरला शुक्ला एवं कृष्ण चन्द्र अग्रवाल, महाकवि सूरदास, प्रथम संस्करणः 1985, पृ0 77*
4. *डॉ0 सरला शुक्ला एवं कृष्ण चन्द्र अग्रवाल, महाकवि सूरदास, प्रथम संस्करणः 1985, पृ0 78*
5. *डॉ0 सरला शुक्ला एवं कृष्ण चन्द्र अग्रवाल, महाकवि सूरदास, प्रथम संस्करणः 1985, पृ0 78*
6. *डॉ0 सरला शुक्ला एवं कृष्ण चन्द्र अग्रवाल, महाकवि सूरदास, प्रथम संस्करणः 1985, पृ0 78*

"भारतीय इतिहास मे भक्ति आंदोलन एक महत्वपूर्ण घटना है। देश की सांस्कृतिक और भावात्मक एकता में इस आन्दोलन का अप्रतिम योगदान हैं। इसी के फलस्वरूप भारत की अनेक प्रतिभाओं ने भक्ति–भावना से प्रभावित होकर जिस साहित्य की सजना की, वह सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् का साहित्य हैं सदा ही नवीन और चिरंतन हैं। इन साधकों में सूरदास जी अग्रणी कहे जा सकते हैं क्योंकि उनका काव्य विशुद्ध भाव–साधना का काव्य है। उनकी कविता सर्वथा भक्ति को समप्रित हैं।"

कृष्ण के अनन्य भक्त होने के बावजूद, सूर में कहीं धर्म की कट्टरता का लेश–मात्र भी नहीं है। अपने विनय के पदों में सूर ने अनेक स्थलों पर राम के नाम और महिमा का वर्णन किया है। उदाहरणार्थ–

"कहा कभी जाके राम धनी।[7]

आँगन–मगन राम–गुन गावै, दुख–संताप की काटि तनी।
सूर कहत जे भजन राम कौं, तिन सौं हरि सौं सदा बनी।।"[8]

"कहत है आगै जपिहैं राम।"[9]
"अद्‌भुत राम नाम के अंक।
धर्म–अंकुर के पावन है दल, मुक्ति–वधु–तांटक।"[10]

"हमारे निर्धन के धन राम।
चोर न लेत, घटत नहिं, आवत गाढै काम।"[11]

"बड़ो है राम नाम की ओट।
रसन गए प्रभु काढ़ि देत नहिं, करत कृपा कैं कोट।"[12]

---

7. *डॉ0 सरला शुक्ला एवं कृष्ण चन्द्र अग्रवाल, महाकवि सूरदास, प्रथम संस्करणः 1985, पृ0 79*
8. *डॉ0 सरला शुक्ला एवं कृष्ण चन्द्र अग्रवाल, महाकवि सूरदास, प्रथम संस्करणः 1985, पृ0 79*
9. *डॉ0 सरला शुक्ला एवं कृष्ण चन्द्र अग्रवाल, महाकवि सूरदास, प्रथम संस्करणः 1985, पृ0 79*
10. *डॉ0 हरदेव बाहरी व डॉ0 राज कुमार, संस्करण संशोधित 1991: सूरदास सटीक, पद सं0–90 पृ0 34*
11. *डॉ0 हरदेव बाहरी व डॉ0 राज कुमार, संस्करण संशोधित 1991: सूरदास सटीक, पद सं0–91 पृ0 35*
12. *डॉ0 हरदेव बाहरी व डॉ0 राज कुमार, संस्करण संशोधित 1991: सूरदास सटीक, पद सं0–232 पृ0 91*

सूरकाव्य का यह पक्ष हमारी आज की भी राष्ट्रीय समस्याओं का उत्तर है। आज भी राष्ट्र में जब धार्मिक दंगे और साम्प्रदायिक दंगों की अग्नि भभकती है, तब उसका समाधान केवल धार्मिक सहिष्णुता में ही खोजा जा सकता है। न केवल राम–नाम का यह उल्लेख वरन् राम–कथा पर लिखे सूर के लगभग 155 पद इस बात के प्रमाण हैं कि सूर के भक्ति–पथ में इष्ट के प्रति अनन्य समर्पण तो हैं परन्तु दूसरी ओर ऐसी उदारता भी है जिसमें वे अन्य भक्तों के इष्ट देवों को भी आदर श्रद्धा और नमन अप्रित करते है। राम–भक्ति के पदों की संरचना और भाव–तत्व की अभिव्यक्ति को देख कर यह कतई नहीं लगता कि ये पद केवल औपचारिक विनम्रता के प्रदर्शन हेतु लिखे गए हैं। फिर नवम् स्कंध में अन्य अवतारों का उल्लेख करने के बाद रामावतार का वर्णन है, फिर बालकाण्ड से लेकर लंका–काण्ड तक की महतवपूर्ण घटानाओं और मर्मस्पर्शी प्रसंगों को सूर ने अभिव्यक्ति दी हैं। राम का अयोध्या लौटना और भरत द्वारा राम को मणिमय आसन पर बिठाना यह प्रसंग इस कथा का अन्तिम अंश हैं। आचार्य शुक्ल ने महाकाव्य की एक महत्वपूर्ण कसौटी दी हैं कि वह कवि मर्मस्पर्शी स्थलों की सही पहचान कर सका है या नहीं। सूर के इन रामकथा प्रसंगों में मुक्तक की गरिमा तो है ही, साथ ही महाकाव्य प्रणेताओं के इस वैशिष्ट्य को भी उन्होंने साकार किया है। रामकथा के मर्मस्पर्शी स्थलों पर साहित्य मर्मज्ञों ने बहुत कुछ कहा है, और तुलसी के काव्य की इस असाधारण उपलब्धि को भी बार–बार विवेचित किया है। यहाँ यह कहना अप्रासगिक न होगा कि सूर के इस रामकाव्य में भी यह वैशिष्ट्य दिखाई देता हैं।

राष्ट्र–प्रेम और राष्ट्रीयता भारत जैसे देश की अस्तित्व–रक्षा और विकास की एक आवश्यकता सदैव से रही हैं, क्योंकि इस देश ने विदेशी आक्रान्ताओं की स्वार्थ–पूर्ण चक्र भृकुटियों के आंतक को सदैव से देखा है। स्वदेश–प्रेम की यह भावना मध्ययुगीन परिवेश में भी आवश्यक थी, स्वातन्त्रय आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में भी और आज भी यह स्वदेश प्रेम उतना ही वरेण्य हैं। तुलसी के

राम की भाँति सूर के राम भी अयोध्या लौटते समय अपने सखाओं को बड़े उल्लास, उत्साह और उमंग के साथ अपनी जन्मभूमि दिखाते हैं, राम कहते हैंः–

"हमारौ जन्मभूमि यह गाँउ।
सुनहु सखा सुग्रीव–विभीषण, अवनि अयोध्या नाउँ।
देखत वन–उपवन–सरिता–सर, परम मनोहर ठाउँ।
अपनी प्रकृति लिए बोलन हौ, सुरपुर में न रहाउँ।
ह्याँ के वासी अवलोकन हौ, आनन्द उर न समाउँ।
सूरदास जो विधि न सकोचै, तो बैकुंठ न जाउँ।[13]

इस पद में "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरोयसी" का आदर्श मुखरित हुआ है। देश प्रेम का यह आदर्श आज भी प्रासंगिक और अर्थपूर्ण हैं। किसी भी देश के नागरिक के लिए और भारत के नागरिक के लिए तो यह आदर्श अर्थपूर्ण है ही।

भावनाओं के इस कुशल चितेरे ने राष्ट्रीय लक्ष्यों और आदर्श समाज की परिकल्पनाओं को अनेक स्थलों में अभिव्यक्त किया है। सूर की दृष्टि में जो आदर्श समाज है, उसमें विषमता एक बाधा के समान है। कृष्ण के सखा जब आपस में खेलते हैं, तब उस अवसर पर कृष्ण के बाल सखाओं द्वारा की गई अभिव्यक्ति–

"जाति पाँति हमतै बड़ नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैयाँ।
टति अधिकार जनावत यातै, जातै अधिक तुम्हारे है गैया।।[14]

इस तथ्य का द्योतक है कि समाज में जीवन को सही तरह जीने के लिए समानता का आदर्श तो होना ही चाहिए।

---

13. डॉ0 सरला शुक्ला एवं कृष्ण चन्द्र अग्रवाल, महाकवि सूरदास, प्रथम संस्करणः 1985, पृ0 80

14. डॉ0 सरला शुक्ला एवं कृष्ण चन्द्र अग्रवाल, महाकवि सूरदास, प्रथम संस्करणः 1985, पृ0 81

सूर ने वस्तुतः एक छोटे से गाँव की स्थानीय संस्कृति को लेकर इतने बड़े पैमाने पर चित्रित कर दिया है कि उनका कृष्ण–काव्य सार्वभौमिक और सार्वकालिक रूप में ग्राह्य हुआ है। एक छोटे से गांव का लड़का मानव–जीवन के शाश्वत मूल्यों और शाश्वत सत्यों को प्रतिष्ठित करता हुआ प्राकृतिक जीवन जीता है। उस बालक और उसके परिवेश में न आडंबर है, न छल, न ऊचे–ऊँचे आदर्शो की दुहाई। यही कारण है कि सूर का काव्य अनेकानेक प्रसंगो में उतना ही प्रासंगिक है, जितना अपनी सर्जना के समय था।

वात्सल्य

सूर के पूर्व भी वात्सल्य रस के कवि हुए और उनके पश्चात् भी। पर, इस समस्त परम्परा में सूर का स्थान अन्यतम है। भारतीय साहित्य में ही नहीं, सूर के वात्सल्य का विश्व–साहित्य में भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह मात्र भावुकता और पक्षपात नहीं यथार्थ है। सूर से पूर्व संस्कृत के कवियों ने भी वात्सल्य वर्णन किया है। आदि कवि वाल्मीकि ने भी इसका स्पर्श किया है, पर उनका वात्सल्य वर्णन एकाग्डी हैः केवल वियोग वात्सल्य को ही उन्होंने उभारा है। वस्तुतः वाल्मीकि करूण के कवि हैं। इससे वात्सल्य भी स्नात है। महाभारत में भी यत्र–तत्र वात्सल्य के चिन्ह हैं। पर यहाँ पुत्र–कामना,[15] पुत्र–सुख[16] का ही अधिक वर्णन हुआ है। सत्यवती अपने चिरवियुक्त पुत्र व्यास को स्तन्य से स्नात कर देती है।[17] पर, इस प्रकार के शुद्ध वात्सल्य के चित्र अति विरल हैं। श्रीमद्भागवत में भक्ति–मिश्रित वात्सल्य रस का स्रोत अजस्र है।[18] यहाँ पुत्र जन्मोत्सव, बालक्रीड़ा, बालस्वभाव, मातृ–मनोभाव आदि के सुन्दर चित्र मिलते हैं।

---

15. पुत्र कामना, महाभारत, आदिपर्व, 119/15–17; शर्मिष्ठा की पुत्र कामना, वही, 82/8–9

16. शकुन्तलो पाख्यान, आदिपर्व, 74/53–54

17. आदिपर्व, 104/25–26

18. दसस्कन्ध अध्याय 5–28, बाललीला का वर्णन

वात्सल्य के संयोग और वियोग दोनों ही पक्ष कवि–कल्पना से सजीव हुए हैं। पर भागवतकार आलम्बन के अलौकिकत्व को याद करता रहता है। बाणभट्ट ने हर्ष के प्रति प्रभाकरवर्धन के वात्सल्य की संक्षिप्त पर मार्मिक अभिव्यक्ति की है।[19] कादम्बरी में अनेकत्र वात्सल्याभि–कालिदास के प्रायः सभी ग्रन्थों में वात्सल्य–प्रेम का प्रदर्शन मिलता है। रघुवंश में दिलीप के रघु के प्रति वात्सल्य के और रघु की शिशुक्रीड़ा के महत्त्वपूर्ण स्थल हैं। सूर के वात्सल्य वर्णन में जो सर्वांगीणता और मार्मिकता है, वह सारी परम्परा में नहीं मिलती। इसका एक यह भी कारण हो सकता है कि सारी परम्परा मे प्रबन्धगत वात्सल्य ही मिलता है। वात्सल्य की अनुभूतियों को गीतों के रूप में अभिव्यक्ति नहीं मिली। वास्तव में सूर ने वात्सल्य को रस–दशा तक पहुँचाया। सूर को वात्सल्य सम्राट कहना अत्युक्ति नहीं है। अन्य अष्टछापी कवियों और तुलसी ने भी वात्सल्य पर लिखा, पर सूर की कोटि सर्वोच्च ही बनी रही।

वात्सल्य : तत्व निरूपण

कवि कर्णपूर गोस्वामी के अनुसार इस रस का स्थायीभाव ममता है। मन्दारमरन्दचम्पूकार ने करूणा को वात्सल्य का स्थायी माना है। इसका स्थायी भाव वत्सलता ही मानी जानी चाहिये। आश्रय ये हो सकते हैः माता–पिता, गुरूजन, ररिजन आदि। आलम्बन पुत्र, पुत्री, शिशु तथा अन्य अनुकम्पेय। उद्दीपन में शिशु के गुण, चेष्टा तथा प्रसाधन आते है। प्राकृतिक उद्ददीपनों मं वे सभी वातावरण आ जाते हैं जिनमें बच्चे के प्रति प्यार बढ़ता है। आलिंगन, स्पर्श, चुम्बन, सस्नेह देखना, पुलक, आनन्दाश्रु आदि अनुभाव हैं। आठ सात्त्विक भावों के अतिरिक्त नवाँ सात्त्विक भाव स्तनस्राव भी माना गया हैं। आशंका, हर्ष, गर्व, आवेग, पुलक, स्मृति, विस्मय आदि सच्चारी हैं।

---

19. हर्षचरित 5/99

वात्सल्य के मुख्य दो भेद माने जा सकते है, वत्सल भक्तिरह तथा सामान्य वात्सल्य रस। इसका संबन्ध रति से भी कुछ विद्वानों ने जोड़ा है। भक्तिरस से तो इसका संबन्ध है ही। प्रेम कारूण्य, आकांक्षा, वीर और हास्य का मेल भी इससे होता है।

मनोविज्ञान की दृष्टि से पुत्रैषणा या शिशु–रक्षा मनुष्य की मूलप्रवृत्तियों में आती है। इस मूलवृत्ति को मनोवैज्ञानिकों ने महत्त्वपूर्ण ओर शक्तिशाली माना है। इसके मूल में किसी ने मानवमन का परोपकारी भाव माना है।

कुछ ने शिशु के साहचर्य से आत्यन्तिक आनन्द की पुनरावृत्ति को इसके महत्व का कारण माना है। वृद्धावस्था में अपत्य द्वारा की जाने वाली सेवा की कल्पना को ही कुछ मनः शास्त्री मुख्य स्थान देते हैं। वास्तव में अपत्य की अभिलाषा प्रत्येक दम्पत्ति को होती है। आजीवन अविवाहित पुरूष–स्त्रियों में भी यह भाव देखा जा सकता है। मानवेतर प्राणियों में भी इसकी स्थिति देखी जा सकती है।

वात्सल्य भाव हमको एक अमायिक आनन्द प्रदान करता है। क्योंकि इसमें स्वार्थ या बदले की भावना की गंध नहीं होती। इससे आनन्द प्राप्त होने का एक और कारण है। अपनी संतान में मनुष्य अपनी आत्मा का विस्तार देखता है। इसी से 'आत्मा वै जायतेपुत्रः' कहा गया है। मनुष्य अपने अस्तित्व को अमर रखने की कामना करता है। अपनी मृत्यु के अन्तर भी उसे अपनी संतान में अपने अस्तित्व का नैरन्तर्य दीखता रहता है। अतः उसकी अमरैषणा भी तृप्त होती है। अपनी संतति के विकास में उसे अपना ही विकास दिखलाई देता है। पिता जिन महत्त्वाकांक्षाओं को अपने जीवनकाल में पूर्ण नहीं कर सका था और अपूर्णता की पीड़ा का अनुभव कर रहा था, उनकी पूर्ति अपने पुत्र में वह देखता है। वह स्वात्म प्रेम (नार–सिस्टिकव)की स्थिति हैं। इन कारणों के अतिरिक्त बच्चा अपने निज गुणों के कारण भी वात्सल्य का पात्र है। उसकी अमायिकना

सरलता, कोमलता आदि बरबस आकर्षित करने वाले गुण हैं। उसकी बोल, चाल की मिठास में कौंन नहीं रम जाता?

वात्सल्य भाव का आवेश स्त्री में अधिक माना जाता है। माता के रूप में उसका संसर्ग भी बालक के साथ अधिक होता है। मातृत्व नारी का सबसे अधिक गौरवमय अधिकार है। इससे वंचिता नारी एक कसक छिपाये रहती है।

महापुरूषों के जन्म की परिस्थितियों और तत्सम्बन्धी अभिप्रायों की एक परम्परा मिलती है। उनका जन्म मनोरम परिस्थितियों में भी हो सकता है। तुलसी के राम का जन्म ऐसी ही परिस्थितियों में हुआ। कालिदास की पार्वती का जन्म भी ऐसी ही परिस्थितियों में हुआ। दूसरा अभिप्राय इसके विपरीत मिलता है। कृष्ण के जन्म की परिस्थितियाँ भीषण–भयंकर, भाद्रपद, कृष्णपक्ष, अर्धरात्रि, घकाच्छादित आकाश, सूचीभद्य अन्धकार, अंधकार कंस की कारा, दुर्निवार अनिष्ट की आशंका से उद्विग्न माता–पिता, जन्म जीवन पर मृत्यु की छाया।

कृष्ण का परित्याग करने के समय देवकी का वात्सल्य फूट पड़ता है–

जब वसुदेव अपनी असहायावस्था का वर्णन करते हैं–

'ऐसौ को समरथ त्रिभुवन में, जो यह बालक नेंकु उबारै।
खड्ग धरै आवै, तुव देखत, अपनैं कर छिन माहँ पछारै।'
यह सुनतहिं अकुलाइ गिरीधर, नैन नीर भरि भरि दोउ ढारै।।[20]

गोकुलवासियों को यह भी पता नहीं था कि कृष्ण का जन्म वहाँ नहीं हुआ। यशोदा और नन्द ही नहीं, सारे ब्रज के गोप–गोपी वात्सल्य के आश्रय बन जाते हैं। सारा ब्रज आनन्द से आप्लावित हो जाता है। यशोदा पुत्रजन्म के हर्ष को वहन नहीं कर सकी। उसने नन्द को बुलाया –

20. सूर साहित्य ए मूल्यांकन–डॉ0 चन्द्रभान रावत, पृ0 232

जागी महरि, पुत्र सुख देख्यौ, पुलकि अंग उर में न समाइ।
गदगद कंठ बोल नहिं आवै, हरषवंत ह्वै नंद बुलाइ।।[21]

पालने पर आने के साथ ही सूर के वात्सल्य की दो धाराएँ पृथक्–पृथक् बहने लगती हैं। बाल देव के रूप में कृष्ण लोकोपकारक दानवीय शक्तियों का नाश करता है। दूसरी ओर मानवीय धरातल पर अपनी माँ की वात्सल्य भावना का आलम्बन करके वह बाल–चेष्टाएँ और बाल–लीलाएँ करता है।

अलौकिक दुष्ट विनाशक लीलाएँ लोक मानस को परितष्त करती है यशोदा के पास पाता है, जो दानवों के झमेले में पड़े कृष्ण को देखकर रो उठती है और अपने लाल को सुरक्षित पाकर दान–पुण्य देती है। यशोदा का कन्हैया पालने पर झूल रहा हैं। उसके आस–पास आत्मनिर्गत लोरी गीतों की अनुगूँज है। एक–एक शब्द और यशोदा की एक–एक क्रिया में वात्सल्य की सौ–सौ फुहारें बरस रही हैं–

जसोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जाइ–सोई कछु गावै।।[22]

चलने की क्रिया से सूर के वात्सल्य की दूसरी स्थिति आरम्भ होती है। कृष्ण का श्याम बपु–रंजित होकर और भी कान्तिमान हो उठता है। कमर की करधनी और पैरों के नूपुरों की झंकार से यशोदा का घर झंकृत हो जाता है। यशोदा की सारी अज्ञात अभिलाषाएँ एक लता की भाँति फल–फूल रहीं हैं। नव–किसलयों से यह सुसज्जित होती जाती है मक्खन भी एक हाथ में है और कुछ मुख से भी लिपटा हैं। सूर क एक चित्र ले लिया –

सोभित कर नवनीत लिए।
घुटरूनि चलत रेनु–तन–मंडित, मुख दधि लेप किए।।[23]

---

21. सूर साहित्य ए मूल्यांकन–डॉ0 चन्द्रभान रावत, पृ0 233

22. *डॉ0 चन्द्रभान रावत, द्वितीय संस्करण, सूरपंचशती 1977, सूरसाहितयः नव मूल्यांकन, वृ0 236*

23. *डॉ0 चन्द्रभान रावत, द्वितीय संस्करण, सूरपंचशती 1977, सूरसाहितयः नव मूल्यांकन, वृ0 239*

इसी अवस्था में बालकृष्ण को अपना प्रतिबिंब भी मणिमय आँगन में दिखाई देने लगे। उसके प्रति भी उसकी बालोचित प्रतिक्रिया होती है। अपने प्रतिबिंब को पकड़ने के लिए बालकृष्ण दौड़ना चाहता है–

'मूख प्रतिबिंब' पकरिबे कारन, हुलसि घुदुरूवनि धाबत।[24]

इस अवस्था में जो विशिष्ट बाल छबि प्रकट हुई, उसका पान यशोदा बहुविध करती है। सूर के आलंबन चित्र इस समय गतिमय और वैविध्यपूर्ण हो जाते है। आलंबन की गति का क्षेत्र अब पालना या माता की गोद ही नहीं रहे। वह आँगन में आ गया है। उसके मूक आभूषण भी मुखर हो गये। यही नहीं कुछ तुतले बचन भी उसके मुख से निकलने लगे। सूर ने यहाँ बालछवि के बड़े ही पूर्ण और सांग चित्र दिए हैं।

माता की अभिलाषा बढ़ती ही जाती है। अब उसे अपनी एक अभिलाषा याद आई, 'कब धरनी पग द्वैक धरै।' अब यशोदा कृष्ण की तनक–तनक भुजाओं को पकड़ कर खड़ा होना सिखा रही है।

तनक–तनक भुज पकरि के, ठाढी होन सिखावै,
लरखरात गिरि परत है चाल घुटुरूनि धावै।
पुनि क्रम–क्रम भुज टेकि कै, पग द्वैक चलावै।।[25]

सूर ने यह सब देख लिया था। जब कृष्ण गिर–गिर पड़ता है, तब सूर एक अद्‌भुत स्थिति की कल्पना करता है। जिसने त्रिपद में समस्त ब्रह्मण्ड को नाप लिया था, वह भी आज इन शिशु–लीलाओं को कर रहा है। पर यह बात सूर इस प्रकार संकेत में बतलाता है कि माता न सुन ले। कहीं ऐसा न को कि उसका उमड़ता हुआ वात्सल्य बाधित हो जाय।

---

24. डॉ0 चन्द्रभान रावत, द्वितीय संस्करण, सूरपंचशती 1977, सूरसाहितयः नव मूल्यांकन, वृ0 239

25. डॉ0 चन्द्रभान रावत, द्वितीय संस्करण, सूरपंचशती 1977, सूरसाहितयः नव मूल्यांकन, वृ0 240

जब कृष्ण कुछ–कुछ खड़ा होने लगा, तब माता उसे चलाने का प्रयत्न करती है। चित्र इस प्रकार बनता है –

सिखवति चलन जशोदा मैया।
अरबराइ कर पानि गहाबत, डगमगाइ धरनी धरे पैया।।[26]

सूर का वात्सल्य वर्णन अत्यन्त मौलिक है। यह चित्रण इतना क्रमिक सुश्रृङखल और पूर्ण है कि कोई भी कड़ी लुप्त नहीं है। अनेक भावों की पुनरावृत्ति तो है, पर नवीनता लिए हुए। वर्णन में अलौकिकता भी कम नहीं। रस का प्रवाह निर्बाध है। समस्त लीला विस्तार नितांत मानवीय है। भक्ति की भावना रहने के कारण वात्सल्य के साथ अद्भुत का भी मिश्रण है। यह भक्तिपरक वात्सल्य का सहायक है। वात्सल्य के साथ हास्य का समावेश तो अनेकत्र है। गोपियों के संदर्भ में श्रृङगार का भी कुछ पुट आ गया है। कुल मिलाकर सूर का वात्सल्य अभूतपूर्व है।

मार्मिक दृश्य चित्रण

सूर का राम काव्य मार्मिक स्थलों से परिपूर्ण है। धनुष भंग प्रसंग लीजिए– कोमल किशोर रामचन्द्र के मुख को देखकर जानकी जी विधि से निहोरा करती हैं कि हमारा नेह राम जी से हो गया है, परन्तु –

'यह अति दुसह पिनाक पिता प्रन राघव–बयस किशोर।
हम पैदीरघ धनुष चढै सखि यह संशय मोर।।[27]

राजा जनक तो रामचन्द्र जी को देखकर मुग्ध हैं,परन्तु पिता के कठिनप्रण को सोच सोचकर जानकी जी का धीरज छूट रहा है–

प्रमुदित जनक निरखि मुख अम्बुज ,प्रगट नयन मधि नीर।
तात–कठिन–प्रन जानि जानकी आनति नहिं उर धीर।।[28]

---

26. डॉ0 चन्द्रभान रावत, द्वितीय संस्करण, सूरपंचशती 1977, सूरसाहितयः नव मूल्यांकन, पृ0 240
27. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 81
28. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 81

ककई के कहने पर राजा दशरथ ने राम को बनवास तो दे दिया परन्तु वे सिर धुनकर पछताते हैं और अपने को मति मन्द कहकर धिक्कारते हुए कहते हैं कि मैंने त्रिया–चरित्र क्यों नहीं समझा ?

महाराज दशरथ यों सोचत।
हा रघुनाथ, लछन, वैदेही, सुमिरि नीर दृग मोचत।
त्रिया–चरित्र मतिमन्द न समुझत, उठि प्रछालि मुख धोवत।[29]

राम को बन जाने से रोकते हुए दशरथ का विलाप करना, तथा बार–बार पश्चातप करते हुए वही–बात चलाना बडें ढंग से कवि ने प्रस्तुत किया है–

फिर–फिर नृपति चलावत बात।
कहुरी सुमति कहा तोहि पलटी प्रान –जिवन कैसे बन जात।।[30]

केवट प्रसंग का वर्णन न केवल मार्मिक और मौलिक है तथापि इतना प्रभावकारी है कि वाद के अनेक कवियों ने कवि की इस भावना को ज्यों का त्यों अपनी रचनाओं में ग्रहण किया है। लक्ष्मण जी केवट को कहते हैं–

ले भैया केवट उतराई।
महाराज रघुपति इत ठाढे, ते कह नाव दुराई?[31]

केवट कहता है कि मैं अपनी नाव नही ला सकता मैने राम के चरण रज की महिमा सुनी है,जिसके स्पर्श से पत्थर भी नारी हो गयी है। मैं निर्धन व्यक्ति हूँ। नाव ही मेरी जीविका है, यदि वह नारी हो गयी तो मैं अपने कुटुम्ब का भरण–पोषण किस प्रकार करूँगा? (पद क्रमांक 484) आगे के पद में वह फिर यही बात कहता है परन्तु अबकि वह कहता है कि यदि राम अपने पैर पखारने देंगे तभी मैं नाव में उन्हें बैठाऊँगा, नहीं तो नाव नहीं लाऊँगा।

---

29. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 82
30. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 82
31. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 82

'नौका हौं नाही ले आऊँ'।[32]

राम लक्ष्मण बार–बार केवट को नाव लाने को कहते हैं और केवट थर–थर कांपते हुए भी राम की दुहाई देते हुए कहता है कि मैं निर्णन व्यक्ति हूँदूसरी नाव नहीं बनवा सकता–

मेरौ जिय यों ही डरै मति होहि सिलाई।
मैं निरबल बित–बल नहीं जो और गढ़ाऊँ।।[33]

अन्त में केवट एक चाल चलता है वह राम लक्ष्मण को कहता है –

नेरै ही जल थाह है , चलौ तुम्हें बताऊँ।
सूरदास की बीनती , नीके पहुँचाऊँ।।[34]

पुरबधुओं के प्रश्न तथा सीता जी द्वारा दिये गये उत्तर में भी सूरदास ने, सर्वथा नवीन भाव प्रस्तुत किये हैं। यह वर्णन भी अपनी मार्मिकता के लिए बहुत प्रसिद्ध है। गांव की नारियां सीता जी की पैलगी कर उनसे पूछती हैं–

अरी अरौ सुन्दरि नारि सुहागिनि, लागौ तेरे पांऊँ।
कहि घाँ के तुम वीर बटाऊँ, कौन तुम्हारो गाऊँ।।[35]

सीताजी अपना पूरा परिचय देती हैं अपने कुल और परिवार की बात बताती है परन्तु यह कहना नहीं भूलतीं–

सास की सौत सुहागिनि सो सखि अतिहीं पिय की प्यारी।
अपने सुत को राज दिवायो हमको देस निकारी।।[36]

गांव की महिलायें आगे प्रश्न करती है–

---

32. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 83,
33. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 83,
34. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 83,
35. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 83,
36. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 83,

कौन बरन तुम देवर सखि री कौन तिहारौ नाथ?[37]

सीता जी कहती हैं–

गौर बरन मेरे देवर सखि पिय मम स्याम सरीर।[38]

आगे चलकर पुनः जब दूसरे गांव की महिलायें यही प्रश्न पूछती है तब सीता जी ने उत्तर दिया वह अत्यन्त हृदयस्पर्शी तथा मार्मिक है–

इनमें को पति आहिं तिहारे पुरजनि पूछैं जाइ।
राजिव नैन मैन की मूरति सैननि दियो बताइ।।[39]

इस प्रकार प्रसंग वाल्मीकि और आध्यात्म रामायण में भी नही हैं। महानाटक में पुरबधूओं के प्रश्न का प्रसंग अवश्य है परन्तु उसमें सीता जी सिर नीचा करके स्पष्ट उत्तर देती है। आँख के इशारे की मार्मिक कल्पना भी नहीं है।

चित्रकूट में भरत हठ करके राम के चरण पकड लेते हैं। वे कौशल्या माता के दुख की दुहाई देते हुए कहते हैं कि हें भाई रामनिष्ठुर न बनें और अयोध्या वापस चलें। राम ने भरत को पिता के आज्ञा का स्मरण दिलाया और भली प्रकार समझाया। अन्त में भरत जी राम की चरण पादुका को सिर में धारण कर अयोध्या लौटते हैं यह प्रसंग भी बडा मार्मिक है तथा सर्वथा मौलिक है। परवर्ती राम काव्य में इस प्रसंग का भी विकास हुआ है।

रावण जब सीता का हरण कर लेता और राम वापस आकर सीता को कुटिया में नही पाते तब वे साधरण मनुष्यों की तरह विलाप तो करते ही हैं वे इतने व्याकुल हो उठते हैं कि वन के वृक्ष पौधें और लताओं से सीता जी का पता पूछते है यह प्रसंग भी बहुत मार्मिक है और बाद के कवियों ने इस प्रसंग का भी बडे मनोयोग से अनुकरण और विकास किया है।

---

37. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 83
38. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 83
39. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 83

फिरत प्रभुपूछत वन–द्रुम बेली।
अरे बन्धू काहू अवलोकी इहिं मग बधू अकेली।
अहो विहंग अहो पन्नग नष्प या कन्दर के राइ।
अब के मेरी विपत मिटाओ जानकि देहु बताइ।[40]

रावण जब सीता से अपनी रानी बन जाने के लिए कहता है और यह भी कहता है कि चौदह सहस्त्र किन्नरियों को तुम्हारी दासी बना दूंगा। तु तपसी राम का मोह छोडकर उठ और आभूषण धारण कर तब सीता जी तृण की ओट से नेत्रों में अश्रु भरकर कहती हैं हे रावण तेरी जीभ गलकर गिर जायेगी। मैं समर्थ की पत्नी हूं। सिंह का भोजन सियार नहीं पा सकता।(पद क्रमांक 523) कितना मार्मिक है यह प्रसंग?

हनुमान जब सीता जी को मुद्रिका देते हैं तब सीता जी हनुमान को एक मार्मिक प्रसंग सुनाती हैं.। वत्स हनुमान तुम रामचन्द्र जी से जाकर कहना कि एक बार सोते में जब जयन्त ने काग बनकर मेरे पैर में चोंच मारी थी तब रामचन्द्र ने उसे लक्ष कर बाण चला दिया था। इन्द्र भी उसे बचा नहीं पाये थे। अब रावण के लिए राम वैसा कोप क्यों नहीं करते ?

कहियो बच्छ संदेसौ इतना जब हमव है एक थान।
सोवत काग छुयौ तन मेरौ बरहहिं कीनौ बान।
फोरयो नयन काग नहिं छाड यो सुरपति के विदमान।
टब वह कोप कहां रघुनन्दन दससिर बैर बिलान।[41]

राम–समुद्र संवाद, अंगद का दूतत्व, लक्ष्मण को शक्ति लगना, और राम का विलाप करना इत्यादि अनेक मार्मिक प्रसंग राम–काव्य में सूरदास ने संजोये हैं। एक प्रसंग और देखिये। जब रामचन्द्र जी रावण को मार कर सीता तथा लक्ष्मण और सुग्रीवादि के साथ वापस अयोध्या आते हैं तब भरत जी नगर के बाहर जाकर उनकी अगवानी कर उन्हें सादर राजधानी में लाते हैं।

---

40. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 84
41. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 84

भरत ने मणिमय सिंहासन लाकर और उस पर रामचन्द्र जी को अनुग्रह और आदर से बिठाया ,फिर स्वर्णपात्र में निर्मल जल, मधु और दूध लाकर रखा। उन्होने बडी भक्ति भावना से रामचन्द्रजी के पैर धोये और चरणमृत का पान किया तथा उसे मस्तक से लगाया। कितना भावपूर्ण चित्रण है यह–

मनिमय आसन आनि धरे।
दधि, मधु नीर कनक के कोपर, आपुन भरत भर
प्रथम भरत बैठाई बन्धुकौ, यह कहि पाइ परे।।[42]

डा0 ब्रजेश्वर वर्मा ने कहा है–'उसने (सूरदास ने) तो राम कथा के मार्मिक स्थलों पर स्फुट पद रचना सी की है, उन्हीं को क्रमिक रूप से रखकर उपर्युक्त काण्ड विभाग से पूरी कथा का एक ढाँचा तैयार हो जाता है। सम्पूर्ण कथा मे विवरणात्मकता का अभाव हैं। अधिकांश पद कवि की गम्भीर सहानुभूति के परिचायक है। कवि ने सीता का सुकुमार, व्यथित करूण चित्र सबसे अधिक आत्मीयता के साथ उतारा है। मन्दोदरी की करूणा तथा कौशल्या के वात्सल्य को भी निकट से परखा गया है। हनुमान के अनन्य भाव के चित्रण मे भी तन्मयता है, तथा राम के वज्र कठोर और कुसुम–कोमल हृदय को भी सूरदास ने टटोला है। दशम स्कध पूवधि के अतिरिक्त यदि और कहींसूर की काव्या प्रतिभा चमकी है, तो इसी रामावतार के प्रसगं में।'

सामाजिक दृष्टि

सूर ने अपने रामकाव्य मे जहां तहां तात्कालिक सामाजिक परिदृश्य का भी चित्रण किया है। इसमे केवल राम और उनसे सम्बधित पात्रो का चरित्र चित्रण ही नहीं है। स्थान पर प्रजागण तथा समाज के साधारण व्यक्तियों की भागीदारी भी दर्शायी गयी है।महाराज दशरथ के घर पर जब चार बालकों का जन्म हुआ होता है। तब उस उत्सव मे प्रजाजन भी सम्मिलित है

42. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 85

महाराज के आंगन मे भीड लगी है। कोई भी राजमहल के भीतर तक आ जा सकता है। अयोध्यावासी फूले–फूले घूम रहे हैं और एक दूसरे का आलिगंन हर्ष के अतिरेक के कारण कर रहे हैं।

फूले फिरत आयोध्यावासी, गनत न त्यागत चीर।
परिरम्मन हसि देत परस्पर, आनन्द नैननि नीर।।[43]

उस समय यह सामान्य रीति थी कि महाराज के घर बालकों के जन्म मे अन्य देश के राजा टीका के रूप मे हीरे ,मोती तथा द्रव्यादि भेजा करते थे।

देस –देस तें टीका आयो ,रतन कनक मनि हीरे।[44]

केवट–लक्ष्मण संवाद में जिस निर्भीकता से केवट नाव लाने से इन्कार करता है वह बडा मार्मिक है। इससे यह ज्ञात होता है कि उस समय निर्धन और समाज का छोटे से छोटा सदस्य भी राजा के समक्ष अपनी कठिनाई रखने में घबराता नहीं था।

राम वन गमन में सीता जी से पुरबधूयें, विभिन्न प्रकार के प्रश्न पूछती हैं, और पूरा परिचय चाहती हैं। यह ग्रामीण समाज का बडा जीवान्त चित्रण है, जो सूरदास जैसे मानव–मन के मार्मिक दृष्टा से छूट नहीं पाया है। गिद्ध ने रावण को सीता हरण करते देख लिया। उस युग की सामाजिकता का दिग्दर्शन कराते हुए कवि ने कहा है कि गिद्ध महाबली रावण के इस अन्याय का शक्ति भर प्रतिकार करता है भले ही इसमें यह घायल हो जाता है।

राम सीता हरण के कारण भारी दुखी हैं परन्तु वे निर्धनों के प्राण हैं। मार्ग में शबरी आश्रम की वे अपेक्षा नहीं करते और बिना निमन्त्रण शबरी का आतिथ्य ग्रहण करते हैं उसके दिये अत्यन्त हीन तथा जूठे फल स्वाद से खाते हैं–

---

43. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 85
44. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 86

खाटे फल तजि मीठे ल्याई जूठे भये सो सहज सुहाई।
अन्तर जामी अतिहित मानि भोजन कीन्हें स्वाद बखानि।।[45]

राम को सुग्रीव का निवास भी मार्ग में पड जाता है। वहां उनकी भेंट सुग्रीव से होती है–

बडे भाग्य अहि मारग आए।
गदगद कंठ सोक के रोवत बारि बिलोचन छाए।।[46]

राम शोक मग्न सुग्रीव से मित्रता कर लेते हैं। राम चौदह वर्ष के बाद जब अयोध्या वापस आतें हैं तब वे अपनी जन्म भूमि अयोध्या का वर्णन करते हुए उसे बैकुंठ से भी अच्छी बताते हैं।वे नगर में पैदल चलकर प्रवेश करते हैं। भरत जी अयोध्या वासियों सहित उनकी अगवानी करते हैं उस समय राम जहां वशिष्ठ इत्यादि मुनियों का चरण –स्पर्श करते हैं वही नगर के सामान्य जनों तक को गले से लगाते हैं।

'जथा जोग भेंटे पुरवासी गये सूल सुख सिंधु नहाये'।[47]

सूरदास की सामाजिक दृष्टि कितनी पैनी है और उनका वर्णन करने का ढंग कितना सहज है यह देखने लायक है।

रस निरूपण

सूरदास रसिक कवि माने गये हैं। वैसे भी रस काव्य का प्राण है। जिस रचना में रस नहीं वह नीरस कहलाती है। सूर–साहित्य तो रस का लहराता सागर ही है। सूर का रामकाव्य भी रसों से परिपूर्ण है। वैसे सूर वात्सल्य और श्रृंगार के कवि के रूप में विख्यात हैं पर रामकाव्य में अधिकांश पद वीर रस के

45. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 86
46. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 86
47. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 86

हैं। पूरे सूरसागर में सबसे अधिक वीर रस का परिपाक रामकाव्य में ही हुआ है। विद्वानोंको आश्चर्य होगा कि मधुर ललित वात्सल्य भावनाओं का एक कवि इतनी कुशलता से तथा प्रौढता से बीर रस का अंकन कर सकता है। वैसे रामकाव्य पूर्ण काव्य है और उसमें कामोवेश सभी रस हैं।

भावना जगत में जो पैठ सूर कर पाये हैं वह हिन्दी का अन्य कवि नही कर पाया है यह कहना अतिश्योक्ति पूर्ण नहीं है। यही कारण हैं कि सूर ने जिस भाव को भी लिया है उसका सही–सही निरूपण अपने पदों में किया है। बात असली यह है कि सूर तन्मयता से जब वे डूबकर गाते थे तब भाव और रस की गंगा स्वयं बहने लगती थीं।

श्रृंगार रस

रसों में श्रृंगार रस को परम श्रेष्ठ रस अथवा रसराज कहा गया है। आचार्य भरत मुनि का कथन है– "लोक में जो कुछ भेध्य, उज्वल और दर्शनीय है, उन सबका वर्णन श्रृंगार –रस के अंतर्गत है"। इसी कारण कई भारतीय आचार्य श्रृंगार को ही एकमात्र रस मानते हैं। भोज कहते हैं– "यदि कवि श्रृंगारी होगा तो सारा जगत रस भय हो जायेगा "। श्रृंगार के दो पक्ष हैं'– 1–संयोग तथा 2–वियोग।

सूर वैसे वियोग श्रषंगार के अन्यतम कवि हैं। सूरसागर के एक हजार एक सौ दस पद इन्होने वियोग श्रषंगार के रचे हैं। हम यहां पर उनके रामकाव्य पर ही विचार करेंगे।

(1) संयोग श्रृंगार

नायक नायिका के परस्पर मधुर भाव से दर्शन स्पर्शन कथोपकथन क्रीडा आलिंगन परिरम्भन इत्यादि अनेक भाव इसके अंतर्गत आते हैं। कंकण–मोचन के समय का यह पद देखिये–

कर कंपै कंकन नहिं छूटे।
राम–सिया कर परस मगन भये कौतुक निरखि सखी सुख लूटे।।[48]

यह चित्रण कितना पुलकित करने वाला है।

(2) वियोग श्रृंगार

सीता हरण के बाद राम व्याकुल हैं–

''रघुपति कहि प्रिय नाम पुकारत'' वे सीता का नाम ले–लेकर चारों ओर पुकारते हैं। वे इतने विव्हल हो गये हैं कि लता–वृक्षों से भी सीता का पता पूछते हैं–

फिरत प्रभु पूछत वन–द्रुम–बेली।[49]

सीता अशोक वन में राक्षसियों से घिरी बैठी हैं। राम के वियोग में उनका हृदय जल रहा है। वे सहानुभूति रखने वाली एक मात्र राक्षसी त्रिजटी से कहती हैं–

सो दिन त्रिजटी कहु कब ऐहै ?[50]

जो दिन चरन–कमल रघुपति के हरषि जानकी हृदय लगै है।

सीता जी हनुमान को संबोधित कर राम को उलहना देती हैं–

सुनकपि रघुनाथ वै नाही?
जिन रघुनाथ पिनाक पिता–गष्ह तोरे यो निमिष माहीं।[51]

---

48. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 88
49. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 88
50. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 88
51. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 88

सीता आशंका करने लगती हैं कि कहीं राम ने वैराग्य तो नही ले लिया। उन्हें ऐसा लगता है कि वे उनकी याद भूल गये हैं।

कै रघुनाथ तज्यौ प्रन अपनो जोगिन दसा गही।
कै रघुनाथ अतुल बल राक्षस दशकंधर डरहीं।।[52]

वियोगावस्था में ही अनुराग में उत्कृष्टता प्रगट होती है। उपरोक्त उदाहरण इसी बेचैनी को दर्शाता है।

वियोग श्रृगांर में ही अभिलाषा चिंता स्मरण गुणकथन उद्वेग उन्माद व्याधि प्रताप जडता और मरण सभी भाव के चित्र रामकाव्य में हैं।

(3) करूण रस

शोक इसका स्थायी भाव है। इष्ट का नाश या अनिष्ट की प्राप्ति से शोक उत्पन्न होता है। जीवन में शोकभाव बहुत महत्वपूर्ण माना गया है कई रस–मर्मज्ञ तो यहां तक कहते हैं कि करूण रस सभी रसों में व्याप्त है। उत्तर रामचरित में महाकवि भवभूति ने कहा है–''एक करूण रस ही निमित्त भेद से श्रृगांर आदि रसों के रूप में पृथक–पृथक प्रतीत होता ह्रे श्रृगांर आदि रस करूण रस के ही विवर्त, हैं जैसे भंवर, बुलबुले और तरंग जल के ही विकार हैं। वास्तव में ये सब जल नहीं हैं, केवल नाम मात्र की भिन्नता है। ऐसा ही संबंध करूण रस और श्रृंगारादि रसों का है।

सूर का रामकाव्य करूण रस से ओतप्रोत है। रामवनगमन महाराज दशरथ का देह त्याग सीता हरण लक्ष्मण को शक्ति लगना इत्यादि अनेक प्रसंग इस रस से सरावोर हैं।

रामवन गमन पर महाराज दशरथ अपने प्राण छोड देते हैं पूरी अयोध्या–नगरी में डूब गयी है सूरदास ने कहा है–

---

52. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 88

यह सुनि भूप तुरत त्याग्यो बिछुरन ताप–तयौ।
सुरति –साल ज्वाला उर अंतर ज्यों पावकहिं पियौं।
इहिं विधि–विकल सकल पुरवासी नाहिंन चहत जियौ।
पशु –पंक्षी तष्न–कन त्याग्यों अरू बालक पियो न पायो।[53]

पशु–पक्षियों ने दाना–पानी छोड दिया और बालकों ने दूध तक नहीं पिया।

(4) वीर रस

इसका स्थायी भाव उत्साह हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं– उत्साह में कष्ट या हानि सहने की दृढता के साथ–साथ कर्म में प्रवृत्त होने के आनंद का योग रहता है। साहस पूर्ण आनंद की उमंग का नाम उत्साह है। केवल कष्ट या पीडा सहन करने के साहस में ही उत्साह का स्वरूप स्फुटित नहीं होता। उसके साथ आनंद पूर्ण प्रयत्न या उसकी उत्कंठा का योग चाहिये।

आचार्य विश्वनाथ ने वीर रस के चार भेद माने हैं।

1–युद्धवीर, 2– दानवीर, 3–दयावीर और 4– धर्मवीर। इन चारों कें उदाहरण रामकाव्य में हैं।

पूरा राम काव्य वीर रस से परिपूर्ण है यह हमने पूर्व में ही बताया है विश्वामित्र यज्ञ रक्षा धनुष भंग खर दूषण बध बालि बध हनुमान का समुद्र लंघन अशोकवन भंग हनुमान–रावण संवाद लका–दहन हनुमान राम संवाद राम प्रतिज्ञा रावण–मन्दोदरी संवाद राम सागर संवाद जलनिधितरण अंगद–दूतत्व लक्ष्मणयुद्ध –गमन क्या पूरा लंका कांड ही वीर रस से भरा पडा है और यह कांड पद संख्या के अनुपात से सभी कांडों से बहुत बडा है।

---

53. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 88

(1) युद्धवीर

हनुमान रामकाव्य के परमवीरों में से एक हैं। वे अकेले रावण की पूरी सेना के साथ लडते हैं और अक्षय कुमार सहित पूरी सेना का संहार भी कर देते हैं–

पहुंची अब असुर सैन शाखामृग जान्यौ।
मानौ जल बीच सिमिटि जाल में समान्यौ।
तरूवर तब एक उपटि हनुमत कर लीन्यौं।
किंकर कर पकरि बान तीन खंड कीन्यौं।
जोजन विस्तार सिला पवन –सुत उपाटी।

– – – – –

मंत्री–सुत पांच सहित अछय कुंवर सूर।
सैन सहित सबै हते झपटि के लंगूर।।[54]

हनुमान का ही यह गर्व– कथन देखिये कितना ओजस्वी है। वे राम को कहते हैं कि आप कहें तो मैं रावण को बाध्य करू किवह अपने मुहं में तृण दबाये और मैं उसे बांधकर आपके चरणों में डाल दूँ–

कहौ तो दसौं सीस, बी सौ भुज काटि छिनक में डारौं।
कहौ तो तोकां तष्न गहाइकै, जीवित पाइनि पारौं।।[55]

राम की प्रतिज्ञा देखिये कितनी वीरतापूर्ण उक्तियां हैं?

एक बात सुनि निस्चय मेरी राज्य विभीषन दै हौं।
कपि – दल जोरि और सब सेना सागर सेतु बंधै हौं।
काटि दसौ सिर बीस भुजा तब दशरथ–सुत जु कहै हौं।
छिन इक माहिं लंक गढ तोरौं कंचन–कोट ढहै हौं।।[56]

---

54. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 90
55. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 90
56. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 90

(2) दानवीर

राम लक्ष्मण भरत शत्रुघन महाराज दशरथ के चार पुत्र जब अयोध्या में जन्म लेते हैं तब अयोध्यापुरी में घर–घर बधाई बज रही थी। महल में भी भारी आनंद उत्सव था। याचकों को महाराज दान दे रहे थे। हीरे मोती पाकर याचक निहाल हो गये ऐसा सूरदास ने गाया है यथा–

देत दान राख्यौ न भूप कछु महा बडे नग हीर।
भए निहाल सूर जाचक जे जांचे रघुवीर।।[57]

(3) दयावीर

राम स्वयं परम दयालु हैं। वे निर्धनों के तथा समाज से तिरस्कृत व्यक्ति के एक मात्र उद्धारक हैं। जब वे ऋषि विश्वामित्र के साथ गंगाघाट पहुंचे तब उन्हें बताया गया कि यहां गौतम–पत्नी उपेक्षिता परित्यक्ता अहिल्या पाषाणवत पडी हैं। रामचन्द्र उसके पास जाते हैं।कवि ने गाया है–

गंगातट आये श्री राम।
तहां पषान रूप पग अरसे गौतम ऋषि की बाय।।[58]

सीताहरण करते रावण से जटायु ने युद्ध किया था और वे घायल अवस्था में अपनी कुटी में जाते हैं और उसे अपनी गोद में उठाते हैं–

कष्पानिधान नाम हित धाए अपनी विपत्ति बिसारि।
अहो विहंग कहौ अपनौ दुख पूछत ताहि खरारि।।[59]

(4) धर्मवीर

राम स्वयं सर्वगुण सम्पन्न हैं। वे धर्मवीर भी हैं। उन्होनें चित्रकूट में भरत जी को धर्म की शिक्षा दी तथा राज्य किस प्रकार चलाया जाना चाहिए

---

57. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 91
58. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 91
59. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 91

यह बताया। विभीषण जब उनकी शरण में आया तब उन्होने उसे केवल शरण ही नही दी बल्कि इस बात की प्रतिज्ञा की –

'एक बात सुनि निश्चय मेरी राज्य विभीषन दैहौं।[60]

और श्री–राम ने धर्मपूर्वक अपना वचन निभाया। उन्होने रावण का वध किया और राज्य विभीषण को सौंप दिया –

'दियो विभीषन राज सूर–प्रभु कियौ सुरनि निस्तारौ'।[61]

(5) रौद्ररस

जहाँ किसी भी कारण प्रतिशोध की भावना जागृत होती है अथवा किसी कारण से किसी पर क्रोध का भाव उत्पन्न होता है वहाँ रौद्ररस होता है। क्रोध जीवन का एक व्यापक भाव है। इस विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं– ''क्रोधोत्तेजक दुख जितना ही अपने सम्पर्क से दूर होगा, उतना ही लोक में क्रोध का स्वरूप सुन्दर और मनोहर दिखाई देगा'' आरवत नेत्र, भृकुटिभंग, रोमांच, हथेली मलना, हाथ पीटना, ललकारना प्रहार करना, इत्यादि रौद्ररस के अनुभाव हैं। गर्व, उत्साह, आवेग,उग्रता और ईर्ष्या आदि इसके संचारी भाव हैंएक उदाहरण देखिये– 'अंगद–रावण संवाद में रावण बार–बार अभिमानपूर्वक अपने बल का बखान अंगद के सामने करता हैऔर उसे फोडने की चेष्टा करता है यह कहकर कि तू अपने पिता के मारने वाले राम का दास क्यों है?

कोपि अंगद कह्यौ, धरौं धर चरन मैं, ताहि जो सकै कोउ उठाई।
तौ बिना युद्ध किये जाहिं रघुवीर फिरि, सुनत यह उठे जोधा रिसाई।।[62]

राम के मात्र कोप करने से ही समुद्र विनीत होकर राम से क्षमा और दया की याचना करने लगता है।

---

60. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 91
61. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 91
62. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 92

तीनि जाम बरू बीतैं, सिंधु गुमान भर्‌यौ।
कीन्हों कोप कुंवर कमलापति, तब कर धनुष धर्‌यौ।।[63]

जब राम क्रोध कर युद्ध करते हैं तब कवि ने गाया है–

आजु अति कोपे हैं रन राम।
छोभित सिंधु सेष सिर कंपित, पवन भयो गति पंग।।[64]

(6) भयानक रस

जब भी भय स्थायी भाव होकर परिपुष्ट होता है तब भयानक रस उत्पन्न होता हैं। भय एक अनिवार्य भाव है।

अपशकुन पूर्ण डरावनी आवाज सूनसान किसी का अचानक मरण इत्यादि इसके विभाव हैं। कम्प खेद रोमांच वैवर्ण्य आदि अनुभाव हैं। दैन्य मोह स्मरण आदि इसके संचारी भाव है। महाकवि सूर के रामकाव्य में सीता के भय का कई पदों में वर्णन है।सीता रावण को देखकर डरती है–

परतिय रमे। धर्म कहा जानैं डोलत मानुष खात।
मनमें डरी कानि जिनि तोरैं मोहि अबला जिय जानि।
नख –सिख –बसन संभारि सकुच तनु कुच कपोल गहि पानि।।[65]

सीता जी पहले पहल हनुमान को देखती हैं तो वे उसे भी कोई निशाचर समझती हैं जो रूप बदलकर उन्हें डरवाने आया है। वे कहती हैं–

छल करि आयो निसिचर कोऊ, वानर रूपहिं धार।
स्रवन मूदि मुख आंचर ढांप्यो अरे निसाचर चोर।
काहे कौ छल करि–करि आवत धर्म विनासन मोर।[66]

---

63. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 92
64. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 92
65. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 92
66. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 93

(7) अदभुत रस

इस रस का स्थायी भाव आश्चर्य या विस्मय है। कोई भी ऐसी घटना जिसे देखने से मन में विस्मय या आश्चर्य का भाव उत्पन्न हो इस रस का परिपाक करते हैं। नेत्र विस्फार, स्वेद, रोमांच, इत्यादि इसके भी अनुभाव हैं। चिन्ता, आवेग, जडता, हर्ष आदि इसके संचारी भाव हैं।

सीता जी कोमल राम को देखकर संशय करती हैं कि ये किशोर कोमल, इतने भारी और दीर्घ धनुष को कैसे उठा पायेंगे? परन्तु जब वे सहज ही धनुष को उठा लेते हैं तब सभी राजा इस प्रकार प्रकाशहीन हो जाते हैं जैसे सुबह होने पर तारा गणों का प्रकाश मन्द पड जाता है–

"टूटत धनु नृप लुके जहां तहं ,ज्यों तारागन भोर"।[67]

अथवा –रामचन्द्र जी ने समुद्र पर सेतु रचना प्रारम्भ की तब–

द्रुम पषान प्रभु बेगि मंगायौ, रचना सेतु कर्‌या
नल अरू नील विस्वकर्मा सुत, छुवत पषान तर्‌यौ।।[68]

(8) वीभत्स रस

वीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा या घृणा है। किसी घृणित पदार्थ को देंखकर अथवा उसके गन्ध या स्पर्श से यह भाव उत्पन्न होता है। इसमे अपस्मार व्याधि आदि संचारी भाव होते है। इस रस का सूर रामकाव्य में प्रायःअभाव ही है। कही–कही अत्यन्तक्षीण रुप में यह रस विद्यमान है –

कहु भुज कहुं धर कहुं सिर लोटत, मानो मद मतवारौ।
भभकत, तरफत स्रोनित में तन, नाहीं परत निहारौ।।[69]

---

67. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 93
68. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 93
69. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 94

राम ने जब लंका विजय की तब रण भूमि में निशाचरों की लाश खून में डूबी हुई तथा विभिन्न अंगों को तडपते हुए सूर ने दिखाया है।

(9) हास्य रस

हास्य इसका स्थायी भाव है। भरतमुनि ने इसकी उत्पत्ति का मूल कारण विकृति माना है जैसे किसी विचित्र आकृति के मनुष्य को देखकर हंस पडना। अभिनव गुप्त ने सभी रसो के आभास और अनौचित्य से हास का उत्पन्न होना माना है। विकृति वेश–भूषा, व्यंग, चटपटे कथन, मूर्खतापूर्ण चेष्टाये आदि इसके आलंवन विभाव है। स्वेद, रोमांच हर्ष चपलता आदि इसके संचारी भाव है। सूर के रामकाव्य में हास के उदाहरण बहुत है– तथा अत्यन्त क्षीण है। राम विवाह के अवसर पर सोने की थाली में जब पानी भरकर सुपारी द्वारा सीता और राम के बीच द्यूत क्रीडा होती है तब राम हार जाते है–

पूंगी फल जूत जल निरमल धरि, आनी भरि कुडीं जौ कनक कीं।
खेलत जूत सकल जुवतिन में, हारे रघुपति जिती जनक की।।[70]

शूप्रणखा जब काम वश होकर राम के पास आती है ,तब राम सीता से चुहुल कर उसे लक्ष्मण के पास भेज देते हैं–

काम विबस ब्याकुल डर अंतर, राच्छसि एक तहां चलि आई।
हँसि कहि कछु राम सीता सों, तिहि लछिमन के निकट पठाई।।[71]

(10) शांत रस

शांत रस का स्थायी भाव निर्वेद है। आचार्य धनंजय जैसे कुछ आचार्य इसे रस में मान्यता नही देते हैं। परन्तु अधिसंख्य आचार्य इसे सम्पूर्ण रस मानते हैं। जहां दुख, सुख, चिन्ता, द्वेष, प्रेम अथवा कोई इच्छा नही रहती है वहाँ शांति रहती है ऐसा मुनिवर कहते हैं। सर्व भावों में शांति प्रमुख है। इसके अनेक स्थायी भाव माने गये हैं जैसे, तत्वज्ञान, आत्मज्ञान, घृति, सर्व–चित्तवृत्तिप्रशम् इत्यादि परन्तु यदि व्यापक दृष्टि सेविचार किया जाये तो यह सभी भाव निर्वेद

---

70. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 94
71. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 94

के अंतर्गत आते हैं। आचार्य उद्मट ने ''शम'' को इस रस का स्थायी भाव माना है। जब कि ''शम'' अपने आप में संचारी भाव है। इस रस का आलम्बन भाव हैं, देवता, ब्रह्मइत्यादि और उद्धदीपन विभाग हैं, वैराग्य साधु संग, भगवत्कृपा का ज्ञान इत्यादि। सभी संचारी भाव इसके भी संचारी भाव हैं। सूरदास का एक भाव देखिये–

अति सुख कौशिल्या उठि धाई।
उदित बदन मन मुदित सदन त, आरति साजि सुमित्रा ल्याई।
जनु सुरभी बन बसति बच्छ बिनु , परवस पसुपति की बहराई।
चली साझ समुहाइ धन, उमंगि मिलन जननी दोऊ आई।[72]

सूर की शील सम्बन्धी दृष्टि

मानव मन बडा जटिल है। भौतिक रूप से शरीर में इसका कहीं अस्तित्व नहीं है, परन्तु मनोरागों, मनोवेगों और मनोविकारों के रूप में यह वित्त को प्रभवित करता है। मानवीय अस्तित्व एवं स्पन्दन के ये जागरूक प्रहरी, जीवन की सर्वाधिक कोमल, उज्जवल एवं महत्तम विभूति हैं।

शील और क्रिया में अन्तर है। भोजन करना, स्नान करना, कहीं आना–जाना, उठना बैठना, शरीर का साधारण धर्म है। यह क्रिया है। किसी को देखकर पुलकित हो जाना, प्रेमाश्रु बहना, गहन शोक की स्थिति, हर्ष की अभिव्यक्ति में आचरण, यह सब शील के अन्तर्गत आता है। वैसे शील के दो प्रकार विद्वानों ने माने हैं। कायिक एवं मानसिक। कंकड मोचन के समय राम का सीता के कर का स्पर्श कर मग्न होना, राम का फेंटा बांधकर शिव धनुष का उठा लेना, और धनुष टंकार करते समय, धनुष का टूट जाना कायिक शील हैं। सीता का यह सोचना कि'यह अति दुसह पिनाक पिता–प्रन राघव वयस किशोर' मानसिक शील है।

---

72. श्रीपति बाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 95

वचन एवं कर्म की व्यंजक शैली से शीलतत्व सम अथवा विषम परिस्थितियों में प्रभावित होता है। शील, गतिशील है, यह संवेदनशील भी है। केवट का राम को देखकर अपनी नाव इस प्रकार छिपा देना कि वह कहीं राम–स्पर्श से नारी न बन जावे और यह कहना–' नौका हों नाहीं ले जाऊँ' और बाद में नेरैं ही जल–थाह है चलो तुम्हें बतलाऊँ, इसकी गतिशीलता का उदाहरण है। पुरबधूओं द्वारा यह पूछने पर 'इनमें को पति आहिं तिहारे' सीता जी का' रजिव नैन मैन की मूरति सैननि दियो बताइ 'संवेदनशील–शील हैं।

शील निरूपण की जिस पद्धति को सूर ने अपनाया है वह अद्वितीय है। सूर मानव–मन के अद्‌भुत चितेरे हैं।

शील अपने मूल रूप में किसी भी मनोभाव अथवा मनोभावों की चरित्र गत प्रतिष्ठापना का प्रयत्न है। बीज रूप में वह स्वयं भी एक मनोभाव ही है, किन्तु उसी का चरित्र अथवा शील रूप में प्रतिष्ठापित करने के लिए कवि या रचयिता को किसी पात्र की जीवन धारा से संपूर्ण रूप से तादात्म्य स्थापित करना पडता है। जब कवि मानव मनोवेगों के सूक्ष्म अध्ययन एवं उसके उद्‌घाटन की कला से पूर्ण परिचित न होगा, तब तक वह इन मनोविकारों का पात्रगत नियोजन नही कर सकता। शील–संविधायिनी कला की यह पहली शर्त है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर ने अपने रामकाव्य में जीवन वैविध्य, परिवर्तनशीलता, परिस्थिति–सापेक्षता, न्यायपूर्ण तटस्थदर्शिता, जीवन के प्रति आस्था संवेदनशीलता आदि के भाव युक्त रस मय शैली में रामकाव्य की रचना की है।

हरि हौं ऐसौ अमल कमायौ।
सावि‍क जमा हुती जो जोरी, मिन जालिक तल ल्यायौ।
बासिल बाकी, स्याहा मुजालिक, सब अधर्म की बाकी।
चित्र गुप्त सु होत मुस्तौफी, सरन गहूँ मैं काकी।

मोहरिल पांच साथ कर दीने, तिनकी बड़ी विपरीती।
जिम्मे उनके मांगें मोते, यह तौ बड़ी अनीती।
पाँच पचीस साथ अगवानी सब मिलि काज बिगारे।
सुनी तगीरी, बिसरि गई सुधि, मो तजि भए नियारे।
बढौ तुम्हार बरामद हूँ कों, लिखि कीनौ है साफ।
सूरदास की यहै बीनती, दस्तक कीजै माफ।।[73]

उपर्युक्त पद में अमल (आचरण), साबिक (पिछला या पूर्व जन्म का), जालिक (प्रधान शासक), वासिल (जो वसूल हो चुका है), बाकी (शेष), स्याहा (रोजनामचा), मुजालिक (इकट्ठा किया हुआ, संचित), मुस्तौफी (हेड मुनीम) तगीरी (कुछ का कुछ कर देना), बरामद (प्राप्त), दस्तक (कुर्की), माफ (क्षमा), आदि अनेक शब्द अदालती कार्यवाही के पारिभाषिक शब्द हैं।

जैसा कि शुक्ल जी ने बहुत पहले कह दिया था, सूरसागर में अन्य प्रान्तों के प्रचलित शब्दों और प्रत्ययों का भी प्रयोग हुआ है। श्री प्रभुदयाल मीतल के अनुसार "सूरदास ने जहां ब्रजभाषा की समृद्ध शब्दावली का प्रयोग किया है, वहाँ उन्होंनें खड़ी बोली राजस्थानी, पूर्वी, बुन्देली, पंजाबी और गुजराती भाषाओं के भी कुछ शब्द ग्रहण किए हैं"। उन्होंने इसका कारण भारत के विभिन्न स्थानों से आने वाले तीर्थ यात्रियों का कवि के सम्पर्क में आना बताया है।

मध्यकाल में हिन्दी की तीन उपभाषाओं ने काव्याभाषा का स्थान ग्रहण किया। नाथपंथी योगियों और निर्गुणोपासक सन्तों ने खड़ीबोली को अपनाया जिसमें राजस्थानी भाषा का भी कुछ मेल रहता था। सूफियों और रामभक्त कवियों ने अवधी में काव्य रचना की। कृष्ण भक्तों ने ब्रजभाषा को काव्यभाषा का स्वरूप प्रदान किया। जैसा कि हम कह आए हैं, सूरदास ब्रजभाषा के कवि हैं लेकिन तत्कालीन साहित्य में हिन्दी भाषा के जिन अन्य रूपों का उस समय

73. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 124

प्रयोग हो रहा था, उन्होंने कहीं–कहीं उन रूपों को भी अपनी रचनाओं में स्थान दिया। ब्रजभाषा के साथ अवधी का थोड़ा बहुत मिश्रण होता रहा। रीतिकाल में जब ब्रजभाषा खूब मँज और सँवर गई, उस समय बिहारी जैसे टकसाली कवियों ने भी सतसई में अवधी की अनेक क्रियाओं का प्रयोग किया। सूरसागर में अवधी का ऐसा मिश्रण अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। श्री मीतल ने अपने ग्रंथ में सूर का एक पद उद्धत किया है जिसमें नाथमंथी योगियों और निर्गुणोपासक सन्तों द्वारा अपनाई गयी खड़ी बोली का प्रयोग है। उनका कहना है कि सूर का वह पद योगिराज महादेव से सम्बन्धित है, जो योगी के वेश में श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ ब्रज में गए थे। पद की कुड पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं–

मैं जोगी जस गाया, रे बाला मैं जोगी जस गाया।
तेरे सुत के दरसन कारन, मैं कासी से धाया।
धन तेरा भाग जसोदा रानी, जिन ऐसा सुत जाया।
गुनन बड़ा छोटा मत जानौ, अलख रूप धरि आया। आदि।[74]

इसमें सन्देंह नहीं कि भाषा पर सूर का असाधारण अधिकार था। संस्कृतनिष्ठ भाषा और बोलचाल की सरल भाषा दोनों में उन्होंने समान सफलता के साथ पद रचना की है। संस्कृतनिष्ठ भाषा के साथ अलंकृत शैली का संयोग है और बोलचाल की सरल भाषा के साथ व्यावहारिक शैली का प्रयोग हुआ है। सूरसागर में जहाँ कहीं सादृश्य मुलक अलंकारो का प्रयोग है, वहाँ भाषा संस्कृतनिष्ठ अवश्य हो गयी है और जहाँ "सवभावोक्ति" है वहाँ भाषा सरल तथा शैली व्यावहारिक है। इसके अपवाद बहुत कम मिलेंगे। बाललीला संबंधी पदों से उदहरण लेकर इस बात को अच्छी तरह समझाया जा सकता है। बालक कृष्ण के रूप और उनकी चेष्टाओं के वर्णन में सूर ने भाषा– शैली के उक्त दोनों रूपों प्रयोग किया है। रूप वर्णन में अलंकृत शैली का प्रयोग है और बालक की स्वाभाविक चेष्टाओं के वर्णन में व्यावहारिक शैली का प्रयोग हुआ है।

74. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 125

संस्कृतनिष्ठ भाषा और अलंकृत शैली का उदाहरण

अति सुदेश मृदु हरत चिकुर मन मोहन सुख बगराई।
मानौ प्रगट कंज पर मंजुल अलि अवली घिरि आई।
दूध दंत दुति कहि न जाति कछु अद्‌भुत उपमा पाई।
किलकत हँसत दुरति प्रगटति मनु धन में विज्जु छपाई[75]

★ ★ ★

मंजु मेचक मृदुल तनु, अनुहरत भूषन भरनि
मनहुँ सुभग सिंगार सिसु तरू फर्यो अद्‌भुत फरनि।
चलत पद प्रतिबिम्ब मनि आँगन घुटुरूवन करनि।
जलज संपुट सुभग छवि भरि लेति उर जनु धरनि।[76]

बोलचाल की सरल भाषा और व्यावहारिक शैली का उदाहरण

सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरूनि चलत रेनु तन मंडित मुख दधि लेप किए।

★ ★ ★

सिखवति चलन जसोदा मैया
अरबराइ करपानि गहावत डगमगाइ धरनी धरै पैया।[77]

★ ★ ★

जसोदा हरि पालनै झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै, जोइ–सोइ कछु गावै।।
मेरे लाल कौ आउ निंदरिया, काहै न आनि सुवावै
तू काहै नहिं बेगिहि आवै, तोकों कान्ह बुलावै।
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै कै रहि, करि–करि सैन बतावै।।
इहिं अन्तर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरै गावै
जो सुख सूर अमर–मुनि दुरलभ, सो नँद–भामिनि पावै।।[78]

सूरसागर में भाषा–शैली के इस भेद को एक अन्य प्रकार से भी समझा जा सकता है। विनय के पदों में संस्कृतनिष्ठ भाषा और अलंकृत शैली का प्रयोग बहुत कम मिलेगा। इसी प्रकार वियोग और वेदना मूलक पद भी सरल भाषा और व्यावहारिक शैली में लिखे गए हैं। मोटे तौर पर विभाजन करना हो

---

75. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 125
76. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 125
77. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 125
78. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 125

तो कह सकते हैं कि संस्कृतनिष्ठ भाषा और अलंकृत शैली का प्रयोग सबसे ज्यादा रूप वर्णन संबंधी पदों में हुआ है। अनुभूतियों के चित्रण में सूर ने सर्वत्र सरल भाषा का प्रयोग किया है। बहुत ढूंढने से इसके अपवाद मिल सकते हैं लेकिन आम तौर से भाषा–शैली के आधार पर यह विभाजन उचित प्रतीत होता है।

सूर ने वर्णनात्मक शैली में बहुत कम पद लिखे हैं। उन्होंने सर्वत्र वस्तुओं, व्यापारों और अनुभूतियों का चित्रण किया है। अलंकृत शैली वाले चित्रों में गहरे रंगों का प्रयोग है और व्यावहारिक शैली के चित्र रेखाओं के माध्यम से बनाए गए हैं, यदि कहीं उनमें रंगों का प्रयोग आवश्यक हुआ तो बहुत हल्का रंग चढ़ाया गया है। दोनों प्रकार के चित्र अत्यंते सजीव हैं। भाषा–शैली को भाव के अनुरूप ढालने का जितना सजग प्रयास सूर ने किया, उतना बहुत कम कवि करने में सफल हुए हैं। दैन्य, निरासा, विषाद, वेदना का चित्रण करते समय वे अधिक से अधिक तीन अक्षरों वाले शब्दों का प्रयोग करते हैं। उदाहरणार्थ,

अब कै राखि लेहु भगवान।
हौं अनाथ बैठ्यो द्रुम–डरिया, पारधि साधे बान।।
ताकै डर मैं भाज्यौ चाहत, ऊपर ढुक्यौ सचान।
दुहूँ भाँति दुख भयो आनि यह, कौन उबारै प्रान?
सुमिरत ही अहि डस्यौ पारधी, कर छूट्यौ संधान।
सूरदास सर लग्यौ सचानहि, जय–जय कृपानिधान।।[79]

छः पंक्तियों के उपर्युक्त पद में चार पंक्तियों तक सूर ने कहीं भी तीन अक्षर से अधिक बड़े शब्द नहीं रखे हैं, अन्तिम दो पंक्तियों में चार और पाँच अक्षरों के शब्द हैं, वह भी इसलिए कि तब तक बहेलिए के हाथ से तीर छूटकर बाज को लग जाता है और वह पक्षी, जो रक्षा के लिए पुकार रहा था, बच जाता है।

79. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 125

वियोग और वेदना संबंधी पदों मे सर्वत्र भाषा की यह विशेषता देखी जा सकती है। यशोदा ने देवकी के नाम जो संदेश भेजा है और श्रीकृष्ण ने उद्धव के माध्यम से उसका जो उत्तर दिया है दोनों में भाषाशैली का यही स्तर है। भ्रमरगीत के जिन पदों में गोपियों ने अपनी वेदना अभिव्यक्त की है उनमें प्रायः ऐसी ही भाषा–शैली का प्रयोग है और जिनमें उद्धव का मजाक उड़ाया है, उनमें भाषा सरल होते हुए बड़ी चुटीली हो गयी है। नोंक –झोंक का वर्णन करने में सूरदास बहुत सिद्ध हैं। ऐसे अवसरों पर उनकी भाषा सरल होते हुए बहुत नाटकीय हो जाती है। नाटक अथवा प्रबंध में संवाद रचना के लिए जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग होता है सूर ने अपने संवादों में वैसी ही भाषा का प्रयोग किया है। वह संवाद चाहे राधा–कृष्ण की प्रथम भेंट के अवसर का हो अथवा उद्धव गोपी–संवाद हो।

भाषा संस्कृतनिष्ठ हो, अथवा सरल, उससे काव्यत्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह सोचना भूल होगी कि जहाँ संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग हैं, वहाँ काव्यत्व अधिक है और जहाँ सरल भाषा का प्रयोग है, वहाँ काव्यत्व न्यून है। हम तो यह कहेंगे कि जहां सरल भाषा का प्रयोग है वहाँ कविता का स्तर अपेक्षाकृत नीचा है। इसे हम यौं समझ सकते हैं। जैसा कि हमने पहले ही कहा, वस्तुवर्णन में अलंकृत भाषा–शैली का प्रयोग हुआ है और अनुभूतियों के चित्रण में व्यावहारिक शैली अपनायी गयी है। इस बात में शायद कोई मतभेद न हो कि वस्तुवर्णन मूलक कविता, अनुभूति चित्रण मूलक कविता की अपेक्षा दोयम दर्जे की हुआ करती है। यदि किसी को इस बात में आपत्ति हो तो वह अधिक से अधिक यह कह सकता है कि अलंकृत शैली और व्यवहारिक शैली दोनों मे काव्यत्व का स्तर समान है किन्तु यह तो किसी भी स्थिति में नहीं स्वीकार किया जा सकता कि जहाँ भाषा सरल है वहाँ काव्यत्व की कोई हानि हुई हो। साहित्यिक ब्रजभाषा का व्यवस्थित रूप सर्वप्रथम सूर के काव्य में देखने को मिलता है।

छन्द

कविता का छन्द से बहुत पुराना और घनिष्ठ संबंध है। हिन्दी साहित्य में सूर के आविर्भाव से पूर्व काव्य में छन्द की अनेक पद्धतियां प्रचलित थीं। अपभ्रंश में दोहों का इतना अधिक प्रचार था कि मात्र दोहा या दूहा कहने से अपभ्रंश का बोध होता था। चन्द के पृथ्वीराज रासो में छप्पयका प्रयोग सबसे अधिक हुआ है। भाटों में कवित्त अथवा घनाक्षरी का विशेष प्रचार था। आजकल जिस प्रकार काव्यपाठ अथवा कविता पढ़ना शब्द विशेष प्रचलित है, उसी प्रकार उस समय कवित्त पढना कहा जाता है। कवित्त पढ़ने का अर्थ काव्यपाठ करना होता था। दोहा और घनाक्षरी मुक्तक काव्य के छन्द थे, वीरगाथात्मक प्रबंधो में छप्पयों का विशेष प्रयोग होता था। ये सभी लौकिक काव्य के छन्द थे। जैन कवियों के धार्मिक आख्यान काव्यों में चौपाई छन्द का प्रयोग होता था जिसे उस समय पद्धरिया कहते थे। विद्वानों ने सूर सागर में उपर्युक्त सभी प्रकार के छन्दों को ढूँढ़ लिया है।

सूरसागर गीतकाव्य है। उसकी रचना विभिन्न राग–रागिनियों में गाए जाने वाले पदों में हुई है। वर्णनात्मक अंश, जिसमें छन्दों का प्रयोग हुआ है, बहुत कम हैं। विभिन्न राग–रागिनियों में गाए जाने वाले पदों में छन्दों को इस प्रकार छिपाकर रखा गया है कि साधारण दृष्टि से देखने पर उनकापता नहीं चलना। एक बात और है। राग–रागिनियों की विशुद्धता को बनाए रखने के लिए वर्णों और मात्राओं के नियमों को कवि ने बहुत शिथिल कर दिया हैं। सूर की दृष्टि मे छन्द की अपेक्षा गेयता की प्रधानता थी। इसलिए उन्होंने सूर सागर में कोई भी छन्द अपने विशुद्ध रूप में नहीं अपनाया। सूरसागर में कोई भी छन्द अपने विशुद्ध रूप में शायद ही कहीं आया हो। कवि ने आवश्यकतानुसार उनमें कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य कर दिया है। इन अनेक कारणों से कभी–कभी यह भ्रम होता है कि सूरसागर में छन्दों का प्रयोग नहीं है। किन्तु वास्तविकता

ऐसी नहीं। विभिन्न विद्वानों की खोजों से सूरसागर में लगभग दो दर्जन प्रकार के छन्दों का पता लग चुका है।

वर्णनात्मक अंशों में छन्दों की पहचान करना सरल है क्योंकि वहाँ गेयता पर उतना ध्यान नहीं है और न आरम्भ में 'टेक' या 'ध्रुवक' ही रखा गया है जबकि गीतात्मक अंशों में छन्दों को ढूँढना अत्यन्त कठिन कार्य है। सुविधा के लिए वर्णनात्मक और गीतात्मक अंशों में प्रयुक्त छन्दों पर अलग अलग विचार करना उपर्युक्त होगा।

वर्णनात्मक अंशों में प्रयुक्त छन्द

सूरसागर में वर्णनात्मक अंश तीन प्रकार के हैं। भागवत के अनेक कथा प्रसंगों को सूर ने वर्णनात्मक शैली में प्रस्तुत किया है, कहीं–कहीं दो भिन्न प्रसंगों में सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उनके बीच कुछ वर्णनात्मक अंश का समावेश कर दिया गया है और कहीं कहीं सामान्य विषयों का विस्तार करते समय वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। इन अंशों में मुख्यतः चौपाई, दोहा, रोला तथा उनके मिश्रण से बने कुछ नवीन छन्दों का प्रयोग हुआ है। चौपाई की मात्राओं में तनिक परिवर्तन से चौपाई, चौबोला और पादाकुलक छन्द बन जाते हैं। इन्हें चौपाई, का ही कुछ परिवर्तित रूप समझना चाहिए। सूरसागर में केवल 16 मात्राओं के चौपाई छन्दों का प्रयोग न होकर जगह–जगह उनके स्थान पर उनके परिवर्तित रूप–चौपाई चौबोला और पादाकुलक का प्रयोग है। जैसा कि पहले ही कह आए हैं, सूर के आविर्भाव के पूर्व आख्यान काव्यों के लिए चौपाई छन्द का प्रयोग रूढ़ हो गया था। प्रायः सभी आख्यान काव्यों में चौपाई के साथ दोहा छन्दों का मिश्रण होता है। सात–आठ चौपाइयों के बाद एक दोहा रख देने से वर्णन में अधिक रोचकता आ जाती है। सूर ने वर्णनात्मक अंशों में जहाँ चौपाई अथवा उसमें किन्ञित परिवर्तन से बने विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया है, वहाँ बीच–बीच में दोहा को स्थान नहीं दिया है। इससे उनके

आख्यानों में नीरसता आ गयी है। सूरसागर के प्रथम स्कन्ध से लेकर नवम स्कन्ध तक सभी आख्यान चौपाई छन्द में है। दशम स्कन्ध में अधिकांश भागवत कथा के प्रसंगों में भी चौपाई छन्द का प्रयोग किया गया है।

दोहा और रोला के मिश्रण से बने नवीन छन्द के प्रयोग में सूर ने विशेष रूचि दिखाई है। दूसरे, तीसरे और नवें स्कन्ध के कुछ कथा–प्रसंग इन छन्दों में लिखे गये हैं। वर्णानात्मक के लिए सूर ने इन छन्दों का विशेष रूप से अविष्कार किया था। उनके तीन भ्रमरगीतो मे दूसरा भ्रमरगीत रोला और दोहा छन्दों के मिश्रण से बना है।

नन्ददास ने उसी के अनुकरण पर अपना भ्रमरगीत लिखा था। रोला और दोहा के मिश्रण से बने इस नवीन छन्द का एक उदाहरण इस प्रकार है।

तब इत उत बहराय नीर नैनन मे सोख्यो।
ठानी कथा प्रबोध बोलि सब गुरू स मोख्यो।
जो ब्रज मुनिवर ध्यावहीं पर पावहिं नहिं पार।
सो ब्रत सीखौ गोपिका, छांड़ि विषय विस्तार।।[80]

गीतात्मक अंशों मे प्रयुक्त छन्द

डॉ0 ब्रजेश्वर वर्मा और डॉ0 हरवंशलाल शर्मा ने सूरसागर के गीतात्मक अंशों में लगभग 20 प्रकार के छन्दों का उल्लेख किया है। उनके नाम हैं– चन्द्र, भानु, कुण्डल, सुखदा, राधिका, उपमान, हीर, तोमर, शोभन, रूपमाला, गीतिका विष्णुपद, सरसी, हरिपदसार, लावनी, बीर, सवैया, हंसाल और हरिप्रिया।

मात्राओं की संख्या को ध्यान में रखकर देखें तो 17 मात्राओं से लेकर 46 मात्राओं तक के छंद सूरसागर में आए हैं। चन्द्र में 17, भानु मे 21, कुंडल, सुखदा और राधिका में 22, उपमान और हीर में 23, तोमर, शोभन और रूपमाला में 24, गीतिका और विष्णुपद में 26, सरसी और हरिपद में 27, सार में

80. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 129

28, लावनी में 30, बीर में 31, सवैया में 32, हंसाल में 37 और हरिप्रिया में 46 मात्राएं होती हैं। इस प्रकार मात्राओं की संख्या के आधार पर सूरसागर में छन्दों के लगभग एक दर्जन भेद मिलते हैं। कुछ प्रमुख छन्दों के उदाहरण निम्नलिखित हैं–

कुंडल

ऐसो गोपाल निरखि तन मन धन वारों।
नव किसोर मधुर, मुरति, सोभा उर धारौं।[81]

उपमान

सुता महर वृष भानु की नंद सदनहिं आई।
गृह द्वारैंही अजिर मैं, गो दुहत कन्हाई।[82]

शोभन

चौक चंदन लीपि कै धरि आरती संजोइ।
कहति घोष कुमारि ऐसौ अनंद जौ नित होइ।[83]

विष्णुपद

ब्रज बनिता सत जूथ मंडली मिलिकर परस करे।
भुज मृनाल भूषन तोरन जुत कंचन खंभ खरे।[84]

सार

पाई पाई है रे भैया कुंज पुंज में टाली।
अबकै अपनी हटकि चरावउ जैहै भटकी घाली।[85]

लावनी

ब्रज घर घर आनंद बढ्यौ अति प्रेम पुलक न समात हियै।
जाकौं नेति मेति स्रुति गावत ध्यावत सुरमुनि ध्यान धरै।[86]

---

81. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 129
82. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 129
83. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 129
84. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 129
85. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 130
86. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 130

सवैया

भावी नहीं मिटै काहूकी करता की गति जाति न जानी।
कहौ कहाँ तै स्याम न उबर्यो किंहिं राख्यौ तिहिं अवसर आनी।[87]

अलंकार

भारतीय साहित्य–चिन्तन में अलंकार शब्द का प्रयोग दो रूपों में देखने को मिलता है– व्यापक अर्थ में और संकीर्ण अर्थ में। व्यापक अर्थ में अलंकार सम्पूर्ण काव्यशास्त्र का वाचक है। भामह, वामन, रूद्रट के काव्यशास्त्र विषयक ग्रंथो को इसीलिए 'काव्यालंकार' कहा गया है। संकीर्ण अर्थ में अलंकार काव्य के उस तत्व को कहते हैं जिसकी सहायता से काव्य की शोभा में अभिवृद्धि की जाती है। शरीर की शोभा बढ़ाने में जों महत्व आभूषणों का है, काव्य की शोभा बढ़ाने में वही स्थान अलंकारों का समझना चाहिए। शब्द और अर्थ से मिलकर काव्य का शरीर बनता है और उस शरीर में रस आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित होता है। शरीर की शोभा की शोभा आभूषण से नहीं आत्मा अथवा जीवनतत्व से होती है। पत्थर की सुन्दर से सुन्दर मूर्ति भी सजीव शरीर की बराबरी नहीं कर सकती। निर्जीव शरीर को अलंकारों से सुसज्जित कर देने पर भी वह हृदय में आह्लाद नहीं उत्पन्न कर सकता।

ाधुनिक समीक्षकों ने अलंकार को भावों के उत्कर्ष और सौन्दर्य के उद्बोधन में सहायक तत्त्व के रूप में स्वीकार किया है। आचार्य शुक्ल के शब्दों में– "जिस प्रकार एक कुरूप स्त्री अलंकार लादकर सुन्दर नहीं हो सकती, उसी प्रकार प्रस्तुत वस्तु या तथ्य की रमणीयता के अभाव में अलंकारों का ढेर काव्य का सजीव स्वरूप नहीं खड़ा कर सकता। सुन्दर अर्थ की शोभा बढ़ाने में जो अलंकार प्रयुक्त नहीं, वे काव्यालंकार नहीं। वे ऐसे ही हैं जैसे शरीर पर से उतार कर किसी अलग कोने में रखा हुआ गहनों का ढेर"।

---

87. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 130

सूर का काव्य भावों का उमड़ता हुआ 'सागर' है। रति अथवा प्रेम के त्रिविध रूपों (भगवद् विषयक रति, दाम्पत्य रति और वात्सल्य रति) का जैसा सजीव वर्णन उनके काव्य में देखने को मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इसके बावजूद उन्होंने अलंकारों की उपेक्षा नहीं की है।

धिकांश स्थलों पर उनके द्वारा प्रयुक्त अलंकार भावों के उत्कर्ष और सौन्दर्य के उद्‌बोधन में सहायक होकर आए हैं किन्तु कहीं कहीं विशेष रूप से दृष्टकूटों में शब्द चमत्कार के लिए भी अलंकारों का प्रयोग हुआ है, यद्यपि ऐसे स्थल परिमाण में अत्यन्त न्यून हैं।

ैसा कि शुक्ल जी ने कहा है, 'सूर में जितनी सहृदयता है उतनी ही वाग्विदग्धता' जायसी, केशव तथा अन्य रीतिकालीन कवियों के साथ सूर के अलंकार विधान की तुलना करते हुए डॉ0 हरवंशलाल शर्मा ने बहुत ठीक लिखा है,–"उनकी अलंकार योजना मे न तो केशवदास के समान काव्यशास्त्र–ज्ञान–प्रदर्शन की प्रवषत्ति है, और न जायसी के समान एक–एक पंक्ति में कई–कई अलंकार ठूँसकर संकर और संसषष्टि करने का आग्रह ही। जहाँ रीतिकालीन कवि अनेक अलंकारों से सजाने की धुन में अपनी कविता नागरी को ग्राम्य रूप देकर 'विनायक प्रकुर्वाणों रचयामास वानरम्' वाली उक्ति को चरितार्थ कर आलोचकों के उपहास्य बने, वहाँ सूर ने भाव और कला का उचित संतुलन रखकर अपनी कला को 'कला' ही बना दिया हैं"।

सूरसागर में शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों का प्रयोग अधिक हुआ है। शब्दालंकारों के प्रयोग के लिए उनकी एक मात्र रचना 'साहित्य लहरी' दर्शनीय है। उसमें शब्द चमत्कार प्रदर्शन की ओर कवि की विशेष दृष्टि रही है। सूरसागर मे शब्दालंकारों का बहुत सीमित प्रयोग हुआ है।

धिकांश पदों में अनुप्रास के अत्यन्त स्वाभाविक प्रयोग देखने को मिलते हैं। जैसे–

जनम–जनम बहु करम किये हैं, तिनमैं आपुन आपु बँधायौ।
ज्यों सुक सेमर सेव आस लगि निसिवासर हठि चित्त लगायौ।
रीतौ पर्यो जबै फल चाख्यौ उड़ि गयौ तूल तांवरो आयौ
ज्यों कपि डोर बांधि बाजीगर कन–कन कौं चौहटै नचायौ।
सूरदास भगवत भजन बिनु काल व्याल मैं आपु डसायौ।[88]

चकई री चलि चरन सरोवर, सोई सायर सुख जोगु,
जहां सनक शिव हंस मीन मुनि,
जिहिं सर सुभग मुक्ति मुक्ताफल, सो सर छाँड़ि कुबुद्धि बिहंगंम,
सोभत सूरज दास आदि पदों के अनुप्रास का प्रयोग दर्शनीय हैं।[89]

अनुप्रास के अतिरिक्त यमक, श्लेष और वक्रोक्ति के अनेक उदाहरण सूरसागर में देखने को मिलते हैं।

यमक अलंकार

ऊधौ जोग जोग हम नाहीं।[90]

यहां एक जोग का अर्थ योग साधना और दूसरे जोग का अर्थ योग्य है।

ताते स्याम भई कालिन्दी सूर स्याम गुन न्यारो।

ह्वै गई स्याम की पाती।[91]

श्याम शब्द को लेकर जहां यमक की सृष्टि की गयी है, वहां प्रायः एक श्याम का अर्थ कालारंग और दूसरे श्याम का अर्थ श्रीकृष्ण है।

'सारंग' और 'हरि' शब्द को लेकर सूर ने सबसे अधिक यमक की सृष्टि की है। जैसे –'सारंग सारंग धरहिं मिलावहु' टेक से आरंभ होने वाले पद मे सारंग शब्द का सोलह बार प्रयोग हुआ है और प्रत्येक बार उसका अर्थ पूर्व अर्थ से भिन्न है। इसी प्रकार 'हरि मोकौ हरि भष करि जुगयौ, टेक से आरम्भ होने वाले पद में 'हरि' शब्द का पन्द्रह बार प्रयोग हुआ है और हर बार उसका अर्थ भिन्न रखा गया है।

---

88. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 131
89. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 131
90. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 131
91. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 131

श्लेष अलंकार

निरखत अंक स्याम सुन्दर के बार बार लावति लै छाती।
लोचन जल कागद मसि मिलिकै ह्वै गई स्याम स्याम जू की पाती[92]

यहाँ 'अंक' और 'श्याम' शब्द के दो–दो अर्थ होने से श्लेष है।

ऊधौ हरि गुन हम चकडोर।
गुन सौं ज्यौं भावै त्यौं फेरौ यहै बात कौ ओर।
गुन का अर्थ गुण और रस्सी दोनों होता है।[93]

यमक अलंकार का प्रयोग प्रायः चमत्कार प्रदर्शन के लिए हुआ है किन्तु श्लेष के प्रयोग से भाव व्यंजना अधिक स्पष्ट और मर्मस्पर्शी हो गयी है।

वक्रोक्ति अलंकार

सूरदास ने संवादों के अवसर पर कथन के सीधे ढंग को छोड़कर वक्रोक्ति अथवा उक्ति वैचिभ्य का सहारा लिया है। उनकी वक्रोक्तियाँ अधिकांश स्थलों पर भाव–प्रेरित हैं किन्तु कहीं कहीं चमत्कार प्रदर्शन के लिए भी लायी गयी हैं। जैसे, राधा–कृष्ण के प्रथम मिलन के अवसर पर दोनों के मध्य जो वार्तालाप होता है, उसमें भावप्रेरित वचनविदग्धता के दर्शन होते हैं–

काहे को हम ब्रजतन आवति, खेलति रहति आपनी पौरी।
सुनति रहति स्रवननि नंद ढोटा, करत फिरत माखनद दधि चोरी।
तुम्हरौ कहा चोरि हम लेहैं, खेलन चलौ संग मिलि जोरी।[94]

और दानलीला के अवसर पर प्रयुक्त वाक्रोक्तियों में चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति प्रधान हो गयी हैं–

---

92. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 132
93. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 132
94. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 132

लैहौं दान इननि कौं तुमसौं।
मत्त गयंद, हंस हम सौहैं, कहा दुरावति हम सौं।।
केहरि, कनक–कलस अमृत के, कैसैं दुरैं, दुरावति।
विद्रुम, हेम वज्र के कनुका, नाहिंन हमहिं सुनावति।।
खग कपोत, कोकिला, कीर खंजन, चंचल मृग जानति।
दृष्टिकूटों में उक्ति वैचिभ्य के ऐसे नमूने भरे पड़े हैं।[95]

व्यंग्य और विनोद के अवसरों पर भी सूरदास कथन के सीधे ढंग को छोड़ उक्ति वैचित्र्य का सहारा लेते हैं। जैसे–

आए जोग सिखावन पांड़े।
परमारथी पुराननि लादे, ज्यौं बनजारे टांड़े।[96]

यहां पांड़े, परमारथी और पुराननिलादे तीनों शब्द उपहासात्मक हैं।

रूप चित्रण अथवा सौन्दर्यांकन में सूरदास ने सादृश्यमूलक अर्थालंकारों का अत्यन्त सुरूचिपूर्ण प्रयोग किया है। सादृश्य मूलक अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और रूपकातिशयाक्ति का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है। कहीं–कहीं प्रतीप और व्यतिरेक अलंकारों के उदाहरण भी देखने को मिलते हैं।

उपमा अलंकार

चतुर नारि सब कहति बिचारि।
रोमावली अनूप विराजति, जमुना की अनुहारि।[97]

★ ★ ★

रोमावली रेख अति राजति।
सूच्छम वेष धूम की धारा, नव घन ऊपर भ्राजति।[98]

★ ★ ★

95. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 132
96. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 132
97. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 133
98. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 133

मुख छवि कहौं कहाँ लगि माई।
भानु उदै ज्यौं कमल प्रकाकसत रवि ससि दोऊ जोति छपि जाई।[99]

रूपक अलंकार

सूरसागर में सांग रूपक के कुछ बहुत सुन्दर प्रयोग देखने को मिलते हैं। इस दृष्टि से दो पद विशेष उल्लेखनीय हैं– एक पद में डुबते हुए आदमी का चित्र है और दूसरे में एक नर्तक का चित्र अंकित किया गया है।

अब कै नाथ, मोहिं उधारि।
मगन हौं भव–अंबुनिधि मैं, कृपासिंधु मुरारि।।
नीर अति गंभीर माया, लोभ लहरि तरंग।
लिए जात अगाध जल मैं गहे ग्राह–अनंग।।
मीन इंद्री तनहिं काटत, मोट अघ सिर भार।
पग न इत उत धरन पावत, उरझि मोह–सिवार।।
थक्यौ बीच बिहाल विह्वल, सुनौ करूना–मूल।
स्याम, भुज गहि काढ़ि लीजै, सूर ब्रज कैं कूल।।[100]

★ ★ ★

अब मैं नाच्यों बहुत गुपाल।
काम क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल।।
महामोह के नूपुर बाजत, निंदा–सब्द–रसाल।
भ्रम भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल।।
तृष्नानाद करति घट भीतर, नाना विधि दै ताल।
काया को कटि फेंटा बाँध्यो, लोभ–तिलक दियौ भाल।।
कोटिक कला काछि दिखराई, जल थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अबिद्या, दूरि करौ नंदलाल।।[101]

उत्प्रेक्षा अलंकार

सादृश्य मूलक अलंकारों में उत्प्रेक्षा का प्रयोग सूरसागर में सबसे अधिक हुआ है। श्री कृष्ण की बाललीला का वर्णन करते समय कवि ने उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगा दी है।

---

99. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 133
100. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 133
101. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 133

कुलही लसति सिर स्याम सुन्दर कैं बहु विधि सुरंग बनाई।
मानौ नव घन ऊपर राजत मधवा धनुष चढ़ाई।।
अति सुदेश मृदु हरत चिकुर मनमोहन–मुख बगराई।
मानों प्रगट कंज पर मंजुल अलि–अवली धिरि आई।।
दूध–दंत–दुति कहि न जाति कछु अद्‌भुत उपमा पाई।
किलकत–हँसत दुरति–प्रगटिति मनु धन मैं बिज्जु छटाई।।[102]

रूपकातिशयोक्ति

विभिन्न अंगों से सम्बन्धित उपमानों के कथन द्वारा जहाँ रूप वर्णन किया गया है, वहाँ रूपकातिशयोक्ति अलंकार आया है। सूरदास के आविर्भाव से पूर्व इस पद्धति पर रूप वर्णन करने की परम्परा चल पड़ी थी। विद्यापति के कई पदों मे रूपकातिशयोक्ति के माध्यम से सौन्दर्यांकन किया गया है। सूरसागर में रूपकातिशयोक्ति के अनेक अदाहरण हैं। यथा–

अद्‌भुत एक अनूपम बाग।
जुगल कमल पर गज बर क्रीड़त, तापर सिंहकरत अनुराग।।
हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कंज– पराग।
रूचिर कपोत बसत ता ऊपर, ता ऊपर अमृत–फल लाग।।
फल कर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, ता पर सुक, पिक, मृग–मद, काग।
खंजन, धनुष, चन्द्रमा, ऊपर, ता ऊपर इक मनिघर नाग।।[103]

प्रतीप
देखि री हरि के चंचल नैन।
खंजन–मीन–मृगज चपलाई, नहिं पटतर इक सैन।।
राजिवदल, इन्दीवर, सतदल, कमल कुसेसय जाति।
निसि मुद्रित प्रातहिं वै विकसित ये विकसित दिन राति।।[104]

व्यतिरेक
उपमा नैन न एक रही।
कविजन कहत–कहत सब आए, सुधि करि नाहिं कही।।
कहि चकोर विधु मुख बिनु जीवत, भ्रमर नहीं उड़ि जात।

---

102. *डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 134*
103. *डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 134*
104. *डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 135*

हरि–मुख–कमल–कीष विछुरे तैं, ठाले कत ठहरात।।
ऊधौ बधिक व्याध ह्वै आए, मृग सम क्यों न पलात।।
भागि जाहिं बन सघन स्याम मैं, जहां न कोऊ घात।।
खंजन मन–रंजन न होहिं ये, कबहुं नहीं अकुलात।
पंख पसारि न होत चपल, गति हरि समीप मुकुलात।।
प्रेम न होइ कौन विधि, कहिये, झूठैं ही तन आड़त।
'सूरदास' मीनता कछू इक, जल भरि कबहूँन छाँड़त।।[105]

बिम्ब अथवा भावचित्र

काव्य में अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम भाषा है। सामान्य बोलचाल की भाषा से काव्य की भाषा भिन्न होती है। काव्यभाषा में कौन–कौन सी विशेषताएं होनी चाहिए, इसकी चर्चा करते हुए प्रायः सभी आलोचकों ने यह स्वीकार किया है कि काव्य की भाषा बिम्ब विधायिनी होनी चाहिए, जबकि सामान्य बोलचाल की भाषा मात्र सांकेतिक होती है। कवि का कार्य वर्णन करना नहीं, बल्कि चित्रण करना होता है। सत्यम्वद, धर्मचर, स्वाध्यायान्मा प्रमदः(सत्यबोलो, धर्म का आचरण करो, स्वाध्याय से प्रसाद न करो) इस तरह की उपदेशात्मक उक्तियाँ केवल शास्त्र के लिए उपयोगी होती हैं। कवि को अपने कथन को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए वस्तुओं, व्यापारों और अनुभूतियों का सजीव चित्र खड़ा करना पड़ता है। जो कवि इस कार्य में जितना सफल होता है, उसकी कविता उतनी ही उच्चकोटि की मानी जाती है और जो कवि इसमें सफल नहीं होता, उसकी कविता प्रभावशाली और उच्चस्तरीय नहीं होती। सच पूछा जाय तो कविकर्म, बिम्बविधान का पर्याय है। आधुनिक अर्थ में बिम्ब का प्रयोग यद्यपि इस शताब्दी में हुआ किन्तु किसी न किसी रूप में उसकी स्थिति प्राचीनकाल से ही थी। भारत वर्ष में बाल्मीकि और कालिदास के काव्यों से लेकर आधुनिक युग में प्रसाद, पन्त और अज्ञेय की कविता तक और पश्चिम में सेक्शपीयर, मिल्टन, वर्ड्सवर्थ से लेकर इलियट तक के काव्य में बिम्बों का महत्त्वपूर्ण स्थान देखने को मिलता है। सूरसागर भी इसका अपवाद नहीं है।

105. *डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 135*

बिम्ब अंग्रेजी के 'इमेज' शब्द से बना है। इसका सामान्य अर्थ होता है अनुकृति, छाया अथवा समानता। मनोविज्ञान और काव्य अथवा साहित्य में इस शब्द का प्रयोग विशेष अर्थ में होता है। मनोविज्ञान में बिम्ब का अर्थ "मानसिक पुनर्निर्माण" लिया गया है। प्रत्यक्ष वस्तु के अभाव में भी, उसका जिस रूप में प्रत्यक्षीकरण होता है, उसी को बिम्ब कहते हैं। हम उसे मानसिक चक्षु से देखे जाने वाली वस्तु कह सकते हैं। काव्य बिम्ब के स्वरूप निर्धारण में मनोवैज्ञानिक बिम्ब से सहायता ली जा सकती है। सामान्यत' काव्य तथा अन्य कलाओं में किसी सजीव या जड़ वस्तु की छाया को बिम्ब कहा जाता है। आलोचकों ने उसे अनेक प्रकार से परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। कुछ लोग इसके क्षेत्र को अधिक व्यापक मानते हैं और कुछ लोग इसकी व्याप्ति अधिक नहीं मानते। बिम्ब को व्यापक अर्थ में स्वीकार करने वाले आलोचकों का मत है कि सादृश्य विधान के सभी रूप बिम्ब कहे जा सकते हैं जब कि उसे अपेक्षाकृत संकीर्ण अर्थ में लेने वालों का विचार है कि बिम्ब भावों या विचारों के लिए प्रयुक्त ऐन्द्रिय गुणों से युक्त वस्तु विधान है जो प्रायः शब्दों के माध्यम से प्रकट होता है। बिम्ब में संवेदनात्मक गुण की प्रधानता होनी चाहिए। संवेदना की अनुभूति, दृश्य, श्रव्य, स्पर्श, रूप, स्वाद के विभिन्न माध्यमों से प्रकट होती है। इसलिए जो शब्द विधान इन इन्द्रियों की कल्पना में किसी वस्तु को प्रत्यक्ष कर सके, उसे बिम्ब की संज्ञा दी जाएगी।

सभी प्रकार के सादृश्य विधान को बिम्ब नहीं कहा जा सकता किन्तु उसमें जहाँ ऐन्द्रिय सम्बेदनाओं को जागृत करने का गुण विद्यमान हो , वहाँ उसे बिम्ब अथवा भावचित्र की कोटि में रखना उचित होगा। शरीर के प्रत्येक अंग से सम्बन्धित परम्परागत उपमानों को गिना देना, सादृश्य विधान तो कहा जा सकता है किन्तु वह बिम्ब अथवा भावचित्र की श्रेणी में नहीं आ सकता। मुख चन्द्रमा के समान है, नेत्र कमल के समान हैं, भौहें धनुष के समान है, ग्रीवा सुराही के समान है आदि कथन बिम्ब विधान नहीं हो सकते। 'नवकंज लोचन,

कंजमुख, करकंज, पद कंजारूनम्' इस सादृश्य विधान में कंज शब्द की पुनः पुनः आवुत्ति से एक विशिष्ट ध्वनि अवश्य उत्पन्न होती है किन्तु कल्पना मं कोई चित्र नहीं उपस्थित होता, इसलिए इसे भावचित्र कहना उचित न होगा। इसके विपरीत निम्नलिखित उपमान विधान सौन्दर्यानुभूति को जागृत करने के कारण बिम्ब की कोटि में रखा जा सकता है–

कुलही लसति सिर स्याम सुन्दर के बहुविधि सुरंग बनाई।
मानों नवघन ऊपर राजत पघवा धनुष चढ़ाई।[106]

बालक कृष्ण के काले घुँघराले बालों पर रंग–बिरंगी टोपी ऐसी सुन्दर लगती है मानों असाढ़ के काले बादलों में इन्द्र धनुष दिखाई पड़ रहा है। इस तरह का सादृश्य विधान निश्चय ही साधारण सादृश्य विधान से भिन्न हो जाता है। सूरसागर में अधिकांश सादृश्य विधान इसी प्रकार के हैं।

बिम्बों का वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया गया है। कभी विभिन्न वर्गीकरणों में कुछ समानताएँ देखने को मिलती हैं तो कभी उनमें असमानताएं भी प्रतीत होती हैं। किसी एक आलोचक द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण को प्रमाण नहीं माना जा सकता। अनेक वर्गीकरणों का समन्वय करने हुए बिम्बों का वर्गीकरण दो आधारों पर किया जा सकता हैं –

(1) विषयवस्तु के आधार पर
(2) आस्वादन के माध्यमों के आधार पर

विषय वस्तु के आधार पर बिम्ब के तीन भेद हो सकते हैं– मानवीय बिम्ब, प्राकृतिक बिम्ब और प्रकृत के मानवीयकरण द्वारा निर्मित बिम्ब। सूरसागर में बालक कृष्ण के रूप और चेष्टाओं के जितने सजीव और संश्लिष्ट चित्र हैं उन सबको मानवीय बिम्ब के अन्तर्गत समाविष्ट किया जा सकता है। उदाहरणार्थ,

106. *डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 135*

सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरूनि चलत रेनु तन मंडित मुख दधि लेप किए।
लट लटकनि मनु मत्त मधुपगन मादक मधुहिं पिए।
कठुला कंठ ब्रज केहरि जख राजत रूचिर हिए।
धन्य सूर एकौ पल इहिं सुख, का सत कलप जिए।[107]

सूरसागर मे प्रकृति का, आलम्बन रूप में वर्णन बहुत कम है, इसलिए उसमें प्राकृतिक बिम्ब बहुत विरल हैं फिर भी उनका नितान्त अभाव नहीं है। निम्नलिखित पंक्तियों में प्रातःकालीन दृश्य का अत्यन्त सजीव चित्र अंकित हुआ है –

बोले तमचुर, चार्‌यौ जाम को गजर मार्‌यौ,
पौन भयौ सीतल तमि मैं तमसा गई।
प्राची अरूनानी भानु किरनि उज्यारी
नभ छाई, उडुगन चन्द्रमा मलीनता लई।
मुकुले कमल, बच्छ बन्धन विमोह्यो ग्वाल,
चरै चलीं गाइ द्विज पैंती करेकौं दई।
सूरदास राधिका सरस बानी बोलि कहौ,
जागौ प्रान प्यारे जू सबारे की समै भई।[108]

सूर की गोपियाँ प्राकृतिक उपादनो और दृश्यों को अपनी भावना के अनुरूप देखती हैं। संयोग के दिनों में उन्हें प्रकृति में अपने हृदय का उल्लास दिखायी पड़ता है और वियोग की अवस्था में उन्हें वह विषाद मग्न प्रतीत होती है। एक पद में गोपियों ने यमुना को विरहिणी नायिका के रूप में देखा है।

देखियति कालिन्दी अति कारी।
अहौ पथिक कहियौ उन हरि सौं, भई बिरह जुर जारी।।
गिरि–प्रजंक तैं गिरति धरनि धँसि, तंरग तलफ तन भारी।
तट बारू उपचार चूर, जलपूर प्रस्वेद पनारी।।
बिगलित कच कुस काँस कूल पर, पंक जु काजल सारी।
भौंर भ्रमत अति फिरति भ्रमित गति, दिसि–दिसि दीन दुखारी।।
निसि दिन चकई पिय जु रटति है भई मानौ अनुहारी।
'सूरदास' प्रभु जो जमुना गति, सो गति भई हमारी।।[109]

---

107. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 135
108. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 135
109. डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 135

आस्वादन के माध्यमों के आधार पर बिम्ब के पाँच भेद किये गये है– दृश्य बिम्ब, ध्वनि बिम्ब, घ्राण बिम्ब, रसबिम्ब और स्पर्शबिम्ब। सूरसागर में दृश्य बिम्बों की संख्या सबसे अधिक है किन्तु अन्य बिम्बों का भी सर्वथा अभाव नहीं है। प्रत्येक बिम्ब के कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं।

दृश्य बिम्ब

किलकत कान्ह घुटुरूवनि आवत।
मनिमय कनक नन्द कै आँगन, बिम्ब पकरिबैं धावत।।
कबहुँ निरखि हरि आपु छाँह कौं, कर सौं पकरन चाहत।
किलकि हँसत राजत द्वै दतियाँ, पुनि–पुनि तिहि अवगाहत।
कनक–भूमि पर–कर–पग छाया, ह उपमा इक राजति।
करि–करि प्रतपद प्रतिमनि बसुधा, कमल बैठकी साजति।।
बाल–दसा सुख निखि जसोदा, पुनि–पुनि नंद बुलावति।
अँचरा तर लै ढाँकि, सूर के प्रभु कौं दूध पियावति।।[110]

ध्वनि बिम्ब

चिरई चुहचहानी, चंद की ज्योति परानी,
रजनी बिहानी प्राची प्रिय की प्रवान की।
तारिका दुरानी, तम घट्यौ तमचुर बोले,
स्रवन भनक परी ललित के तान की।[111]

★ ★ ★

बोले तमचुर, चार्यौ जाम कौ गजर मार्यौ।
पौन भयौ सीतल तमि मैं तमता गई।[112]

रस बिम्ब

जेंवत स्याम नंद जू की कनियाँ।
कछुत खात, कछु धरनि गिरावत, छवि निरखाति नंद–रनियां।।
बरी–बरा बेसन बहु भाँतिन, व्यंजन विविध अगगनियाँ।
आपुन खात नंदमुख नावत, यह सुख कहत न बनियां।
डारत, खात, खवावत, ग्वालन, कर माखनद दधि दोनियाँ।

---

110. *डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 135*
111. *डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 135*
112. *डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 135*

सद माखन मिश्री मिश्रित करि, मुख नावत छबि धनियाँ।।
जो सुख नंद–जसोदा बिलसत, सो नहिं तीन भुवनियाँ।
भोजन करि अचवन जब कीनों, माँगत 'सूर' जुठनियाँ।।[113]

स्पर्श बिम्ब

तब वे लता लगति अति शीतल अब भई विसम ज्वाल की पुंजैं

★ ★ ★

करति श्रृँगार मैया मन भावत।
सीतल जलहिं उष्ण करि राख्यौ लै लालन को बैठि न्हवावत।

★ ★ ★

नाभि प्रजंति नीर मैं ठाढ़ी, थर–थर अंग कांपति सुकुमारी।

गीततत्व

कला के अगणित रूप और भेद हैं। उनमें तीन प्रधान कहे जा सकते हैं– संगीत, साहित्य और चित्रकला। संगीत स्वर प्रधान होने से कानों का विषय है और चित्रकला, मूर्तिकला आदि चाक्षुष होने से नेत्रगाह्य होते हैं। साहित्य अथवा काव्य की स्थिति उभयात्मक है। उसमें श्रुति मधुरता का गुण संगीत से और गोचरता का ग्रहण चित्रकला से किया जाता है। काव्य अथवा साहित्य यद्यपि उभयात्मक कहा गया तथापि हर समय उसमें दोनों कलाओं से गृहीत तत्वों का समान विनियोग नहीं होता। जहां श्रुति मधुरता अभीष्ट होगी, वहाँ उसका झुकाव संगीत की ओर अधिक होगा और जहाँ वर्ण्य विषय को अधिकाधिक प्रत्यक्ष करने की प्रवृत्ति होगी वहाँ वह चित्रकला के समीप माना जायेगा। कभी कभी काव्य संगीत के इतना समीप पहुँच जाता है कि उसे साहित्य और संगीत में किस दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण समझा जाए, कहना मुश्किल होता है। किसी गवैऐ के मुँह से विद्यापति, सूर अथवा तुलसी के पदों को सुनकर जिस क्षण हम झूम उठते हैं, तत्क्षण निश्चय ही हमारा ध्यान कविता के संगीत तत्व अथवा उसकी गेयता पर विशेष रहता है। कभी–कभी यहाँ तक देखा गया है कि वालो का ध्यान कवि से हटकर गवैए पर टिक जाता है।

113. *डॉ0 ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूर काव्य की समीक्षा, संस्करण 2006, पृ0 135*

कितने फिल्मी गीत ऐसे हैं, जिनके गीतकार का नाम हम मुश्किल से बता सकेंगे लेकिन उनके बोल सुनते ही गायक का नाम हमारी जुबान पर आ जाता है। गीत मे संगीत के तत्त्वों का समावेश अवश्य होता है किन्तु गीत और संगीत दोनों को अभिन्न नहीं कहा जा सकता। संगीत विशुद्ध स्वर प्रधान होता है उससे किसी अर्थ का बोध नहीं होता जब कि गीत में स्वर और लय के साथ अर्थ का बोध अनिवार्य है। हमें जिसभाषा का ज्ञान नहीं है उस भाषा में लिखे गए गीत को सुनकर उसके साथ हमारा तादात्म्य नहीं हो सकता लेकिन उसके साथ बजने वाली धुन (म्युजिक) का आनन्द हम उसी प्रकार ले सकते हैं जिस प्रकार उस भाषा को जानने वाले श्रोता लेते हैं। काव्य या साहित्य में जिस प्रकार शब्द और अर्थ परस्पर संयुक्त रहते हैं, किसी एक के अभाव में उसका अस्तित्व नहीं हो सकता, उसी प्रकार गीत में संगीत के साथ अर्थ बोध अनिवार्य होता है। संगीत और अर्थतत्त्व दोनों में से किसी एक के अभाव में गीत पूर्ण नहीं हो सकता।

सूरदास को शास्त्रीय संगीत का पर्याप्त ज्ञान था। अंधे होने के कारण वे पदों को लिख नहीं सकते थे केवल गा सकते थे। सूरसागर के लगभग सभी पद श्रीनाथ जी के सम्मुख गाए गये। जिन रागों में उन्होंने पदों को गाया, उन रागों के नाम अब भी उन पदो।के ऊपर अंकित हैं। शास्त्रीय संगीतज्ञ उन पदों को उन्हीं रागों में गाते हैं। उसके बावजूद सूरसागर के पदो को शास्त्रीय संगीत मात्र नहीं कहा जा सकता। उनमें प्रधानता अर्थ की है, संगीत उनका सहायक है। उनके गीतों में संगीत वहीं तक है जहाँ तक वह अर्थ सौरस्य को आच्छाति नहीं करता। डॉ0 मनमोहन गौतम के शब्दों मं "सूर के पदों में कवित्त्व संगीत का दास नहीं है, संगीत कवित्त्व का सहायक बनकर आया है। सूरदास के पदों में संगीत पद की भावुकता को अभिवृद्धि करने, सरसता का संचार करने और अनुकूल भावभूमि का निर्माण करने मात्र का कार्य करता है"।

अध्याय-5

पात्रों का शील निरूपण एवं चरित्र चित्रण

हिन्दी साहित्य में विभिन्न सूधी ज्ञानियों मनीषियों और भक्तों के द्वारा राम के विविध अर्थ प्रस्तुत किये गये है। कर्म, वैराग्य, ज्ञान, योग, उपासना, प्रपत्रि आदि वेदोक्त शुभ 'साधना समुदाय अपनी–अपनी जगह सत्य है। परन्तु युगधर्म के अनुरूप उनका सुविस्तृत विधि विधान से निर्वाह होना दुष्कर है। वैष्णव पुराणों में सर्वाधिक लोकप्रिय श्रीमद्भागवत में राम और कृष्ण की अभेद प्रतिपादित कर भगवान के विभिन्न अवतारों में एकत्व स्थापित कर दिया गया है। प्रथम स्कन्ध के तीसरे अध्याय में भगवान के 22 अवतारों का उल्लेख करते हुए दाशरथिराम को 18 वां और श्री कृष्ण को 22वां अवतार कहा गया है।

ज्ञान और परम्परा के मूल स्रोत वे ही माने गये हैं। इसी विश्वास और मान्यता के आधार पर नीलकंठ ने मन्त्र रामायण की रचना की थी। इस ग्रंथ में नीलकंठ ने वैदिक मन्त्रों का एक संग्रह कर बालकाण्ड से उत्तरकाण्ड तक की रामकथा को वेदमन्त्रों में प्रतिपादित किया है।"

वाल्मीकि रामायण निर्विवाद रूप से रामकथा की प्राचीनतम रचना मानी जाती है, परन्तु इसका रचना काल विवादास्पद है।

प्रचलित मान्यता के अनुसार वाल्मीकि ऋषि रामचन्द्र के समकालीन थे और निर्वासित किए जाने पर सीता ने इन्हीं के आश्रम में आश्रय प्राप्त किया था, परन्तु पश्चिमी विद्वान ए0 श्लेगेल तथा जी0 गोरेसियो ने इसे ईसा से क्रमशः 11वीं और 12वीं शताब्दी की पूर्व रचना मानी है।

एम0 विंटरनित्स का कथन कई साक्ष्यों के आधार पर सर्वथा गलत ठहरता है। रामायण में बौद्धधर्म का कहीं उल्लेख नहीं है, इससे स्पष्ट है कि रामायण की रचना बुद्ध के पूर्व हो चुकी थी। ईसा पूर्व पाँचवी शती में मगधनरेश अजात शत्रु ने पाटिलपुत्र नगर बसाया था। विश्वामित्र के साथ सीता स्वयंबर मे जाते समय राम ने गंगा पार किया था, पर इसी प्रदेश में स्थित पाटिलपुत्र नगर

का उल्लेख रामायण में नहीं है। इसी प्रकार के अनेक साक्ष्य हैं, जिसके आधार पर रामायण कम से कम ईसा के 500 वर्ष पूर्व की रचना तो ठहरती ही है। इस सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता कि वाल्मीकि रामायण ईसा से हजारों वर्ष पूर्व की रचना हो।

यह स्पष्ट है कि हजारों वर्षों से कुशीलव नामक जाति रामायण का मौखिक पाठ करती आ रही थीं। यह जाति काव्यजीवी थी।

बाल्मीकि–रामायण के प्रारम्भ में काव्य रचना की मूल प्रेरणा का जो वृतांत दिया गया है वह स्पष्ट करता है कि वाल्मीकि ने अपने महाकाव्य के नायक का चयन गुणों की विशिष्टता के आधार पर किया है। ज्ञानियों में श्रेष्ठ एवं मुनियों में अग्रगण्य नारद जी से वाल्मीकि ने पूछा "इस समय संसार मे गुणवान, परक्रमी धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवक्ता, और अपने व्रत मे दृढ़ कौन है? सदाचार से मुक्त, सब प्राणियों के कल्याण में तत्पर, विद्वान, सामर्थशाली और देखने में सबसे सुन्दर पुरूष कौन है? मन के वश में रखने वाला, क्रोध रहित कीर्तिमान और डाह से हीन पुरूष कौन है? वह कौन पुरूष है, जिसके रणभूमि में कुपित हो जाने पर देवता भयभीत हो जाते हैं। यह मैं जानना चाहता हूँ। इसके लिए मेरे मन में बड़ा कुतूहल है।

"त्रिलोकी का वृतांत जानने वाले नारद ने वाल्मीकि के ये वचन सुनकर कहा–अच्छा सुनिये, आपने जो गुण गिनाये हैं उनमें से बहुत से दुर्लभ हैं। फिर भी हे मुनि, उनसे युक्त मनुष्य को मैं बताता हूँ, आप सुनें। वे इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए हैं और लोक में 'राम' इस नाम से विख्यात हैं।" वाल्मीकि रामायण में यह संवाद है।

इससे दो बातें स्पष्ट होती हैं पहला, वाल्मीकि ने अपने वर्तमान काल के नायक की जानकारी नारद से चाही थी, दूसरा वाल्मीकि, लोक प्रतिष्ठित, सर्वगुण सम्पन्न, आदर्श, पुरूषोत्तम ऐसा नायक चाहते थे, जिसमें लोक मंगल की

भावना कूट–कूट कर भरी हो, जो समाज के संकटकाल में आदर्श चरित्र नायक के रूप में, शाश्वत रूप से प्रेरणास्त्रोत रहे। 'सूरसागर' के राम में भी हमें उपरोक्त में से अधिसंख्य गुण मिलते हैं। इसके अतिरिक्त सीता, लक्ष्मण, भरत, हनुमान, रावण, मंदोदरी आदि का चरित्र भी सामने उभर कर आता है। ये सभी चरित्र मुख्य रूप से तथा दशरथ, माता कौशिल्या, सुमित्रा और कैकेयी, सुग्रीव, अंगद, जटायु, त्रिजटा तथा कुम्भकर्ण आदि के चरित्र गौड़ रूप से प्रभावित करते हैं। हम यहाँ केवल राम, सीता, भरत, लक्ष्मण, दशरथ, कौशिल्या, सुमित्रा, हनुमान और रावण की चरित्रगत विशेषता का संक्षेप में वर्णन करेंगे।

सूर के राम
राम का चरित्र-चित्रण

सूरदास ने रामकथा के प्रारम्भ में भूमिका के रूप में बताया है कि जय और विजय नाम के दो पार्षद विप्र शाप से असुर हो गये। भगवान ने एक को वाराह रूप धारण कर और दूसरे को नृसिंह रूप धारण कर मारा। ये ही दोनों असुर पुनः रावण और कुम्भकर्ण के रूप में अवतरित हुए। इन्हें मारने के लिए भगवान ने राम का अवतार लिया और वे अयोध्या मं राजा दशरथ के यहाँ पुत्र रूप में अवतरित हुए।

कर्तव्यनिष्ठ-

पराक्रमी तथा भू–भार उतारने वाले –

बालकाण्ड में सूरदास कहते हैं –

ये भू–भार उतारन कारन प्रगटे स्याम शरीर

राम का जन्म भू–भार उतारने, या दुष्टों और अत्याचारियों के भार से पृथ्वी को मुक्त करने के लिए हुआ। किशोर अवस्था में ही विश्वामित्र ने उन्हें अपने यज्ञ की रक्षा के लिए महराज दशरथ से मांग लिया था, क्योंकि, "असुरन

सों जग होत न पावत" और राम ने इतनी कम वय में ही, "मारि ताड़ का यज्ञ करायो, विश्वामित्र अनन्द भयो" ताड़का सहित अनेक राक्षसों को मार डाला।

अरण्यकाण्ड में शूपर्णखा कामवश राम के सम्मुख पहुँचती हैं। उसकी निर्लज्जता के कारण उसकी नाक काट दी गयी। खर–दूषण इत्यादि राक्षसों को राम से बदला लेने के लिए भेजा। राम ने सहज ही राक्षसों का वध कर दिया। मारीच के वध के लिए जब राम निकलने हैं, तब का वर्णन सूरदास ने बड़े सजीव ढंग से किया है यथा–

राम धनुष अरू सायक साधे।
सिय हित मृग पाछें उठि धाए, बलकल वसन फेट दृढ़ बांधे।
नव–घन नील–सरोज वरन बपु बिपुल बाहु, केहरि–फल कांधे।
इन्दुबदन, राजीव नैन वर, सीस जटा सिव–सम सिर बांधे।
पालत, सृजत, संहारत, सैतत, अंड अनेक अवधि फल आधे।[1]

राणभूमि में कुपित होने वाले–

लक्ष्मण की मूर्च्छा के दूर होने पर राम आश्वस्त हुए परन्तु उन्हें रावण पर अत्यन्त क्रोध आता है।

सूरदास ने राम से कहलवाया है–

दूसरें कर बान न लैहों।
सुन सुग्रीव प्रतीज्ञा मेरी, एकहि बान असुर सब है हौं।
शिव–पूजा जिहिं भाँति करी है, सोई पद्धति परतच्छ दिसै हौं।
दैत्य प्रहारि पाप–फल प्रेरित, सिर–मालासिव–सीस चढ़ै हौं।
मनो तूल–गन परत अगिनि–मुख जारि जड़नि जम–पंथ पठै हौं।[2]

आगे के पद में सूरदास ने कहा है –

आजु अति कौपे हैं रन राम।

1. *सूरसागर, नवम स्कन्ध, पद सं0 502*
2. *सूरसागर, नवम स्कन्ध, पद सं0 601*

राम–रावण युद्ध को देवता लोग विमान से चढ़कर देख रहे है।

शरणागत की रक्षा-

उपेक्षितों को सामाजिक प्रतिष्टा दिलाने वाले :

राम को निर्धनों, उपेक्षितों व निर्बल लोगों के उद्धरिक के रूप में भी सूरदास ने चित्रित किया है। ऋषि श्राप से देवी अहिल्या समाज में अत्यन्त उपेक्षित है। गंगातट पर जब राम पहुँचे तो उन्हें यह ज्ञात होता है। वे गौतम ऋषि के आश्रम में आते हैं।

गंगा तट आये श्रीराम।
तहां पषान रूप पग परसे, गौतप रिषि की बाम।
गई अकास देव तन धरिकै, अति सुन्दर अभिराम।
सुरदास प्रभु पतित पधारन , विरद कितौ यह राम।[3]

सीताहरण के बाद जब वे विलाप करते हुए वन में इधर उधर विचर रहे थे, तब उन्हें ऐसा लगा कि कोई एक कुटी में बार बार उनका नाम पुकार उठता है। वे तत्काल लक्ष्मण से कहते हैं।

तुम लक्षमन या कुन्जकुटी में देखौ जाइ निहारि।
कोउ इक जीव नाम मम ले ले उठत पुकारि।[4]

उन्हें यहां घायल जटायु मिलते हैं जिन्होंने सीता को बलपूर्वक रावण द्वारा ले जाते देखकर उससे युद्ध किया था और अब घायल हो राम–राम पुकारते हुए अपनी कुटी में पड़े हैं। श्रीराम जटायु से "अपनी विपत्ति विसार" कर उसका दुख पूछते हैं–"अहो विहंग कहो अपनो दुख, पूछत ताहि खरारि"।

जटायु उन्हें पूरी घटना सुनाते हैं, और बाद में अपने प्राण त्याग देते हैं। रामचन्द्र इनकी अन्तेष्टि अपने हाथ से करते हैं। इस प्रकार जटायु का पूर्ण सम्मान कर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाते हैं।

---

3. सूरसागर, नवम स्कन्ध, पद सं0 466
4. सूरसागर, नवम स्कन्ध, पद सं0 509

मार्ग में शवरी, जो अछूत जाति की है, का आश्रम पड़ता है। शबरी आर्थिक दृष्टि से निर्बल वर्ग की प्रतीक है। श्रीराम शबरी के आश्रम में बिना बुलाये जाते हैं। वहां शबरी द्वारा दिये जूठे बेर खाते हैं, तथा बेर को बहुत स्वादिष्ट बताकर शबरी की प्रतिष्ठा बढ़ाते हैं। शबरी के देहत्याग पर इसकी भी अन्तेष्टि श्रीराम अपने हाथों करते हैं।

सबरी आश्रम रघुवर आए।
खाटे फल तजि मीठे ल्याई, जुठे भए सो सहज सुहाई।
अंतर जामौ, अतिहित मानि, भोजन कीने स्वाद बखानि।
जाति न काहू की प्रभु जानत, भक्ति भाव हरि जुग जुग मानत।[5]

कृतज्ञ तथा सत्यवक्ता के साथ जन्मभूमि के प्रति अगाध प्रेम –

सुग्रीव को बालि ने राजच्युत कर भगा दिया था। सूरदास कहते हैं –"कपि सुग्रीव बालि के भय तें बसत हुतौ तह आई।" राम ने बालि को अन्यायी मानकर उसका वध किया, और सुग्रीव को राज्य दे दिया –

"राज दियो सुग्रीव को तिन हरिजस गायी"[6]

विभीषण ने जब रावण को उचित एवं न्याय संगत मन्त्रणा दी कि वह राम से सुलह कर लें और युद्ध को टालें, तब रावण क्रोधित होकर विभीषण को लात मार कर भगा देता है। अन्ततः विभीषण राम की शरण में आते हैं। राम उसे आश्वस्त करते हैं, कृतज्ञता दर्शाते हैं और कहते हैं।

तब हों नगर अयोध्या जैहौं।
एक बात सुनि निश्चय मेरी, राज्य विभीषन दैहौं।[7]

और अन्त में सत्यवक्ता के रूप में राम अपना वचन पूर्ण करते हैं –

5. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 47*
6. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 48*
7. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 48*

"दियो विभीषण राज सूर प्रभु, कियो सुरनि निस्तारो ?[8]

धर्मज्ञ विद्वान एवं राजनीति विशारद

महाराज दशरथ से कैकेयी दो वर प्राप्त करती हैं। पहला राम को चौदह वर्ष वनवास तथा दूसरा भरत को राजगद्दी। यद्यपि दशरथ को विवश होकर यह वर देना पड़ा था, तथापि थी तो वह राजाज्ञा ही बाद में दशरथ जब पिता के रूप में अपने वचन से हटते हुए कहते हैं –

"रघुनाथ पियारे आजु रहौ (हो)

वृथा कोई वर वचन हमारी, कैकेयी जीव कलेश सहौ (हो)" तब राम इसे नहीं मानते, क्योंकि राजाज्ञा, पिता की भावुकता से अधिक महत्वपूर्ण है।

भरत जब चित्रकूट में राम से मिलते हैं और उन्हें अयोध्या वापस चलने के लिए कहते हैं, तब यद्यपि राम को पिता दशरथ की मृत्यु की भी जानकारी होती है और इससे वे बड़े दुखी हो जाते हैं, विलाप भी करते हैं, तथापि वे भरत को कहते हैं –

"चौदह वर्ष तात की आज्ञा मोपै मेटि न जाई"।

वे भरत को राजनीति की शिक्षा देते हैं –

बन्धु करियो राज सम्भारे।
राजनीति अरू गुरू की सेवा गाइ–विप्र प्रतिपारे।
गुरू वशिष्ठ अरू मिलि सुमन्त सों, परजा हेतु विचारे।।[9]

भाई, भरत संभालकर राज–काज करना। गुरू और मन्त्री सुमन्त की मंत्रणा से गाय–ब्राह्मणों तथा समस्त प्रजाजनों का प्रतिपालन उचित प्रकार से हो, इसका ध्यान रखने की उनकी सीख दृष्तव्य है।

---

8. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 48
9. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 48

सीताहरण के बाद वे अंगद को रावण के पास दूत बनाकर भेजते हैं। अंगद के पिता बालि का राम ने बध किया था, अतएव यह सामान्य जन को सोचने के लिए बिवश करता है कि अंगद सम्पूर्ण रूप से राम के प्रति नहीं हो सकते और अंगद राम के पक्षधर नहीं हैं। ऐसी स्थिति में अंगद के कथनों का रावण पर प्रभावकारी असर होगा, यही सोचकर सुग्रीव जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति के रहते अंगद को राम ने अपना दूत बनाकर रावण के पास भेजा। यह भी राम की राजनीति–जागरूकता का उदाहरण है।

सुन्दर, कांतिमान, गुणवान और सामर्थ्यशाली

सूरदास ने कई स्थलों पर राम की शोभा एवं उनकी सुन्दरता तथा गुण–का वर्णन किया है। उदाहरण के लिए पद पर्याप्त है। इसमें राम की सामर्थ्य शक्ति का भी सटीक वर्णन है यथा –

ललित गति राजत अति रघुबीर।
नरपति, सभा मध्य मनौ ठाढ़े, जुगल हंस मति धीर।
अलख अनन्त अपरमिति महिमा, कटि तट कसे तुनीर।
कर धनु, काक पच्छ सिर सोभित, अंग अंग दोउ बीर।
भूषन विविध, विसद अम्बर जुत, सुन्दर स्याम शरीर।
देखत मुदित चरित्र सबै सुर व्योम–विमाननि मीर।
प्रमुदित जनक निरखि सुख–अम्बुज प्रगट नैन मथिनीर।
तात कठिन–प्रन जानि जानकी, आनति नहिं उरधीर।
करूनामय जब चाप लियो का, बांधि सुदृढ़ कटि चीर।
भूमृत शीश नमित जो गर्वत, पावक सींच्यो नीर।
ढोलत महि अधीर भयो फनिपति, कूरम अति अकुलान।
दिग्गज चलित, खलित मुनि आसन, इंद्रादिक भयमान।
रबिभगत ज्यों, तरकि ताके हय, उत्थपथ लागे जान।
शिव विरंच व्याकुल भये धुनि सुनि, जब तोर्‌यो भगवान।[10]

क्रोध रहित, डाह से हीन तथा अपने में ब्रत दृढ़

सूरदास के राम में ये सभी गुण है। धनुष भंग कर तथा जानकी का पाणिग्रहण कर राम की बरात जब अयोध्या की ओर सदलबल चली तब मार्ग में

10. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 49

परशुराम मिलते हैं, वे शिव धनुष भंग की बात से अत्यन्त क्रोधित हैं, परन्तु रामचन्द्र उनके क्रोध युक्त वचन को बिना प्रतिक्रिया के सुनते हैं। परशुराम के क्रोध का शमन हो जाता है।

परशुराम तेहि अवसर आये।
कठिन पिनाक कहो किन तोरयो, क्रोधित वचन सुनाए।
विप्र जानि रघुवीर बीर दाऊ, हाथ जोरि सिर नायौ।
बहुत दिननि को हुतौ पुरातन, हाथ छुअत उठि जायौ
तुम तो द्विन, कुल पूज्य हमारे, हम तुम कौन लराई।[11]

राम को जब युवराज बनाने का विचार महाराज दशरथ करते हैं, तब कैकेयी ने दो वर लेकर पूरी योजना उलट दी। कैकेयी ने स्वयं राम से आकर कहा–

सकुचनि कहत नहीं महराज।
चौदह वर्ष तुम्हें वन दौन्हों, मय सुत को निज राज।[12]

तब राम ने भरत के भाग्य के प्रति ईर्ष्या नहीं की और वे अपने व्रत में दृढ़ रहें। जब स्वयं भरत उन्हें चित्रकूट से वापस अयोध्या चल कर राज सम्भालने को कहते हैं –

तुमहिं विमुख रघुनाथ कौन, विधि जीवन कहा बनै।
चरन सरोज बिना अवलोके, को सुख चरनि गनै।[13]

राम भरत को स्पष्ट कहते हैं कि मैं पिता की आज्ञा के विरूद्ध कुछ नहीं कर सकता।

"चौदह बरस तात की आज्ञा मो पै मेटि न जाइ"[14]

---

11. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 50
12. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 50
13. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 50
14. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 50

अन्य पात्रों की दृष्टि में राम -

केवट राम को चमत्कारिक तथा प्रतापी पुरूष समझता है। कहता है –

"प्रगट प्रताप चरन को देखौं, ताहि कहां पुनि पाऊँ।।"[15]

भरत की धारणा राम के प्रति यह है –

"तुमहिं विमुख रघुनाथ, कौन विधि जीवन कहा बनै"[16]

सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वत पर दो वीरों को देखकर हनुमान से कहते है, वे जाकर पता लगाावें कि दोनों वीर कौन हैं। वे राम की एक वीर पुरूष जानकर प्रभावित होते हैं।

सीता जी तो राम के प्रति प्रथम दर्शन में ही मुग्ध हो जाती हैं, और अन्त तक वे मन कर्म वचन से राम को अपने चित्त में बसाई हैं, वे कहती हैं –

मैं तो राम चरन चित दीन्हों।'
मनसा वाचा और कर्मना, बहुरि मिलन को आगम कीन्हों।
डुलै सुमेरू, सेष–सिर कंपे, पच्छिम उदै करै वासर–पति।
सुन त्रिजटी तौं हूँ नहिं छाड़ौं मधुर मूर्ति रघुनाथ–गात रति।[17]

हनुमान जी तो राम के प्रति समर्पण की भावना रखते हैं। राम के प्रति उनके विचार अत्यन्त उच्च कोटि के हैं। सीता को समझाते हुए हनुमान कहते हैं, राम के उदित होते ही यह सभी निशाचर रूपी अन्धकार नष्ट हो जावेंगे।

हैं केतिक ये तिमिर–निसाचर, उदित एक रघुकुल के मानहिं।
काटन दे दस सीस, बीस भुज, अपौ कृत येउ जो जानहिं।
देहिं दरस सुभ नैननि महं प्रभु, रिपु को नासि सहित संतानहिं।[18]

---

15. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 50
16. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 50
17. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 51
18. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 51

स्वयं रावण राम की वीरता और प्रभुता से प्रभावित है और उनके हाथ से मृत्यु पाना चाहता है। मन्दोदरी भी राम की कृपालुता और वीरता का वर्णन बार बार रावण से करती है। अंगद, विभीषण और यहां तक कुम्भकर्ण भी राम के प्रति आदर एवं श्रद्धा की भावना रखते हैं।

सूर की सीता

सूर के राम काव्य में दूसरा चरित्र जो उभरता है वह सीता जी का है। इस काव्य में सीता के जन्म कथा नहीं कही गयी है। सबसे पहले हमें सीता जी के दर्शन स्वयंबर के अवसर पर होते हैं।

चरित्र की उत्कृष्टता

संशयशील नारी–

सीता जी रामचन्द्र को देखकर उनसे नेह करने लगती हैं। कहती हैं–

चितै रघुनाथ–बदन की ओर।
रघुपति सों अब नेह हमारौं, विधि सों करति निहोर।
यह अति दुसह पिनाक, पिता प्रन, राघव वयस किसोर।
इन पै दीरघ धनुष चढ़ै क्यों, सखि यह संशय मोर।[19]

वे विधि से निहोरा करती हैं कि राम तो अत्यन्त कोमल, तथा कम उम्र के किशोर हैं, ये शिव का कठोर और भारी धनुष कैसे उठा पायेंगे।

कनक मृग मरते समय जब 'हा लक्ष्मण' कह कर मरता है तो जानकी जी को संशय होता है कि कहीं राम विपत्ति में तो नहीं पड़ गये, और वे लक्ष्मण जी को राम का पता लगाने भेजती हैं।

जब हनुमान जी सीता का पता लगाये हुये अशोकवन में आते हैं और सीता के समक्ष प्रगट होते हैं, तब सीता कहतीं हैं –

19. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 51*

यह सुनि सिय मन संका उपजी, रावन दूत विचारि।
छलिकरि आयो निसिचर कोउ, वानर रूपहिं धारि।
स्रवन मूंदि, सुख आंचर ढांक्यो, अरे निसाचर चोर।
काहे को छलि करि–करि आवत, धर्म विनासन मोर।[20]

हनुमान जी अपना परिचय देते हैं –

अनुचर रघुनाथ को तब दरस काज आयो।
पवन पूत कपि स्वरूप, भक्तनि में गायो।।[21]

इतने पर भी सीता के मन में संशय रहता है। वे कहतीं हैं –

तुम्हें पहिचानति नाहीं बीर।
हम नैननि कबहूं नहिं देख्यो, रामचन्द्र के तीर।
लंका बसत दैत्य और दानव, उनके अगम सरीर।
तेहिं देखि मेराक जिय डरपत, नैननि आवत नीर।[22]

हनुमान द्वारा विस्तार से अपना परिचय देने के बाद भी तथा राम की मुद्रिका देने पर भी सीता के मन संशय बना है वे पूछती हैं –

वनचर कौन देश ते आयो।
कहां पे राम कहां पे लक्ष्मिन, क्यों करि मुद्रा पायो।।[23]

सीता जी राम के प्रति भी संशय करते हुए कहती हैं कि कहीं उन्होंने मेरा परित्याग तो नहीं कर दिया।

सुन कपि वे रघुनाथ नहीं।
जिन रघुनाथ पिनाक पिता गृह, तोरयो निमिष महीं।
छाँड़ी नारि विचारि पवन–सुत, लंक आग बसहीं।
कै हौं कुटिल, कुचालि कुलच्छनि, तजीकंत तबही।।[24]

---

20. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 51*
21. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 52*
22. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 52*
23. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 52*
24. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 53*

सीताहरण के समय, सीता अप्रत्याशित रूप से विपत्ति में पड़ जाती हैं। सूर ने बड़े ही मार्मिक ढंग से इसका चित्रण किया है। वे रूपक बांधते हैं–मानों कोई हिरणी अपने समूह से बिछड़ गई हो। ऐसी स्थिति मे सीता हर बात मे संशयशील हो जाती हैं। साधारणतः नारियां स्वाभाव से ही संशयशील होती हैं अतएव सीता का संशयशील होना सर्वथा स्वाभाविक प्रतीत होता है।

आदर्श अनुकूल आचरण –

जानकी जी बड़ी चतुर हैं। विवाह के बाद कंकण मोचन के समय राम और जानकी के बीच सोने की थाली मे जल भरकर उसमें सुपारी द्वारा द्यूत–क्रीड़ा होती है, तो वे रामचन्द्र जी से जीत जाती हैं।

खेलत नृप सकल सुवतिन में, हारे रघुपति जिती जनक की।[25]

वन गमन के समय राम लक्ष्मण के साथ जानकी जी एक स्थान से दूसरे स्थान को जाती है। मार्ग में पुर वधुयें उनसे अनेक प्रश्न करती हैं। सीता जी बड़ी चतुरता से समुचित उत्तर देती हैं। वे पुरबधुओं को अपना तथा अपने पति का परिचय देती हैं –

उत्तर दिस हम–नगर अयोध्या, है सरजू के तीर।
बड़कुल बड़े भूप दशरथ सखि, बड़ौ नगर गम्भीर।।
सासु को सौत सुहागिन सों सखी, अतिहीं प्रिय की प्यारी।
अपने सुत को राज दिवायौ, हमको देश निकारी।।[26]

पति के सुख–दुख में सहभागी (पत्नी धर्म का पालन)–

वन गमन की राजाज्ञा पर जब राम वन जाने के लिए तत्पर होते हैं, तब जानकी भी उनके साथ जाने की तैयारी करती हैं। इस पर राम उन्हें कहते हैं–

---

25. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 53
26. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 53

तुम जानकी जनकपुर जाहू।
कहा आनि हम संग भरमिहौ, गहबर बन दुख–सिंधु अथाहूं।।[27]

इस पर सीता जी ने तत्काल राम से विनम्र निवेदन किया –

ऐसौ जिय न धरौ रघुराइ।
तुम सौ प्रभु तजि मो सी दासी, अनत न कहूँ समाइ।
तुम्हरे चरन कमल सुख–सागर, यह व्रत हौं प्रतिपलिहौं।
सूर सकल सुख छाड़ि अपनौ, वन विपदा संग चलिहौं।।[28]

पुरबधुओं के यह पूछने पर कि इन दोनों वीरों में तुम्हारे पति कौन हैं? सीता जी कहती हैं –

"गौर बरन मेरे देवर सखि, पिय मम स्याम सरीर"[29]

एक स्थान पर तो पति के विषय में ग्राम बधुओं के पूछने पर वे आँखों के इशारे से बताती हैं

यथा–

राजिव नैन नैन की मूरति, सैननि दियो बताई[30]

साधुओं के प्रति आदरभाव(कर्तव्यनिष्ठ)–

वन मे सीता जी ने अपनी कुटी के सम्मुख वाटिका लगाई है, उसे राम भी सींचते हैं। उसमें माया मृग के रूप में मारीच आता है। सीता जी के कहने पर राम उसके पीछे दौड़ते हैं, और इसे मारते हैं। तब मारीच 'हा लक्ष्मण' कहते हुए प्राण त्यागता है।

---

27. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 53*
28. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 54*
29. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 54*
30. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 54*

इस समय लक्ष्मण को सीता, राम का पता लगाने भेजती हैं, और स्वयं अत्यन्त व्याकुल हो उठती हैं, फिर भी इस समय जब कपट–साधु के वेश में रावण आकर उनसे 'भिक्षा दे माई' कहता है तब '**दीन जानि सुधि अग्नि भजन की, प्रेम सहित भिक्षा लै आई**' (पद क्रमांक 503) अपना दुख भूलकर सीता, साधु के लिए 'भिक्षा' ले आती हैं।

एक मात्र राम के प्रति समर्पित भाव–

सीता राम के प्रति सदैव समप्रित बनी रहीं। वे राम की हर आज्ञा का पालन प्रसन्नता पूर्वक करती हैं। राम के कहने पर वे अग्नि में प्रवेश कर जाती हैं और माया रूप में राम के साथ कुटी में रहती हैं।

जनक तनया धरी अगिन में छाया रूप बनाई।
यह न कोउ भेद जानै, बिना श्री रघुराई।।[31]

लंका में, अशोकवन, निशाचरियों से घिरी सीता को एक निशाचरी समझाती है–

'अब रावन घर विलसि सहज सुख, कह्यो हमारी मानि'[32]

और वह निशाचरी राम के प्रति हीन भावना की अभिव्यक्ति करती हैं। इस पर जानकी कहती हैं –

जो तू रामहिं दोष लगावै, करौं प्रान को घात।[33]

रावण, सीता को अपने बल और वैभव का वर्णन कर प्रभावित करना चाहता है और कहता है –

छाड़ि राम तपसी के मोहे, उठि आभूषन साजु।
चौदह सहस तिया में तो कों, पटा बँधाऊँ आजु।।[34]

---

31. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 54*
32. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 54*
33. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 55*
34. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 55*

तब सीता जी रावण को बहुत फटकारती हैं।

राक्षसियों में त्रिजटा, सीता से सहानुभूति रखने वाली एक मात्र राक्षसी है, उसे सीता अपनी व्यथा सुनाते हुए कहती हैं –

सो दिन त्रिजटी कहु ऐहैं ?
जा दिन चरन कमल रघुपति के,
हरषि जानकी हृदय लगै हैं।।[35]

इस प्रकार के भाव पूरे राम काव्य में कई स्थानों पर सीता ने राम के प्रति व्यक्त किया है।

माननी सीता–

सीता मान–अपमान के प्रति बड़ी सतक्र हैं। वे अशोक वन में दीन–दशा में भी, समय–समय पर रावण और अन्य निशाचरियों को फटकारती रहती हैं। उन्हें राम द्वारा अपनी उपेक्षा भी सह्य नहीं है। रावण का वध करने के बाद राम जब सीता को देखकर मुँह फेर लेते हैं, यथा–

'देखत दरस राम मुख मोर्‌यो'।[36]

तब सीता लक्ष्मण से कहती हैं, हे भाई लक्ष्मण मेरे लिए चिता तैयार करो–

'लछमनि रचौ हुतासन भाई'।[37]

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस अपेक्षाकृत छोटे रामकाव्य में भी सूरदास ने सीता के चरित्र के विभिन्न पहलुओं का चित्रण किया है।

---

35. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 55*
36. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 55*
37. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 55*

सूर के भरत

सूरदास के रामकाव्य में भरत के चरित्र के अधिक व्यापक रूप से प्रस्तुत करने का कोई अवसर कथा के कलेवर की दृष्टि से नहीं है, फिर भी जो पद भरत से सम्बन्धित हैं, उसमें व्यक्त भावों से भरत के चरित्र पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। बालकाण्ड में ही भरत को अन्य भाइयों सहित शर–क्रीड़ा करते बताया गया है। इसके बाद भरत विषयक पद अयोध्या काण्ड में आते हैं।

विद्वान, न्यायप्रिय एवं निस्वार्थी व्यक्तित्व

भरत उस समय अयोध्या में नहीं थे जब महाराज ने रानी कैकेयी के वर माँगने पर राम को वनवास और भरत को राजगद्दी दी थी। राम वन गमन के बाद महाराज दशरथ को जो दुख हुआ उसके फलस्वरूप उन्होंने देह त्याग दिया। अयोध्या में उस समय महाराज का कोई उत्तराधिकारी नहीं था। माता कौशिल्या ने तत्काल दूत भेजकर भरत को ननिहाल से बुलवाया। अयोध्या आने पर जब भरत को सम्पूर्ण घटना चक्र का पता चला तो वे अत्यन्त खिन्न एवं विकल हो उठे। वे अत्यन्त दीन वचन में अपनी माता कैकेयी को कहते हैं, कि हे माता यह तुमने क्या किया ? क्या सिंह का भोजन स्वान कर सकता है। गद्दी पर तो राम का ही एकमात्र अधिकार है। वे अयोध्या में मुँह तक धोने को या पानी पीने को भी तैयार नहीं हैं। वे कहते हैं कि यह समाचार सुनने के पूर्व मैं मर क्यों नहीं गया ? यथा–

'आए भरत दीन ह्वै बोले कहा कियो कैकइ माई ?
हम सेवक वे त्रिभुवनपति कत स्वान सिंह बलि खाई।
आजु अयोध्या जल नाहिं अचवौं, मुख नहिं देखौं भाई।
सूरदास राघव विछुरन हैं, मरन भलो दव लाई।[38]

भरत जी अपनी माता कैकेयी से स्पष्ट कहते हैं, कि माता तुमने गलत निर्णय लिया है। यह सब न्याय संगत नहीं हैं तुमने अपने हाथ से ही काल को

38. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 56*

निमन्त्रण दिया है, और महाराज की मृत्यु का कारण तुम्हीं हो। क्या तुम्हारा हृदय पत्थर का है। तुमने राम को वन जाने को क्यों कहा ? भरत भूमि पर लोटने लगते हैं। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि भरत परम न्यायी और निःस्वार्थ व्यक्तित्व के धनी हैं। वे राम के स्थान पर अयोध्या की गद्दी में बैठने के समान मानते हैं।

तै कैकेई कुमंत्र कियो।
अपने कर करिकाल है कार्‌यो, हठकर नृप–अपराध लियो।
श्रीपति चलत रह्यो कहिं कैसे, तेरो पाहन–कठिन हियो।
मो अपराधी के हित कारण, ते रामहिं वनवास दियो।
कौन काज यह राज हमारें, इहिं पावक परि कौन जियो।
लौटे सूर धरनि दोउ बन्धु, मनो तपत विष विषम पियो।[39]

भरत को पूरी अयोध्या सूनी–सूनी लगती है। वे अपनी माता कैकेयी को धिक्कारते हुए कहते हैं कि हे माता, तेरे इस पृथ्वी पर जन्म लेने को धिक्कार है। तेरा अब तक जीना भी धिकृत है। भरत यहाँ तक कहते हैं कि बिना राम के मेरा अयोध्या से कोई संबंध नहीं है।

राम जू कहाँ गये री माता ?
सूनो भवन, सिंहासन सूनो, नाहीं दशरथ ताता।
धृग तव जन्म, जियन धृग तेरो, कही कपट मुख बाता।
सेवन राज, नाथ बन पठए, यह कब लिखौ विधाता।
मुख अरविन्द देखि हम जीवत, ज्यों चकोर शशि राता।
सूरदास श्री रामचन्द्र बिनु, कहा अयोध्या नाता।[40]

भरत शोक की स्थिति में श्री गुरू वशिष्ठ से सलाह करते हैं और अन्त में अपने पिता दशरथ की अंतेष्टि विधि विधान से करते हैं।

राम के प्रति अनन्य प्रेम तथा समप्रित भावना-

सूर ने भरत को राम के प्रति अत्यन्त समप्रित बताया है। भरत राम को अत्यन्त आदर एवं श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। उन्हें विश्वास है, कि वन गमन

39. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 57
40. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 57

के बाद की इन विपत्तियों को सुनकर राम उनका निवेदन स्वीकार कर लेंगे और अयोध्या वापस आ जावेंगे। वे राम को वापस लाने चित्रकुट जाते हैं। वाल्मीकि रामायण के भरत, राम को वन में इधर–उधर ढूंढते हैं। सूर ने भरत को सीधे राम से मिला दिया है और भरत राम के पास पहुँचते ही उनके चरणों में लोटने लगते हैं।

'देखि दरस चरननि लपटाने, गदगद कंठ न कछु कहि जाइ'।[41]

रामचन्द्र ने जब भरत को मुडित सिर देखा तो व्याकुल हो उठे।

भातृ मुख निरखि राम बिलखाने।
मुंडित केस–सीस बिहवल दोउ, उमंगि कंठ लिपटाने।।[42]

भरत जी अत्यन्त दीन होकर पिता की मृत्यु की घटना सुनाते हैं। वे हठकर राम के पैरों को पकड़े हुए हैं, और कहते हैं कि हे भाई आप अपनी कठोरता का त्याग करें। बिना आपके हम जीवित कैसे रहेंगे ? वे माताओं के दुख की दशा भी राम को बताते हैं, परन्तु राम ने अपने पिता के वचन के निर्वाह का हवाला देकर, भरत को चुप करने का प्रयास किया। अन्त में राम के निर्देश पर खिन्न मन से भरत को अयोध्या वापस आना पड़ता है।

विश्वासपात्रता–

भरत के ऊपर राम का अनन्य विश्वास है। संकट की घड़ी में लक्ष्मण जी मेघनाथ की शक्ति से मूर्च्छित होकर धरती में बेसुध पड़े हैं। रामचन्द्र जी को अपने भाई भरत की याद सहज ही आती है। उन्हें विश्वास है कि राम पर संकट आने का समाचार यदि भरत को ज्ञात हो जावे तो वे सेना सहित रावण पर चढ़ दौड़ेगे।

"इतनी विपति भरत सुन पावे, आवें साजि बरूथ"।[43]

---

41. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 57*
42. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 57*
43. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 58*

कर्मवीर, सतर्क एवं जागरूक

राम ने चित्रकुट में भरत मिलाप के समय, भरत को राज्य संचालन का पूर्ण निदेश दिया था। भरत बड़ी सतर्कता से अयोध्या की रक्षा करते हुए राज्य का संचालन, राम के स्थानापन्न के रूप में करते हैं। एक दिन के अयोध्या के वायुमार्ग पर किसी के द्वारा अतिक्रमण देखकर बाण चला देते हैं। वस्तुतः वे हनुमान जी थे जो द्रोणागिरी सहित रण स्थल को वापस जा रहे थे। भरत के बाण से विवश होकर हनुमान को अयोध्या की धरती पर राम–राम कहते हुए उतरना पड़ा। भरत, हनुमान से परिचित होने के बाद राम का कुशल–क्षेम पूछते हैं। हनुमान, सीताहरण तथा युद्ध में लक्ष्मण को शक्ति लगने की बात भरत जी को सुनाते हैं। यह समाचार सुनकर महल में हाहाकार मच जाता है। मातायें विकल हो उठती हैं। आधीरात इस प्रकार बीत जाती है इस पर हनुमान भरत से कहते हैं कि यदि सुबह हो गयी तो लक्ष्मण को हानि हो सकती है, इसलिए मुझे शीघ्र रणस्थल तक जाने का उपाय करें। कर्मवीर भरत पूर्ण विश्वास के साथ कहते हैं कि मेरे सिर पर राम की पादुका है अर्थ यह कि मैं राम का स्थानापन्न हूँ तुरन्त तुम्हें राम–प्रताप से क्षण भर में गतव्य तक पहुँचा देता हूँ। भरत ने हनुमान को द्रोणागिरि पर्वत सहित अपने बाण में बिठाकर राम शिविर तक पहुँचा दिया।

तपस्वी, सत्यवान तथा स्वामिधर्मी-

भरत ने राज काज एक तपस्वी की तरह किया, इसका संकेत भी सूरदास ने दिया है। अंत में चौदह वर्ष की समाप्ति पर जब रामचन्द्र, रावण का नाश कर भाई लक्ष्मण, सीता तथा वानरराज सुग्रीव, हनुमान इत्यादि के साथ अयोध्या के लिए प्रस्थित होते हैं, भरत जी को जब यह संदेश मिलता है कि राम वापस अयोध्या आ रहे हैं, तब वे अयोध्या नगरी को अच्छी तरह सजाते हैं। और राम के अगवानी की भव्य व्यवस्था करते हैं तथा राम की पादुका सिर पर रखकर नगरजनों सहित अगवानी हेतु आते हैं।

जब सुन्यो भरत–पुर–निकट भूप।
तब रची नगर रचना अनूप।।
प्रति–प्रति गृह तोरन, ध्वजा धूप।
सजे सजल–कलस अरू कदलि–यूप।[44]

इधर विमान से रामचन्द्र जी यह दृश्य कपिराज सुग्रीव को दिखाते हैं और भरत की प्रशंसा करते हुए कहते हैं–

देखौ कपिराज भरत वे आए।
मम पांवरी सीस पर जाके, कर अंगुरी रघुनाथ बताए।
छीन सरीर बीर के बिछुरैं, राज–भोग चित ते बिसराए।
तप अरू लघु–दीरघता, सेवा, स्वामि धर्म, सब जगहिं सिखाए।
पुहुप विमान, दूरहीं छाँड़े, चपल चरन आवत प्रभु धाए।
आनन्द मगन पगनि कैकई–सुत, कनक–दण्ड ज्यों गिरत उठाये।[45]

अंत के पद में भी सूरदास ने भरत जी की महानता का वर्णन किया है कि उन्होंने रामचन्द्रजी को सिंहासन पर बिठाकर उनके चरणों को स्नेह से धोया। इस प्रकार एक आदर्श भाई के रूप में भरत को पूरे काव्य में प्रस्तुत किया गया है।

मनिमय आसन आनि धरे।
दधि मधु नीर कनक के कोपर, आपुन भरत भरे।
प्रथम भरत बैठाइ बंधु को, यह कहि पाई परे।
हौं पावों प्रभु–पाइ पखारन, रूचि करि सो पकरे।
निज कर चरन पखारि प्रेम–रस आनन्द–आंसु ढ़रे।[46]

सूर के हनुमान

सूरदास जी वात्सल्य रस के अन्यतम कवि माने जाते हैं, लेकिन हनुमान के चरित्र–चित्रण में इन्होंने बड़े प्रभावी ढंग से वीर रस प्रयोग किया है। पूरे राम–काव्य में उन्होंने हनुमान के चरित्र–वर्णन में बड़े मनोयोग से इन्हें गुणवान,

---

44. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 59*
45. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 59*
46. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 59*

वीर, पराक्रमी, विद्वान, नीतिनिपुण, सामर्थ्यशाली और प्रतापी, रामकाज करने को तत्पर और स्पष्ट वक्ता के रूप में दर्शाया है।

सबसे पहले हनुमान जी का दर्शन हमें किष्किन्धा काण्ड के प्रथम पद में ही होती है। सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वत पर रहते थे, वहाँ उन्हें दो वीर विचरण करते हुए दिखे। सुग्रीव को जिज्ञासा हुई कि ये दोनों कौन हैं? इस कार्य के लिए सुग्रीव ने हनुमान जी को भेजा क्योंकि वे बड़े नीति निपुण एवं कुशाग्र बुद्धि थे।

विद्वान एवं नीति निपुण-

हनुमान जी तुरन्त दोनों वीरों से, जो राम–लक्ष्मण थे, मिलते हैं। रामचन्द्र जी हनुमान के बात करने के ढंग से बहुत प्रभावित होते हैं। राम के पूछने पर हनुमान अपना पूरा परिचय, अपने कुल और पिता के नाम सहित देते हैं। फिर हनुमान राम के समक्ष अपनी जिज्ञासा रखते हैं। पूछते हैं हे वीर आप कौन हैं ? आप पर ऐसी क्या विपत्ति आ पड़ी है कि आप के नेत्रों में आंसू हैं और आप उसी प्रकार मुरझाये हुए हैं, जैसे जल से निकाल लेने पर तड़पते–तड़पते मछली मुरझा जाती है। रामचन्द्र जी अपना परिचय तो देते ही हैं अपने दुख का कारण भी बताते हैं। वे सुग्रीव के दुख का कारण भी पूछते हैं। सुग्रीव को जब समाचार मिलता है तो वे तुरन्त राम–लक्ष्मण के पास पहुँकर उनकी अगवानी करते हैं, और उन्हें प्रणाम करते हैं।

मिले हनु, पूछी यह बात।
महा मधुर प्रिय बानी बोलत, साखामृग, तुमकेहिके तात?
अंजनि कौ सुत केसरि के कुल, पवन–गवन उपजायौ गात।
तुम को बीर नीर भरि लोचन, मीन हीन–जल ज्यों मुरझात।
दशरथ–सुत कोसलपुर–वासी, त्रिया हरी ताते अकुलात।
यहि गिरि पर कपि पति सुतियत हैं, बालि–त्रास कैसे दिन जात।
महादीन, बलहीन, विकल अति, पवन–पूत देखे बिलखात।
सूर सुनत सुग्रीव चले उठि, चरन गहे पूछी कुसलात।[47]

47. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 52

लंका पहुँचकर हनुमान जी यह विचार करते हैं कि वे आखिर सीता जी को कैसे पहिचानेंगे ? उन्होंने, सीता को कभी देखा तो है नहीं, परन्तु हनुमान विद्वान हैं, तुरन्त निर्णय ले लेते हैं।

पहलें हूँ लखी मैं सीता, क्यों पहिचानी आइ।
दुर्बल दीन–हीन चिंतित अति, जपत नाइ रघुराइ।
ऐसी विधि देखिहौं जानकी, रहिहौं सीस नवाइ।[48]

सीता तो दुर्बल, दीन हीन रूप में, राम का नाम लेती रहती होंगी। ऐसी महिला जो होगी वही निश्चित रूप से जानकी होंगी।

अशोक वन में पहुँचकर उन्होंने सीता को देख लिया परन्तु वे तुरन्त उनके सम्मुख नहीं पहुँचे। पहले उन्होंने पूरे वातावरण का अध्ययन कर लेना उपयुक्त समझा और इस हेतु वे –

'पौरि सब देखि सो अशोकवन में गयी, निरखि सीता छुप्यौ वृक्ष डारा'[49]

इस प्रकार वृक्ष में छिपकर बैठे हनुमान जी ने राक्षसियों द्वारा जानकी को, रावण की पठरानी बन जाने की बात समझाते सुना, निशाचारी–रावण संवाद सुना, रावण–सीता संवाद सुना तथा त्रिजटा के साथ सीता की बातचीत सुनी, और सीता के मन की दशा का पूर्ण अध्ययन कर लिया।

"तिहिं छिन पवन–पूत तहं प्रगट्यो, सिया अकेली जानि"।[50]

सीता जी को अत्यन्त हताश स्थिति में देखकर विद्वान हनुमान ने सोचा कि इनका मनोबल यदि नहीं बढ़ाया गया तो संभव है सीता कहीं आत्महत्या न कर लें, अतः वे कहते हैं –

---

48. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 53
49. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 61
50. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 61

तू जननी अब दुख जनि मानहिं।
रामचन्द्र नहिं दूरि कहूँ, पुनि भूलिहु चिंता नहिं आनहिं।
अबहिं लिवाई जाऊं सब रिपुहति, डरपत हौं आज्ञा–अपमानहिं।।[51]

हनुमान यह सोचते है कि लंका में राम का आतंक जमाना आवश्यक है। इस हेतु वे अशोकवन को उजाड़ने का कार्य करते हैं, और इसी प्रसंग में उन्होंने रावण–पुत्र अक्षयकुमार को मार डाला। इसके बाद उन्होंने लंका दहन किया। वापस आते समय सीता जी चूड़ामणि लेते आये, ताकि अंगद तथा रामचन्द्र जी को, सीता की स्थिति का तथा उनकी बातचीत का, प्रमाण प्रस्तुत कर सकें।

हनुमान की नीति निपुणता तथा बुद्धिमत्ता के कई उदाहरण सूर के राम–काव्य में हैं। हनुमान जब समुद्र लंघन कर रहे थे, तब सुरसा ने उन्हें निगलने के लिए मुंह फैलाया। हनुमान जी तुरन्त छोटा रूप धर कर उसके मुंह में घुस गये और जब तक वह उन्हें उदरस्थ करें, वे निपुणता से मुंह से निकल आये।

हनुमान का रावण के दरबार में जाने की इच्छा हुई, परन्तु वे राम–दूत तो थे नहीं, दरबार में कैसे पहुँचे यह विचार उनके मन में उत्पन्न हुआ। इसी हेतु उन्होंने लंका में उत्पात मचाया, और जब मेघनाथ ने उन्हें ब्रह्मपाश में बांध लिया तब उन्होंने उसे तोड़ा नहीं, वरन् बँधे रहे ताकि रावण के सम्मुख प्रस्तुत किये जावें, यह हनुमान की चतुरता का ही प्रमाण है।

सामर्थशाली और प्रतापी-

अंगद ने जब वानर–यूथ के प्रत्येक वीर को सम्बोधित कर पूछा कि कौन वह व्यक्ति है जो समुद्र को पारकर, लंका में प्रवेश कर सीता का पता लगा सकता है, तब जामवन्त जी पूर्ण आत्म विश्वास के साथ हँसते हुए बोलते हैं, कि

51. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 61

इस समूह में एक ही व्यक्ति है– केसरि–सुत हनुमान, जो एक क्षण में इस कठिन कार्य को सम्पन्न कर सकते हैं। वे इतने प्रतापी हैं कि समुद्र लांघ का लंका में आना जाना कई बार कर सकते हैं–

या दल मध्य प्रगट केसरि–सुत, जाहि नाम हनुमन्त।
वहै ल्याइहें सिय–सुधि छिन में, अरू आइहें तुरन्त।
उन प्रताप त्रिभुवन को पायौ, वाके बलहि न अन्त।
जौ मन करै एक बासर में, छिन आवै छिन जाइ।
स्वर्ग–पाताल माहिं गम ताकौं, कहिये कहा बनाए।[52]

हनुमान जी जब लंका यात्रा तथा लंकापुरी निरीक्षण इत्यादि की पूरी कथा अंगद को सुनाते हैं तो अंगद, हनुमान के सामर्थ्य के प्रभावित होकर कहते हैं–

अंगद कही भली तुम कीन्हीं, हम सबकी पति राखी[53]

आत्मविश्वास-

हनुमान को बड़ा आत्म विश्वासी चित्रित किया गया है। जब लक्ष्मण को शक्ति लगती है, और वे मूर्छित हो जाते हैं, तब राम सर्वथा हताश हो जाते हैं, वे निरन्तर विलाप करते हैं। ऐसे समय में हनुमान ने न केवल उन्हें ढ़ाढ़स बंधाया, अपितु बड़े आत्म विश्वास से वे राम को कहते हैं –

रघुपति मन सन्देह न कीजै।
मो देखन लछिमन क्यों मरि हैं, मोको आज्ञा दीजै।।[54]

गुणवान वीर तथा पराक्रमी-

हनुमान जी की बुद्धिमता का जहां सूरदास ने वर्णन किया है, वहीं उनके पराक्रम के वर्णन में तो उन्होंने अनेक छन्द रंचे हैं। उदाहरण के लिए दो–तीन ही पर्याप्त हैं। जब हनुमान एक गिरि शिखर पर चढ़कर समुद्र को लांघने के लिए कहते हैं तो सूर कहते हैं –

---

52. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 62
53. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 62
54. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 62

गयौ कूदि हनुमन्त जब सिंधु पारा।
सेस के सीस लागे, कमठ पीठ सों, धंसे गिरिवर सबै तासु मारा।।[55]

हनुमान जी सीता जी को एक स्थान पर कहते हैं कि मैं राम का अनुचर हूँ। यदि आप आज्ञा दे।तो मैं रावण को बांधकर राम के चरणों में गिरा दूँ।

आयसु जौ होइ जननि, सकल असुर मारों।
लंकेश्वर बांधि राम–चरन तर डारों।।[56]

सीता जी विलाप करती हुई कहती हैं, मुझे लगता है, राम का स्वभाव अब बदल गया है। वे मुझे याद नहीं करते इसीलिए राम जी ने अभी तक मुझे छुड़ाने के लिए रावण का वध नहीं किया।

हनुमान, सीता को समझाते हैं कि ऐसी बात नहीं है। राम के बल की बात तो छोड़िए, मैं उनका एक छोटा सा सैनिक हूँ मुझमें ही इतना पराक्रम है कि मैं आपको–

रावण हति, लै चलौ साथ ही, लंका धरों अनूठी।
यातें जिय सकुचात, नाथ की होई प्रतिज्ञा झूठी।।[57]

सूर कहते हैं, हनुमान इतने वीर हैं कि सहज ही रावण का पराक्रम उन्हें प्रभावित नहीं कर पाता। वे नि'शंक लंका में प्रवेश कर जाते हैं। वहां उत्पात मचाते हैं और यहां तक कि सहज की रावण पुत्र अक्षय कुमार का वध कर देते हैं।

जो रावन की सकति तिहू पुर कोऊ न आज्ञा टारी।
ता रावन के अछत अक्षय सुत, सहित सेन संहारी।।[58]

---

55. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 63
56. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 63
57. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 63
58. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 63

सिंधु तट पर जब राम की सेना पहुँच जाती है, तब हनुमान को बुलाकर उनसे मंत्रणा करते हैं, कि रावण की स्थिति कैसी है? अब क्या किया जावे? हनुमान जी उन्हें बताते हैं कि यद्यपि रावण अनंत–बलशाली है, तथापि यदि आप कहें तो मैं अकेले ही रावण–कुम्भकरण का संहार कर सकता हूँ। आप कहें तो सम्पूर्ण लंका का नाश कर माता जानकी को ले जाऊँ। हनुमान जी के पराक्रम का वर्णन अनेक पदों में किया गया है। दो पदो के कुछ अंश प्रस्तुत हैं यथा–

केतिक रावन कुम्भकरन दल सुनिये देव अनन्त।
कहौ तो लंक लकुट ज्यों फेरौं, फेरि कहूँ लै डारौं।
कहौ तो परवत चांपि चरन–तर नीर–खार में गारौं।
कहौ तो असुर लंगूर लपेटौं, कहौ तो, नासि बिदारौं।
कहौ तो सैल उपारि पेड़ि तै दै सुमेर सौ मारौ।[59]

स्पष्ट वक्ता-

हनुमान जी बड़े स्पष्ट वक्ता हैं। यद्यपि जब वे पहले पहल लंका पहुँचते हैं, तब लंका दुर्ग को देखकर मन मे विचार करते हैं कि रावण प्रबल है और उसका लंका दुर्ग भी बहुत अगम तथा सुरक्षित है, चारों तरफ दानवों की सेना नगर की रक्षा कर रही है, तथापि वे रावण के सम्मुख जब बाँधकर लाये जाते हैं, तब भी वे निडर होकर रावण से स्पष्ट वार्ता करते हैं। वे कहते हैं– रावण, मैं यह देखने आया हूँ कि तू किसके बल पर राम से बैर कर रहा है। हनुमान कहते हैं कि हे रावण जो तेरे वीर सुभट हैं उन्हें सीतापति सेवक मैं कीड़ों से भी गया बीता समझता हूँ।

रावण कहता है, हनुमान तुम अपने बल का ऐसा वर्णन कर रहे हो जैसे सन्नपात का रोगी अनाप–शनाप बकता है। हनुमान इस पर रावण से पूछते हैं, ठीक है तुम बहुत बलशाली हो, तो राम की कुटी में साधु वेश धारण कर चोरी

59. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 63

से सीता–हरण करने क्यों गये ? और तुममें लक्ष्मण द्वारा खींची रेखा को पार करने की हिम्मत क्यों नहीं हुई ?

जब तू गयौ सुन भवन, भवन अंग पोते।
करते बिन प्रान तोहिं, लक्ष्मन जो होते।
पाछे तें हरौ सिया, न मरजाद राखी।
जो पै दसकंध बली, रेख क्यों न नाखी।[60]

राम काज करने को तत्पर-

हनुमान जी यद्यपि राज्यच्युत सुग्रीव के मन्त्री थे, तथापि जब से उन्होंने राम के दर्शन किये और उनका परिचय उन्हें प्राप्त हुआ, वे पूर्ण निष्ठा से राम–काज करने के लिए हमेशा तत्पर रहने लगे। अंगद ने जब उन्हें समुद्र लंघन कर सिया सुधि लाने का कार्य दिया तब वे तुरन्त तैयार हो गये और एक गिरि शिखर पर चढ़कर उन्होंने समुद्र को लांघने के लिए छलांग लगा दी।

चढि गिरि शिखर शब्द इक उचर्‌यौ, गगन उठयो आघात।
मानों गिरि पच्छ सुमेरहिं लागे उड्‌यो अकासहिं जात।।[61]

वे हमेशा अपने को राम–दूत या राम का सेवक कहते हैं। अशोकवन में सीता जी के समक्ष जब वे प्रगट हुए , तब सीता जी ने पूछा कि–

'वनचर कौन देश ह्वै आयो'?

हनुमान जी कहते हैं–

'हौं हनुमन्त राम कौ सेवक , तुम सुधि लेन पठायो '।[62]

हनुमान बार–बार राम से आज्ञा लेना चाहते हैं। कहते हैं–

---

60. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 63
61. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 65
62. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 65

हौं प्रभु जू को आयसु पाऊँ।
अबहिं जाइ उपारि लंक गढ़ , उदधि पार लै आऊँ।।[63]

आगे वे फिर कहते हैं –

रघुपति वेगि जतन अब की जै।
बांधे सिन्धु सकल सेना मिलि , आपनु आयसु दी जै।।[64]

लक्ष्मण को जब शक्ति लगती है , और वे भूमि पर अचेत पड़ जाते हैं तब राम लक्ष्मण का मुंह देख देखकर अधीर होते हैं–

'निरखि मुख राघव धरत न धीर'।[65]

उस समय रामचन्द्र जी ने हनुमान को बुलाया। महाकवि ने बड़ा मार्मिक पद रचा है–

कहां गयो मारूत पुत्र कुमार।
है अनाथ रघुनाथ पुकारे संकट–मित्र हमार।।[66]

आगे रामचन्द्र जी कहते हैं–

'को अब है पौरूष दिखरावे बिना पौन के पूत'।
'अहो पुनीत मीत के सरिसुत तुम हित बन्धु हमारे'।।[67]

हनुमान जी रामचन्द्र जी को समप्रित भाव से आवस्थ्य करते हैं–

रघुपति मन संदेह न की जै।
मो देखत लछिमन क्यों मरिहैं , मोकों आज्ञा दी जै।।[68]

---

63. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 65
64. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 65
65. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 65
66. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 65
67. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 65
68. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 66

रामचन्द्र ने हनुमान को तुरंत संजीवनी बूटी लाने के लिए द्रोणागिरि पर्वत जाने को कहा। हनुमान जी ने तत्काल आज्ञा का पालन किया। महाकवि ने कहा है–

दौना गिरि हनुमान सिधायौ।
संजीवनी कों भेद न पायो , तब सब सैल उठायौ।।[69]

हनुमान जी जब संजीवनी बूटी को पहिचान नहीं पाये।तो उन्होंने सम्पूर्ण द्रोणगिरि को उखाड़ लिया और उसे लेकर राम शिविर की ओर प्रस्थित हो गये। इस प्रकार हम देखते हैं कि हनुमान का चरित्र–चित्रण कवि ने बड़े मनोयोग से किया है।

रावण का चरित्र-चित्रण

बाल्मीकि रामायण में रावण का परिचय हमें आरण्यकाण्ड के इक्कीसवें सर्ग में होता है, जब राम से पराजित खर–दूषण इत्यादि महापराक्रमी राक्षसों की सेना में से बचकर अकम्पन नामक राक्षस रावण के दरबार में पहुँचकर , उसे यह समाचार देता है , कि जनस्थान में राक्षस समुदाय का विनाश , अयोध्या के महाराज दशरथ के पुत्र राम ने कर दिया है। रावण के क्रोधित होने पर अकम्पन उसे समझाता है कि आप राम को युद्ध में नहीं हरा सकते , क्योंकि वे महाबलशाली हैं। वह रावण को यह युक्ति बताता है कि रावण , राम की परम रूपवती पत्नी का हरण कर लें , इससे राम , सीता के वियोग में प्राण छोड देंगे। रावण को यह युक्ति पसंद आ जाती है।

सूर के अपने राम–काव्य में ऐसा कोई प्रसंग उपस्थित नहीं किया है। वे सूपर्णखा का कामवश होकर राम–लक्ष्मण के पास जाने की कथा अत्यन्त संक्षेप में कहकर यह बताते हैं कि नाक काटे जाने पर सूपर्णखा सहित रावण के दरबार में जाती है और रावण के समक्ष अपना दुखडा सुनाती है। रावण मारीच इत्यादि राक्षसों के साथ दंडक बन में आता है।

---

69. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 66

मारीच यहां स्वर्ण मृग का रूप धर विचरण करता है, जिसे मारने का सीता , राम से निवेदन करती हैं और राम धनुष–बाण लेकर इस मृग के पीछे दूर निकल जाते हैं।

कपटी तथा छली-

रावण का प्रथम परिचय ही सूरदास ने एक कपटी साधु के रूप में कराया है , जो छल से सीता का हरण करता है। यहां महाकवि ने एक नई कल्पना की है कि सीता हरण कर लेने पर रावण को उसी प्रकार डर लगता है जैसे कोई अत्यन्त निर्धन व्यक्ति अपार धनराशि पाकर डरता है।

रावण तुरत विभूति लगायै , कहत आइ , मिच्छा दे माई।
दीन जानि सुधि आनि भजन की, प्रेम सहित भिच्छा ले आई।
हरि सीता लै चल्यो डरत जिय, मनौ रंक महानिधि पाई।
सूर सीय पछिताति यहै कहि करम–देख मेटी नहि जाई।[70]

सूर ने रावण को चोर भी कहा है यथा–

'तबहि निसचर गयो छलि करि, लई सीय चुराई'।[71]

सुदृढ़ शासक एवं सुनियोजित दुर्गपति-

रावण को यद्यपि राक्षस कहा गया है,परन्तु वह सुनियोजित तथा सजी–धजी लंका का स्वामी है। उसका प्रशासन मंत्रियों सहित योग्य ढंग से संचालित बताया गया है।

बाल्मीकि रामायण में सूपर्णखा यह अवश्य कहती है कि ''हे रावण तू कामी है और तेरी गुप्तचर व्यवस्था अत्यन्त निकृष्ट है अतएव तेरा पतन अनिवार्य है"। सूर ने इस प्रकार कोई बात नहीं दर्शाती है।

---

70. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 67
71. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 67

हनुमान ने लंका पहुँचने पर, वहां जो उन्होंने देखा उसका, सूर ने जो वर्णन किया है, उससे यह पता चलता है कि लंका नगरी सुनियोजित ढंग से बसी थी यथा–

चहुँ दिसि लंक दुर्ग दानवदल, कैसे पाऊँ जान।
सौ जोजन विस्तार कनकपुरि, चकरी जोजन बीस।
मनो विस्वकर्मा कर अपुनै रचि राखी गिरि सीस।
बरजत रहत मस्त गज चहुँ दिसि, छत्र धुजा चहुँ दीस।
भरमित भयो देखि मारूत–सुत, दियो महाबल ईस।[72]

लंका के अशोक वन में अनेक प्रकार के वृक्ष , फलफूल लगे हुए हैं। हनुमान जी कहते हैं–

'अगनित तरू , फल सुगन्ध , मृदुल मिष्ट खाटे'।[73]

लंका दुर्ग की सुदृढ़ता का गर्व रावण स्वयं करता, कहता था, इसीलिए मन्दोदरी उसे समझाते हुए कहती हैं–

'लंका सौं कोटि देखि जनि गरबहिं, अरू समुद्र सी खाई'।[74]

इससे यह पता चलता है कि रावण ने लंका दुर्ग के चारों तरफ गहरी खाइयां भी खुदवा रखी थीं।

हनुमान को जब बांधकर रावण दरबार में प्रस्तुत किया जाता है, तब रावण क्रोध में आकर उसे अनाप–शनाप दंड नहीं देता। हनुमान ने बड़ा संहार किया था, और यहां कि अक्षयकुमार को भी मार डाला था रावण मन्त्रियों से कहता है कि इस राम–दूत के दण्ड की व्यवस्था वे बतलायें–

'मन्त्रिनि नीको मन्त्र विचार्यो'।[75]

---

72. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 67
73. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 68
74. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 68
75. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 68

अभिमानी-

रावण को एक अभिमानी और अपने मुंह से अपनी प्रशंसा करने वाले व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। एक स्थान पर रावण अपनी पत्नी मन्दोदरी के सामने अपने बल का वर्णन करते हुए कहता है–

कोटि तैतीस सुर सैव अहिनिसिकर, राम अरू लच्छमन हैं कहां री।
मृत्यु को बांधि मै राखियौ कूप में, देहि आवन कहा डरत नारी।।[76]

अंगद जब राम दूत बनकर रावण के समक्ष आता है और रावण को राम से सुलह करने की बात करता है, तब रावण उसे भी बडे अभिमान से बताता है–

"सुर असुर जाति में सब किये आप बस,
सूरमन सुजस तिहं लोक छायो"।।[77]

रावण, अंगद को, अपने पराक्रम के विषय में आगे बताता है, कि अग्नि मेरे यहां भोजन पकाती है, इन्द्र पानी भरता है, पवन मेरे द्वार की सफाई करता है, नारद मेरे घर गायन करते हैं, देवगुरू बृहस्पति तिथि बतलाने के लिए नियुक्त हैं। इतना ही नहीं ब्रह्मा नित्य मेरे महल में वेद पढ़ने के लिए पदस्थ हैं।

पाक पावक करै, वारि सुरपति भरै, पौन पावन करै द्वार मेरे।
गान नारद करै, बार सुरगुरू कहै, वे ब्रह्मा पढ़ै पौरि टेरे।
जच्छ, मृतु बासुकौ नाग, मुनि, गधरब, सकल बसु जाति में किये चेरे।[78]

रावण को अपने बल और अपनी बुद्धि का इतना घमण्ड है कि वह विभीषण के समझाने पर उसे कायर और डरपोक कहकर पैर की ठोकर मारकर भगा देता है।

---

76. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 68
77. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 68
78. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 68 व 69

'कह्यो लंकेस दै ठेस पग की तबै, जाहि मति मूढ़ कायर डरानो'।[79]

महाकूटनीतिज्ञ-

रावण महाकूटनीतिज्ञ था। सूर ने इस विषय मे एक मौलिक कल्पना की है। अंगद जब राम–दूत होकर रावण के दरबार में पहुंचता है और अंगद रावण को कई प्रकार से समझाते हैं, तब रावण क्रोध न करते हुए अंगद को अपने विश्वास में लेने की कूटनीति करता है, और एक बड़े नाजुक प्रसंग की ओर अंगद का ध्यान आकृष्ट करता है। वह अंगद को कहता है, हे अंगद, तू यह क्या कर रहा है ? क्या भूल गया कि यह वही राम है, जिसने धोखा देकर तेरे वीर पिता का संहार किया है। यदि तू चाहे तो मैं तूझे अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने में सहयोग दे सकता हूँ। अंगद को मौन देखकर रावण उसे उत्तेजित करते हुए कहता है कि, हे अंगद तू इतना पौरूषहीन है तो मैं स्वयं, तथा मेरी पूरी सेना तेरा साथ देने को तत्पर है। रावण, अंगद को लंका का आधा राज भी देने को तैयार हो जाता है। वह अंगद को पुनः उकसाता है कि, तेरे स्थान पर बालि को कन्या होती तो ही ठीक था।

रे कपि क्यों पितु–बैर विसार्‌यो।
तो समतुल कन्या किन उपजी, जो कुल–सत्र न मार्‌यो।
ऐसो सुभट नहीं महि मण्डल, देख्यो बालि–समान।
तासौ कियो बैर मैं हार्‌यो,कीन्हीं पैंज–प्रमान।
ताको बध कीन्हों दूहिं रघुपति, तुम देखत विद्‌मान।
ताकौ सरन रह्यो क्यों भावे शब्द न सुनिये कान।
जो तोहि नाहिं बाहु–बल पौरूष, अर्ध राज देऊँ लंक।
मो समेत ये सकल निसाचर, लंरत न माने संक।[80]

हठी-

रावण महा हठी था। सूरदास ने मन्दोदरी द्वारा रावण को बार–बार समझाने की चेष्टा की है, पर रावण अपना हठ छोड़ने को तैयार नहीं होता। मन्दोदरी कहती है–

79. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 69*
80. *श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 69*

रावन उठि निरखि देखि, आजु लंक घेरौ।
कोटि जतन करि रही, सिख मानी नहिं मेरी।।[81]

आगे मन्दोदरी कहती है–

"कहत मन्दोदरि सुनि पिय रावन, तैं कहा कुमति कमाई"।[82]

जब रावण कुम्भकर्ण को जगाता है, और सारी स्थिति बताकर उसे युद्ध में भेजने का प्रयास करता है, तब कुम्भकर्ण रावण को कहता है–

"तू बुरी बहुत कीन्हीं, कहा तोहिं कहौं,
छांड़ि जस जगत अपजस बढांयो"।[83]

महाआतंकवादी–

रावण का आतंक इतना अधिक था कि महाकवि सूरदास ने देवताओं के बहाने राम को अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने का स्मरण दिलाते हुए कहलवाया है–

रघुपति अपनौ प्रन प्रति पार्‌यौ।
तोर्‌यो कोपि प्रबल गढ़ रावन, टूक–टूक करि डार्‌यौ।[84]

—— ——

सुर, नर, मुनि, सब सुजस बखानत, दुष्ट दसानन मारौ।
डरपत बरून, कुबेर, इन्द्र, जम, महा सुभट पन धारौ।
रह्‌यो मांस को पिंड, प्राण लै गयो बान अनियोरो
नव–ग्रह परे रहें पाटी–तर कूपहिं काल उसारो।[85]

इस प्रकार सूरदास ने अपेक्षाकृत छोटी राम कथा में रावण का चरित्र चित्रण विस्तार से किया है।

---

81. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 70
82. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 70
83. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 70
84. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 70
85. श्रीपति वाजपेयी, प्रथम संस्करण 1990, सूर का राम काव्य, पृ0 70

सूर के लक्ष्मण

लछिमन नैन नीर भरि आए।
उत्तर कहत कछू नहिं आयौ रह्यौ चरन लपटाए।।
अंतरजामी प्रीति जानि कै लछिमन लीन्हौ साथ।
सूरदास रघुनाथ चले बन पिता बचन धरि माथ।।[86]

लक्ष्मण की आँखों में आँसू भर आए। उससे कोई उत्तर देते नहीं बन पड़ा, वह (श्रीराम के) चरणों में लिपट गया। अन्तर्यामी (श्रीराम ने लक्ष्मण के) प्रेम को पहचान कर लक्ष्मण जी को साथ में ले लिया। सूरदास कहते हैं कि वे पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर वन की ओर चल पड़े।

लै भैया केवट उतराई।
महाराज रघुपति इतु ठाढ़े तैं कत नाव दुराई।।
अबहिं सिला तैं भई देव गति जब पग रेनु छुवाई।
हौं कुटुंब काहैं प्रतिपारौं वैसी यह ह्वै जाई।।
जाकी चरन रेनु की महि मैं सुनियत अधिक बड़ाई।
सूरदास प्रभु अगनित महिमा बेद पुराननि गाई।।[87]

भैया केवट! तुम अपनी उतराई (पहले) ले लो। महाराज रघुनाथ इधर खड़े हैं; तुमने नाव क्यों छिपा दी है? (केवट बोला) अभी–अभी जब महाराज ने एक शिलाखंड में चरणधूलि का स्पर्श कराया तो उसकी देवगति हो गई। यदि कहीं मेरी नौका भी उसी प्रकार हो गई तो मैं अपने परिवार का पालन–पोषण कैसे करूँगा? सूरदास कहते हैं कि धरती पर जिनके चरण–रज की अत्यधिक बड़ाई सुनी जाती है उन सूर के प्रभु की अपार महिमा का वेद–पुराणों ने भी गान किया है।

सूर की कौशिल्या

रामहिं राखौ कोऊ जाइ।
जब लौ भरत अजोध्या आवैं कहत कौसल्या माइ।।
पठवौ दूत भरत कौं लयावन बचन कह्यौ बिलखाइ।

---

86. डॉ0 हरदेव बाहरी व डॉ0 राजेन्द्र कुमार अनुवादक संपादन संस्करण 1991 (संशोधित) पद सं0 37, पृ0 37
87. डॉ0 हरदेव बाहरी व डॉ0 राजेन्द्र कुमार अनुवादक संपादन संस्करण 1991 (संशोधित) पद सं0 41, पृ0 227

दसरथ बचन राम बन गवने यह कहियौ अरथाइ।।
आए भरत दीन ह्वै बोले कहा कियौ कैकेई माह।
हम सेवक वै त्रिभुवनपति कत स्वान सिंह बलि खाइ।।
आजू अजोध्या जल नहिं अँचवौ ना मुख देखौ माइ।
सूरदास राघव बिछुरन तैं मरन भलौ दव लाइ।। [88]

माता कौशल्या कहने लगीं– "जब तक भरत अयोध्या नहीं आ जाते हैं तब तक के लिए कोई जाकर श्रीराम को रोक लो।" बिलखते हुए माता ने कहा–"भरत को लाने के लिए दूत भेज दो। यह समझाकर कह देना कि राजा दशरथ की आज्ञा से राम वन को चले गए हैं।" भरत अयोध्या आए और दीन होकर बोले–कैकेयी माँ ने यह क्या किया? हम लोग तो सेवक हैं, वे तीन लोक के स्वामी है। क्या कुत्ता सिंह की बलि खायगा? आज मैं अयोध्या में जल का आचमन (कुल्ला) तक नहीं करूँगा और न माता (कैकेयी) का मुहँ देखूँगा। सूरदास कहते हैं कि राम के वियोग की अपेक्षा तो आग लगाकर जल मरना ही अच्छा है।

कौशल्या सन्देश राम प्रति
सुनौ कपि कौसिल्या की बात।
इहिं पुर जनि आवहु मम बत्सल बिनु लछिमन लघु भ्रात।।
छाँड़्यौ राज काज माता हित तुव चरननि चित मानै।
कहा कहूँ कछू कहत न आवै सज्जन होइ सु जानै।।
लछिमन सहित कुसल बैदेही आनि राज पुर कीजै।
नातरू सूर सुमित्रा सुत पर वारि अपुनपौ दीजै।। [89]

'वानर! कौसल्या की बात सुनो। मेरा बेटा अपने छोटे भाई लक्ष्मण के बिना इस नगर में न आए। उसने राजकाज और माँ का प्यार छोड़कर और तुम्हारे चरणों में चित्त लगाया था। क्या कहूँ? कुछ भी कहते नहीं बन रहा है। जो सज्जन (सहानुभूतिपूर्ण) है, वह (स्वतः) जान जाएगा। हे वीर राम, या तो लक्ष्मण और जानकी सहित आकर अयोध्या में राज्य करा अन्यथा अपने आपको सुमित्रानंदन लक्ष्मण पर न्योछावर कर दो।'

---

88. डॉ0 हरदेव बाहरी व डॉ0 राजेन्द्र कुमार अनुवादक संपादन संस्करण 1991 (संशोधित) पद सं0 48, पृ0 230
89. डॉ0 हरदेव बाहरी व डॉ0 राजेन्द्र कुमार अनुवादक संपादन संस्करण 1991 (संशोधित) पद सं0 154, पृ0 280

सूर की सुमित्रा

धनि जननी जौ सुभटहिं जावै।
भीर परैं रिपु कौ दल दलि मलि कौतुक करि दिखरावै।।
कौसिल्या सौं कहति सुमित्रा जनि स्वामिनि दुख पावै।
लछिमन जनि हौं भई सपूती रामकाज जो आवै।।
जीवै तौ सुख बिलसे जग मैं कीरति लोकनि गावै।
मरै तौ मंडल भेदि भानु कौ सुरपुर जाइ बसावै।
लोह गहै लालच करि जिय कौ औरौ सुभट लजावै।
सूरदास प्रभु जीति सत्रु कौं कुसल छेम घर आवै।।[90]

सुमित्रा माता कौशल्या से कहने लगी – हे स्वामिनी ! तुम दुःखी मत होओ। वह माता धन्य है, जो ऐसे वीर पुत्र को पैदा करे संकट पड़ने पर शत्रुदल को रौंद–रौंदकर अचरज कर दिखाए। लक्ष्मण को उत्पन्न करके मैं जो सपूती हो गई हूँ जो कि राम के काम आया। यदि वह जीता रहेगा, तो संसार में सुख भोग करेगा, लोकों में उसकी कीर्ति गाई जायेगी; और यदि मर जायगा तो सूर्य मंडल का भेदन कर स्वर्ग में निवास पाएगा। जो अस्त्र शस्त्र धारण करके प्राणों का लोभ करते हैं; वे अन्य वीरों को लज्जित करते है। सूरदास के प्रभु राम शत्रुओं को जीत कर सकुशल घर आएँगे।

सूर के दशरथ

दशरथ सौं रिषि आनि कह्यौ।
असुरनि सौ जग होन न पावत राम लषन तब संग दयौ।।
मारि ताडुका यज्ञ करायौ बिस्वामित्र अनंद भयौ।
सीय स्वयंबर जानि सूर प्रभु कौ लै रिषि ता ठौर गयौ।।[91]

ऋषि (विश्वामित्र) ने राजा से आकर कहा कि असुरों के (उत्पात के) कारण यह सम्पन्न नहीं हो पा रहा है। तब राम और लक्ष्मण को उनके साथ भेज दिया गया। (फिर श्रीराम ने) ताड़का का वध करके यज्ञ सम्पन्न कराया। विश्वामित्र आनंददित हुए। (कालानतर) सीता के स्वयंवर का समाचार पाकर विश्वामित्र सूर के प्रभु (श्रीराम) को लेकर उस जगह गए।

---

90. डॉ0 हरदेव बाहरी व डॉ0 राजेन्द्र कुमार अनुवादक संपादन संस्करण 1991 (संशोधित) पद सं0 153, पृ0 280

91. डॉ0 हरदेव बाहरी व डॉ0 राजेन्द्र कुमार अनुवादक संपादन संस्करण 1991 (संशोधित) पद सं0 21, पृ0 220

रघुनाथ पियारे आजु रहौ हो।
चारि जाम बिस्त्राम हमारे छिन छिन मीठे बचन कहौ हो।।
बृथा होहु बर बचन हमारौ कैकेई जीव कलेस सहौ हो।
आतुर ह्वै अब छाँड़ि कुसलपुर प्रान जिवन कित चलन कहौ हो।।
बिछुरत प्रान पयान करैंगे रहौ आजु पुनि पंथ गहौ हो।
अब सूरज दिन दरसन दुरलभ कलित कमल कर कंठ गहौ हो।।[92]

हे प्यारे रघुनाथ ! आज भर रूक जाओ। मेरे पास (कम से कम) चार पहर ठहर कर क्षण–क्षण मीठे वचन बोलो। मेरा वचन भले ही वृथा (अन्यथा) हो जाय औश्र कैकेयी के मन में भले ही कष्ट का अनुभव हो। हे मेरे प्राण–दाता ! तुम आतुर हो अयोध्या छोड़ कहाँ चलने की की बात कहते हो? तुम्हारे बिछुड़ते ही हमारे प्राण प्रस्थान कर देगें। आज तो रह जाओ, फिर रास्ता पकड़ना। सूरदास कहते है कि अब आगे के दिनों में तो तुम्हारा दर्शन दुर्लभ होगा। अब अपने सुन्दर कर–कललों को हमारे गले में डालकर आलिंगन कर लो।

फिरि फिरि नृपति चलावत बात।
कहु री सुमति कहा तोही कहा तोहीं पलटी प्रान जिघन कैसे बन जात।।
ह्वै बिरक्त सिर जटा धर द्रुमचर्म भस्म सब गात।
हा हा राम लछन अरू सीता भोजन जु डसावै पात।।
बिन रथ रूढ़ दुसह दुख मारग बिन पदत्रान चलै दोउ भ्रात।
इहिं बिधि सोच करत अतिहि नृप जानकि ओर निरखि बिलखात।।
इतनी सुनत सिमिटि सब आए प्रेम सहित धारे अँसुपात।
ता दिन सूर सहज सब चकित सबर सनेह तज्यो पितु मात।।[93]

महाराज (दशरथ) बार–बार इसी बात की चर्चा चलाते हैं– अरी, बता तो, तेरी सुबुद्धि कैसे बदल गई? मेरे प्राण और जीवन कैसे वन में जा रहे हैं? हाय हाय! राम, लक्ष्मण और जानकी विरागी होकर, सिर पर जटाएँ धारण करे तथा शरीर पर भस्म लगाए एवं वल्कल धारण किए हुए फल का भोजन करें और

---

92. डॉ0 हरदेव बाहरी व डॉ0 राजेन्द्र कुमार अनुवादक संपादन संस्करण 1991 (संशोधित) पद सं0 33, पृ0 225

93. डॉ0 हरदेव बाहरी व डॉ0 राजेन्द्र कुमार अनुवादक संपादन संस्करण 1991 (संशोधित) पद सं0 38, पृ0 226

पत्तों का बिस्तर लगाएँ! देख, वे दोनों भाई बिना रथ, नंगे पैर, कठोर दुःखदायी मार्ग पर चले जा रहे होंगे। इस प्रकार महाराजा दशरथ अत्यंत शोकग्रस्त हो रहे हैं और जानकी की सोच–सोच कर बिलख–बिलख कर रोने लगते हैं। महाराज के इस विलाप को सुनकर सब लोग वहाँ एकत्र हो गये और सबके प्रेमाश्रु उमड़ आए। सूरदास कहते हैं कि उस दिन सब सहज ही परेशान थे; माता पिता ने भी धैर्य और स्नेह त्याग दिया।

अध्याय-6

सूरदास की उपासना एवं भक्ति पद्धति

सिद्धान्त और उपासना

सूर का काव्य ज्ञान और योग्य मार्ग भक्ति की दृढता-

सूरदास कृष्ण भक्ति थे। भारतीय धर्मसाधना में कृष्ण की उपासना अत्यन्त प्राचीन है। कृष्ण का प्राचीनतम उल्लेख ऋग्वेद के आठवें मंडल के 74 वें सूक्त में हुआ है। उन्हें उस सूक्त का रचयिता ऋषि कहा गया है। अनुक्रमणी के लेखक ने उन्हीं कृष्ण को अंगिरस का वंशज बताया है और कौशीतकी ब्राह्मण में भी उन्हीं अंगिरस कृष्ण का उल्लेख है। छान्दोग्य उपनिषद् में देवकीपुत्र कृष्ण को घोर अंगिरस का शिष्य बताया गया है। यही कृष्ण भागवत धर्म के प्रवर्तक हुए और उस धर्म में देवाधिदेव के रूप में उनकी पूजा प्रचलित हुई। भागवतधर्म की स्थापना के साथ भक्तिसाधना के क्रमबद्ध विकास का प्रथम चरण आरम्भ हुआ। पाणिनीय के कतिपय सूत्रों पर पंतजलि के भाष्य, घोसुंडी, बेसनगर और नानाघाट की गुफाओं में प्राप्त अभिलेखों के आधार पर डा0 भंडारकर ने यह सिद्ध कर दिया है कि ई0 पू0 तीसरी–चौथी शताब्दी में भारत के पश्चिमोत्तर भाग में भागवत धर्म फैल गया था और उसमें देवाधिदेव के रूप में वासुदेव कृष्ण की पूजा होती थी। कृष्ण ने अपने अनुयाइयों को जिन बातों का उपदेश दिया, उनका बीज रूप प्राचीन उपनिषद में इतस्ततः बिखरा पड़ा था। गीता में विचार श्रँष्खला की उन कड़ियों को परस्पर संयुक्त कर उन्हें व्यवस्थित स्वरूप दे दिया गया। इसीलिए गीता को उपनिषदरूपी गायों का अमृतोपम दुग्ध कहा जाता है। गीता की रचना के समय भारतीय अध्यात्म चिन्तन में दो प्रकार की विचार धाराएं प्रचलित थीं जिन्हें क्रमशः "ज्ञानयोग" और "कर्मयोग" की संज्ञा से अभिहित किया जाता था। श्रीकृष्ण ने दोनों मार्गों में सामंजस्य स्थापित कर एक नवीन मार्ग प्रशस्त किया, जो आगे चलकर एकान्तिक धर्म के नाम से विख्यात हुआ। इस धर्म में पूर्ण समप्रण के साथ निष्काम भाव से की जाने वाली भक्ति को मोक्ष प्राप्त करने के अनेक साधनों में सबसे उत्तम और सरल बताया गया है। भक्ति की ऐसी विशद और सुस्पष्ट व्याख्या उससे पहले किसी एक ग्रंथ में

देखने को नहीं मिलती। इसलिए गीता को भक्ति का प्रवर्तक प्रथम व्यवस्थित ग्रंथ कहना चाहिए।

एकान्तिक धर्म अपनी पूर्ववर्ती और परवर्ती अनेक विचारधाराओं से मिलकर नवीन वैष्णवधर्म में प्रवर्तित हुआ। वैष्णवधर्म में चार विचारधाराएँ मिली हुई थीं। एक के आरध्य विष्णु, दूसरी के नारायण, तीसरी के वासुदेव कृष्ण और चौथी के गोपाल कृष्ण थे। गीता की रचना के समय तक यह मान्यता प्रचलित हो गयी थी कि दुष्टों का विनाशकर सत्पुरूषों की रक्षा और धर्म की स्थापना करने के लिए भगवान् प्रत्येक युग में अवतरित होते हैं। दुखों से पीड़ित मानवों की रक्षा करने का गुण वैदिक देवता विष्णु में विद्यमान था।

इसलिए कृष्ण ने अपने को आदित्यों में विष्णु बताया। वैष्णवधर्म का संगठन होने पर उसमें वैदिक देवता विष्णु को सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। वासुदेव कृष्ण, जो भागवत धर्म में देवाधिदेव माने जाते थे, अब विष्णु के अवतार मात्र रह गये।

ईसा की चौथी शताब्दी से लेकर छठीं शताब्दी के मध्य तक उत्तर भारत में गुप्त साम्राज्य ने वैष्णवभक्ति के प्रचार–प्रसार में महान् योग दिया। जिस प्रकार वासुदेव कृष्ण की निष्काम भक्ति की विशद व्याख्या करने के लिए गीता की रचना हुई थी, उसी प्रकार गोपालकृष्ण की मधुरोपासना का सर्वांगपूर्ण विवेचन करने के लिए भागवत की रचना की गयी। यही भागवत पुराण कृष्णभक्तो की प्रेमलक्षणा भक्ति का प्रतिपादक प्रधान ग्रन्थ हुआ और गोपाल कृष्ण भक्तिभाव के मधुर आलम्बन बने। गुप्तसाम्राज्य का अन्त होने के अनन्तर उत्तर भारत में वैष्णवभक्ति का प्रखर सूर्य शनैः शनैः मेद्याच्छन्न होने लगा और उसका उदय दक्षिण भारत में आलवर भक्तों की तमिल रचनाओं के साथ हुआ।

महाभारत काल में मगधसम्राट जरासन्ध ने शूरसेन राज्य पर कई बार आक्रम किया था। उसके कारण यादवों का एक बड़ा समुदाय कृष्ण–बलराम के

साथ मथुरा से द्वारका चला गया। जब द्वारका में गृहकलह की दुखान्त घटना हुई तब उनमें से तमाम लोग वहां से हटकर अन्यत्र चले गये। वे सब सौराष्ट्र, गुजरात, महाराष्ट्र, विदिशा, विदर्भ, कर्नाटक, यहाँ तक कि सुदूर दक्षिण के तमिल प्रदेश में जाकर बसे। उनके कारण दक्षिण भारत में भागवत धर्म के प्रचार का समुचित वातावरण बना हुआ था जो समय आने पर आलवारों के भक्ति आन्दोलन के लिए बहुत सहायक हुआ। छठीं शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक बारह प्रमुख आलवारों ने भक्ति की पावनसलिलागंगा के नैसर्गिक प्रवाह से तमिल प्रदेश की जनता को आप्यायित किया। उनके भक्तिभाव भरितगीतों का विशाल संग्रह 'प्रबन्धम्' अपनी पवित्रता और आध्यात्मिकता के कारण दाक्षिणात्य भक्तों मे तमिलवेद के नाम से विख्यात है। प्रपत्ति या भगवत् शरणागति अर्थात् भगवान् के श्री चरणों में अपने जीवन का पूर्ण विसर्जन आलवारों की भक्ति का प्रधान गुण है।

वैष्णव भक्ति के आधरभूत सिद्धान्तों का विवचन कर आलवारों की भक्तिभावना को ठोस दार्शनिक आधार पर प्रतिष्ठित करने का कार्य रामानुज, निम्बार्क, मध्व और विष्णुस्वामी आदि आचार्यों द्वारा सम्पन्न किया गया। इन आचार्यों ने शंकर के अद्वैत सिद्धांत और मायावाद का खंडन करने के लिए क्रमशः विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, द्वैत और शुद्धाद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उनके द्वारा चलाये गये सम्प्रदायो को क्रमशः श्री, सनक, बह्म और रूद्र के नाम से जाना जाता है। और उनकी एक साथ गणना करने के लिए उन्हें 'चतुःसम्प्रदाय' कहते है। भक्तिसाधना के क्षेत्र में उपर्युक्त आचार्यों का सीधा प्रभाव चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ तक बना रहा। उसके बाद उनकी परम्परा में पाँच अन्य महापुरूषों– रामान्नद, बल्लभाचार्य, चैतन्य, हितहरिवंश और हरिदास का आविर्भाव हुआ। रामानन्द ने रामावत सम्प्रदाय की स्थापना की, बल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग का प्रचार किया, चैतन्य ने गौड़ीय सम्प्रदाय चलाया। इसी प्रकार हितहरिबंश और हरिदास ने क्रमशः राधा बल्लभ सम्प्रदाय और सखी सम्प्रदाय

का प्रवर्तन किया। इन परवर्ती सम्प्रदायों का प्रचार हो जाने के बाद भी निम्बार्क सम्प्रदाय का स्वतंत्र अस्तित्व बना रहा। इस प्रकार 16वीं शताब्दी तक ब्रजभूमि में कृष्णभक्ति पर आधारित छः सम्प्रदाय प्रचलित हो गये।

दक्षिण के भक्ति आन्दोलन को उत्तर भारत में व्यापक और लोकप्रिय बनाने का श्रेय स्वामी रामानन्द को है। उपासना के क्षेत्र में राम की विधिवत् प्रतिष्ठा उन्हीं के समय में हुई। उनके पश्चात रामोपासना दो धाराओ में बँट गयी। निर्गुणधारा का नेतृत्व महात्मा कबीरदास ने किया और सगुणधारा में गोस्वामी तुलसीदास का आविर्भाव हुआ। हिन्दी भाषी क्षेत्र में राम कथा को जन–जन तक पहुँचाने का श्रेय भक्त शिरोमणि, महाकवि गोस्वामी तुलसीदास के अलावा किसी दूसरे को नहीं दिया जा सकता। वे सूरदास के कनिष्ठ समकालीन थे और अनुमान किया जाता है कि सूरदास से उसकी भेंट हुई थी।

स्वामी रामानन्द के बाद लगभग उन्हीं जैसा समर्थ और शक्तिशाली दूसरा व्यक्तिव बल्लभाचार्य का था। उन्होंने पुष्टिमार्ग के नाम से एक विशिष्ट साधना प्रणाली का प्रवर्तन किया। दार्शनिक सिद्धान्त की अभिन्नता के कारण पुष्टिमार्ग विष्णुस्वामी के रूद्र सम्प्रदाय का अनुवर्ती था लेकिन स्वतंत्र विकास और भक्तितत्व की भिन्नता के कारण वह अलग सम्प्रदाय बन गया। बल्लभाचार्य जी द्वारा श्रीनाथ जी के विग्रह की प्रतिष्ठा और उसकी अष्टयाम सेवाविधि के साथ पुष्टिमार्गीय भक्ति की लोकप्रियता में वृद्धि। प्रारम्भ में श्रीनाथ जी की नित्य सेवा में वात्सल्य भाव की प्रधानता थी। बल्लभाचार्य के द्वितीय पुत्र विट्ठलनाथ ने नित्य सेवा में स्वामिनी श्री राधा जी को महत्वपूर्ण स्थान देकर पुष्टिमार्गीय भक्ति में माधुर्य भाव का विधिवत् समावेश किया। अष्टयाम सेवा के समय संकीर्तन के लिए आठ कुशल कवियों और निपुण संगीतज्ञों को नियुक्त कर विट्ठलनाथ ने दूसरा महत्वपूर्ण कार्य किया। वे आठ कवि अष्टछाप के नाम से विख्यात हुए। सूरदास उनमें प्रधान थे। आचार्य शुक्ल के शब्दों में "आचार्यों की छपा लगी हुई

आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेमलीला का कीर्तन करने उठीं जिनमें सबसे ऊंची, सुरीली और मधुर झनकार अंधे कवि सूरदास की वीणा की थी"।

बल्लभाचार्य

शंकराचार्य के मायावाद का खंडन करके भक्तिमार्ग को प्रशस्त करने में जिन आचार्यो ने विशेष भूमिका निभाई उनमें एक प्रमुख नाम बल्लभाचार्य का भी है। उनका जन्म सं0 1535 वि0 में वैसाख कृष्ण 11 को मध्यप्रदेश में रायपुर के समीप चम्पारण्य नामक स्थान पर हुआ था। उनके पिता श्री लक्ष्मण भट्ट दाक्षिणात्य तैलंग ब्राह्मण थे और बल्लभ के जन्म से कुछ ही समय पूर्व अपने पैत्रिक निवास स्थान आन्ध्रप्रदेश के काकंभकर (काकरवाड़) नामक गाँव से आकर वाराणसी में रहने लगे थे। वाराणसी में उपद्रव बढते देखकर वे सपत्रीक रायपुर जा रहे थे कि रास्ते में बल्लभ का जन्म हुआ। पुत्रजन्म के अनन्तर वे पुनः आकर वाराणसी में रहने लगे। बल्लभ की माता इल्लमादेवी विद्यानगर (विजयनगरम्) के राजपुरोहित सुशर्मा की पुत्री थीं। उसी विद्यानगर के नरेश श्री कृष्णदेव ने बाद में बल्लभाचार्य से दीक्षा ली थी और उन्हें कनकाभिषेक से सम्मानित किया था।

बल्लभाचार्य ने वाराणसी में रहकर अपने पिता श्री लक्ष्मण भट्ट तथा उस समय के उन्य प्रसिद्ध विद्वानों से वेद वेदांगों तथा श्रीमद्भागवत की शिक्षा प्राप्त की। पिता की मृत्यु के पश्चात् माता इल्लमा के साथ वे अपने पूर्वजों की मातृभूमि कांकरवाड़ गये और वहाँ से विजयनगर पहुँचे जहाँ महाराज कृष्णदेव की राजसभा में बड़े–बड़े पंडितो को शास्त्रार्थ में पराजित करके उन्होंने प्रभूत सम्मान प्राप्त किया। महाराज कृष्णदेव उनके पांडित्य से प्रभावित होकर उनके शिष्य बन गये और कनकाभिषेक का आयोजन करके उन्होंने बल्लभाचार्य का अभूतपूर्व सम्मान किया।

श्री कृष्णदेव की राजसभा में अनेक पंडितों को पराजित करके और महाराज से अभूतपूर्व सम्मान प्राप्त कर महाप्रभु का यश बड़ी तेजी से दूर–दूर तक फैलने लगा। उन्होंने अपने मत का प्रचार–प्रसार करने के निमित्त भारत भ्रमण (पृथ्वी–प्रदक्षिणा) करने का निश्चय किया। एतन्निमित्त उन्होंने तीन बार पृथ्वी प्रदक्षिणा की। पहली बार में उन्होंने भौगोलिक स्थानों और जगह– जगह के निवासियो से परिचय प्राप्त किया। दूसरी बार मे स्थान–स्थान पर अपने शिष्य बनाए और तीसरी बार में देवालयों की स्थापना की। दूसरी पृथ्वी प्रदक्षिणा के अन्त में काशी पहुँचकर उन्होनें वहां के प्रसिद्ध विद्वान ब्राह्मण श्री देव भट्ट की कन्या महालक्ष्मी से विवाह किया जिससे उन्हें गोपीनाथ और विट्ठलनाथ नाम के दो पुत्र हुए। विवाह के छः माह पश्चात् उन्होंने तीसरी बार पृथ्वी प्रदक्षिणा का संकल्प किया और उसी यात्रा में उन्होंने गोवर्धन पर्वत पर श्रीनाथ जी का विग्रह स्थापित किया। यही स्थान अब बल्लभ सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र है। इसी मंदिर में सूरदास तथा अष्टछाप के अन्य कवि कीर्तन सेवा का कार्य करते थे।

गोवर्धन पर श्रीनाथ जी की स्थापना न केवल बल्लभाचार्य के जीवन की वरन् भारतीय धर्मसाधना के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। सं01556 वि0 में वैसाख शुक्ल 3को उसकी नींव रखी गयी और उसके पूरे बीस साल बाद सं01576 में उसी तिथि को उसमें श्रीनाथ जी की प्रतिष्ठा हुई। यह महत्वपूर्ण कार्य कर लेने के उपरान्त महाप्रभु–साल कामल सं01576 में उसी ने उपने जीवन का शेष समय, ग्रन्थों की रचना करने में लगाया। गोलोकवास से कुछ समय पूर्व उन्होंने गृहस्थाश्रम का त्याग कर दिया और सन्यास लेकर काशी में गंगा तट पर रहने लगे। वहीं पर सं0 1587 वि0 में अषाढ शुक्ल 2 को इस तरह 52 वर्ष की अवस्था में उनका गोलोकवास हुआ।

आचार्य बल्लभ प्रणीत ग्रन्थ

अपने मत, सिद्धान्त और साधना प्रणाली का मर्म समझाने के लिए बल्लभाचार्य ने अनेक ग्रंथों की रचना की थी। विद्वानों ने उनके द्वारा प्रणीतग्रंथो को दो वर्गों में विभक्त किया है (1) प्राचीन ग्रन्थों के भाष्य और (2) स्वतंत्र प्रणीतग्रन्थ। पहले प्रकार के ग्रंथों में ब्रह्मसूत्र पर उनके द्वारा लिखा गया "अणुभाष्य" तथा भागवत की "सुबोधिनी टीका" मुख्य हैं। "अणुभाष्य" वे पूरा नहीं लिख सके थे। उनके द्वितीय पुत्र विट्ठलनाथ ने उनके अधूरे ग्रन्थ को पूरा किया। "सुबोधिनी में भी सम्पूर्ण भागवत की टीका नहीं है। केवल प्रथम, द्वितीय, तष्तीय और दशमस्कंध की पूर्ण और एकादशस्कंध के कुछ अध्यायों की टीका प्राप्त होती है। संक्षेप में भागवत का तात्पर्य समझाने के लिए महाप्रभु ने "भागवतदशमस्कंध अनुक्रमणिका" का निर्माण किया था। इसी को सुनकर सूर को लीलारहस्य का ज्ञान हुआ और उन्होंने अपने पदों में उस लीला का विस्तार किया।

बल्लभाचार्य द्वारा प्रणीत स्वतंत्र गन्थों में पत्रावलम्बन, तत्वार्थ दीपनिबंध और षोडश ग्रन्थ मुख्य हैं। परावलम्बन उनके नवीन ब्रह्मवाद का प्रतिपादन करने वाला ग्रंथ है जिसे उन्होने तत्कालीन शांकर वेदान्तियों से शास्त्रार्थ करने के लिए विश्वनाथ मंदिर के द्वार पर चिपका दिया था और जिसका चिपकाने के बाद उनके पास शास्त्रार्थ के लिए आने वालों की भीड़ कम हो गयी थी। तत्वार्थ दीप निबन्ध की रचना सूत्र और कारिका शैली में हुई है। उसकी रचना इसलिए की गयी थी कि शिष्यगण पुष्टिमार्ग के सिद्धातों को कंठाग्र कर सकें जिससे शास्त्रार्थ में सुविधा हो, उसमें कुछ कारिकाएँ बल्लभाचार्य की अपनी हैं और शेष नारद पाँचरात्र, भागवत, महाभारत, रामायण,आदि ग्रन्थों से उद्त की गयी हैं जिनमें भक्तिमार्ग की दृष्टि से बह्यवाद का निरूपण और प्रतिपादन किया गया है।

षोडश ग्रन्थ में सोलह छोटे छोटे ग्रन्थों का संग्रह है जिनके नाम इस प्रकार हैं–

(1) यमुनाष्टक, (2) बालबाध, (3) सिद्धान्त मुक्तावली, (4) पुष्टि प्रवाह मर्यादा भेद, (5) सिद्धान्त रहस्य, (6) नवरत्न, (7) अतःकरण प्रबोध, (8) विवेक धर्माश्रय, (9) पंचपद्य, (10) सन्यासनिर्णय, (11) कृष्णाश्रय, (12) चतुःश्लोकी, (13) कवितवर्धिनी भक्तिवर्धिनी, (14) जलभेद, (15) सेवाफल और (16) विरोध लक्षण।

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी ने "महाप्रभु बल्लभाचार्य और पुष्टिमार्ग" नामक ग्रंथ के अन्त में इन सभी सोलह ग्रन्थों को संकलित किया है। प्रत्येक श्लोक के नीचे सरल हिन्दी में उनका अर्थ भी दे दिया गया है।

उपर्युक्त सोलह ग्रन्थों के अतिरिक्त उनके तीन और ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। पुरूषोत्मसहस्त्रनाम, त्रिविध नामावली और मधुराष्टक। पुरूषोत्म सहस्त्रनाम, में 256 श्लोको में श्रीकृष्ण के एक हजार नाम हैं। उनके माध्यम से संक्षेप में भागवत का तात्पर्य समझाया गया है।

कुछ विद्वानो के अनुसार जिस प्रकार सूरदास ने भागवतदशम स्कन्ध अनुक्रमाणिका के आधार पर सूरसागर की रचना की थी, उसी प्रकार पुरूषोत्तम सहस्त्रनाम के आधार पर उन्होंने सारावली लिखी। त्रिविध नामावली में 108 श्लोक हैं जिनमें श्रीकृष्ण की बाल, प्रौढ, और राजलीलाओं का वर्णन है। उसका निम्नलिखित श्लोक भक्तों में बड़ा लोकप्रिय हुआ है

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपते रखिलं मधुरम्।[1]

1. *त्रिविध नामावली श्लोक–ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 39*

शुद्धाद्वैतवाद

शंकर के अद्वैतदर्शन अथवा मायावाद का खंडन करने के लिए परवर्ती वैष्णव आचार्यो द्वारा जो अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए उन्हीं में एक प्रमुख सिद्धान्त बल्लभ का शुद्धाद्वैतवाद है। शंकर के सिद्धान्त को सूत्ररूप में इस प्रकार व्यक्त किया गया है –

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो बह्यैव नापरः।[2]

वेदान्त में ब्रह्म, जीव और जगत् इन्हीं तीन तत्वों पर मुख्यरूप से विचार हुआ है। उनमें से शंकर ने जगत् को मिथ्या माना और जीव को ब्रह्म से अभिन्न कहकर उसे ब्रह्म में अन्तर्भुक्त कर दिया। बचा केवल ब्रह्म उनकी दृष्टि में केवल वही ब्रह्म सत्य और नित्य है। उसके अतिरिक्त अन्य किसी का कोई अस्तित्व नहीं है। एक मात्र एकमेव ब्रह्म की सत्ता को स्वीकारने और उसी को सत्य, नित्य तथा अद्वितीय मानने के कारण शंकर के सिद्धान्त को केवलाद्वैतवाद कहा जाता है।

ब्रह्मा के अतिरिक्त जब अन्य किसी का कोई अस्तित्व ही नहीं है, तब यह सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् कैसे दिखाई पड़ता है। और किस प्रकार जीव अपने को ब्रह्म से भिन्न मानता है। इसके विषय में शंकर का कहना है कि यह सब माया के कारण हैं। जगत् है तो मिथ्या किन्तु माया के कारण सत्य प्रतीत होता है, इसी प्रकार जीव है तो ब्रह्म से अभिन्न किन्तु माया के कारण वह अपने को उससे भिन्न मान बैठा है। जब ज्ञान के द्वारा माया दूर हो जाती है तब जगत् मिथ्या लगने लगता है। जगत् का अस्तित्व और जीव का ब्रह्म से पृथकत्व ये दोनों मायाकृत हैं। इसीलिए शंकर के सिद्धान्त को मायावाद कहा जाता है।

यहाँ यह भी ध्यान रखने योग्य है कि शंकराचार्य ने ब्रह्म को केवल निर्गुण और निर्विशेष माना है।

---

2. बल्लभ का शुद्वदैतावाद सिद्धान्त–ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 39

ब्रह्म के केवल निर्गुण और निर्विशेष रूप को स्वीकारने और जीव को उससे अभिन्न मानने के कारण शंकर के मत में भक्तिमार्ग के लिए कोई स्थान न था। इसी से वैष्णव आचार्यो को भक्ति का मार्ग प्रशस्त करने के लिए उनके सिद्धान्त का खंडन करना पड़ा।

शंकर के अनुसार जगत् का ब्रह्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। ब्रह्म न तो जगत् का निमित्त कारण है और न उपादान। बल्लभाचार्य ब्रह्म को ही जगत् का निमित्त और उपादान दोनों कारण मानना हैं। जगत् उसी प्रकार सत्य है जिस प्रकार ब्रह्म। रामानुज ने भी ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण माना था। किन्तु वे चिदचित् विशिष्ट ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण मानना थे। विशिष्ट ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण मानने से उनका सिद्धान्त विशिष्टादैतवाद कहलाया। बल्लभाचार्य ने सीधे ब्रह्म को ही जगत् का उपादान कारण मान लिया। ब्रह्म अपनी अविर्भाव और तिरोंभाव की शक्ति के द्वारा जगत् रूप में परिवर्तित होता है। सच्चिदानंद स्वरूप ब्रह्म के चितू और आनद अंश का तिरोभाव और मात्र संदेश का आविभवि होने से जगत की सृष्टि होती है। ब्रह्म संदेश से आविर्भूत यह जगत् उतना ही सत्य है जितना ब्रह्म। जिस प्रकार मिट्टी से बना घड़ा मिट्टी से अभिन्न होता है और सोने से बना आभूषण सोने से अभिन्न होता है, वैसे ही ब्रह्म का परिणाम यह जगत् ब्रह्म से अभिन्न होता है। शुद्ध ब्रह्म को ही जगत् का उपादान कारण मानने के कारण बल्ल्भाचार्य का मत शुद्धाद्वैतवाद कहा जाता है। बल्लभाचार्य के मत में जगत् सत्य है किन्तु संसार मिथ्या है। संसार का अर्थ है जगत् की नाना वस्तुओं के साथ हमारा मैं, मेरेपन का सम्बन्ध। यह सम्बन्ध मिथ्या है किन्तु जगत् की नाना वस्तुएँ मिथ्या नहीं है।

ब्रह्म

श्रुत्रियों और उपनिषदों में ब्रहम को निर्गुण, निर्विशष, और सगुण, सविशेष दोनों रूपों में चित्रित किया गया है। शंकर ने उनमें से केवल निर्गुण, निर्विशेष

प्रतिपादक अंशों को लेकर यह साबित किया कि ब्रह्म मात्र निर्गुण और निर्विशेष है। बल्लभाचार्य ने दोनों प्रकार के अंशो का समन्वय करके यह बताने का सफल प्रयत्न किया है कि ब्रह्म निर्गुण और सगुण उभयरूप है। निर्गुण और सगुण परस्पर विरोधी धर्म हैं। ब्रह्म में दोनों का समन्वय कर देने से उसे विरूद्ध धर्मो का आश्रय मानना अनिवार्य और स्वाभाविक हो गया। बल्लभदर्शन की प्रमुख विशेषताओं में ब्रह्म की विरूद्ध धर्माश्रयता एक विशेषता है। इस तरह बल्लभ के अनुसार ब्रह्म निर्गुण –सगुण उभयरूप और विरूद्धधर्माश्रय है। विरूद्ध धर्माश्रय का अभिप्राय हुआ कि ब्रह्म में परस्पर विरोधी गुण–धर्मो का समाहार है। लोक में जितने परस्पर विरोधी गुणधर्मो की कल्पना की जा सकती है वे सब ब्रह्म में अन्तर्भुक्त हैं।

पूरन ब्रहम प्रकट पुरषोत्तम सब विधि पूरन काम।
आदि सपातन एक अनुपम अविगत अल्पहार।।[3]
प्रकृति पुरूष श्रीपति नारायण सब है अंश गोपाल।[4]

बल्लभाचार्य के अनुसार ब्रह्म के दो रूप हैं– परब्रह्म और अक्षरब्रह्म। परब्रह्म में सत्, चित् और आनन्द धर्मों का योग है , इसलिए उसे सच्चिदानंद भी कहते हैं। यही सच्चिदानंद रूप परब्रह्म पुरूषोत्तम अथवा श्रीकृष्ण कहलाता है। यहाँ यह जानना बहुत आवश्यक है कि बल्लभाचार्य ने श्रीकृष्ण को ही परब्रह्म अर्थात् पूर्णब्रह्म और पुरूषोत्तम माना है। अक्षरबह्म यद्यपि परब्रह्म से अभिन्न है किन्तु उसमें आनन्द का अंश किंचित् न्यून है, इसलिए उसे पुरूषोत्तम का चरणस्थान माना गया है, आनंद की कुछ न्यूनता के कारण ही इस ब्रह्म को अपेक्षा होती है, तब यह अपने मे से जीव– जगत् आदि का निर्माण करता है। अक्षरब्रह्म के संदेश से जगत्, चिदंश से जीव और आनन्दाशं से अन्तर्यामी का आविर्भाव होता है। प्रकृति, पुरूष, नारायण और ब्रह्म, विष्णु, महेश सभी इसी अक्षरब्रह्म के अंश है।

---

3. *सूर सारावली वै0प्र0 पद 993*
4. *सूर सारावली वै0प्र0 पद 1101*

परब्रह्म अखंड, अनादि और अद्वितीय हैं। वह सजातीय, विजातीय और स्वगत भेदों से रहित है। वह अपनी अनेक शक्तियों के साथ अपनी आत्मा में नित्य रमण करता रहता है, इसी से उसे 'आत्माराम' कहते हैं। बाह्य प्रकार से रमण की इच्छा होने पर वह अपनी शक्तियों को प्रकटकर बाहर भी रमण करता है। उसका यही बाह्य रमण वाला रूप पुरूषोत्तम कहलाता है। जैसा कि पहले ही कहा गया, पुरूषोत्तम ही श्रीकृष्ण है और चन्द्रावली, राधा,यमुना आदि उनकी शक्तियाँ हैं जो उनके साथ बाह्यरमण करने के लिए प्रकट होती है। इस प्रकार परब्रह्म के अन्तःरमण और पुरूषोत्तम के बाह्यरमण में एक तादात्म्य सम्बन्ध है। कृष्ण, राधा, गोप, गोकुल आदि परब्रह्म की अन्तः शक्तियों की भाँति ही सत्य और नित्य हैं। इस तरह परब्रह्म की मूल लीला और कृष्ण की अवतार लीला में कोई तात्विक भेद नहीं है।

जीव

जैसा कि पहले ही कहा गया, अक्षरब्रह्म के चिदंश से जीव की उत्पत्ति हुई है। ब्रह्म और जीव में वही सम्बन्ध है जो अग्नि और स्फुलिंग में होता है। इसका आशय हुआ कि जीव में भी वे सभी गुण –धर्म हैं जो ब्रह्म में हैं किन्तु अपेक्षाकृत न्यून मात्रा में हैं। जीव अंश है और ब्रह्म अंशी।

अपुन पौ ही मे पायौ
शब्दहि शब्द ही भायौ उजियारों सतगुरू भेद बतायौ।।[5]

बल्लभाचार्य जीव की तीन अवस्थाएं मानते हैं– शुद्ध, संसारी और मुक्त। शुद्ध अवस्था में जीव उन सभी गुण–धर्मो से युक्त होता है जो ब्रह्म मे हैं, यद्यपि जीव में उनकी मात्रा न्यून होती है। ईश्वरेच्छा से जब जीव का माया से सम्बन्ध हो जाता है, तब उसके भगवद्धर्म तिरोहित हो जाते हैं। यह दूसरी अवस्था संसारी जीव की है। भगवद्भजन के माध्यम से अविद्या मुक्त होकर पुनः अपने

5. *सूर सागर 4/13*

मूल रूप को प्राप्त कर लेता है। यही जीव की मुक्तावस्था है। तीनों अवस्थाओ में जीव के लिए अपने अंशी परमात्मा का भजन अवश्य कर्तव्य माना गया है।

जगत्

शंकराचार्य ने जगत् को मिथ्या माना था। बल्लभ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होनें जगत् को भी उतना ही सत्य माना जितना ब्रह्म को। ब्रह्म ही जगत् का निमित्त और उपादान कारण है। जिस प्रकार मिट्टी और उससे बने वर्तन में तथा सोना और उससे बने गहने में कोई तात्विक भेद नहीं होता उसी प्रकार ब्रह्म से निर्मित यह जगत् भी ब्रह्म से अभिन्न है।

जिस प्रकार अक्षरब्रह्म के जिदंश से जीव का आविर्भाव हुआ उसी प्रकार उसके संदेश से जगत् निकला। प्रलय के समय भी जगत् का नाश नहीं होता, उसका मात्र तिरोभाव हो जाता है। घड़ा फूट जाने से उसमें बद्ध आकाश नष्ट नहीं होता बल्कि व्यापक आकाश में लय हो जाता है, उसी प्रकार प्रलयोपरान्त जगत् भी अपने मूलरूप ब्रह्म में लय हो जाता है।

रचौ सृष्टि विस्तार, मई इच्छा इक औतार।
त्रिगुन तत्व तें महतत्व में अंहकार।।[6]

बल्लभाचार्य ने संसार को जगत् से भिन्न माना है। जगत् की नाना वस्तुओं के साथ जीव का सम्बन्ध ही संसार है और वह मिथ्या है। वस्तुएं थीं, हैं और रहेंगी लेकिन उनके साथ हमारा सम्बन्ध बदलता रहेगा।

वस्तुतः बल्लभ के अनुसार मेरा–तेरा का भाव ही संसार है और जो इसमें फँसे हुए हैं वे संसारी जीव हैं। मैं, मेरे पन को भगवदप्रित करके शुद्ध मन से भगवान् का भजन करने वाला संसार से छुटकारा पाकर ब्रह्मरूप को प्राप्त कर लेता है।

---

6. सूर सागर 2/38

सूर साहित्य में शुद्धाद्वैतवाद के तत्व

सूरदास बल्लभाचार्य के शिष्य थे। आचार्य ने भागवत दशमस्कंध की अनुक्रमणिका और पुरूषोत्तम सहस्त्रनाम के द्वारा उन्हें भगवल्लीला का यथार्थ ज्ञान कराया था। शुद्धाद्वैतदर्शन के सिद्धान्त जिन प्राचीन ग्रंथों से संग्रह किए गए उनमें भागवत का स्थान मुख्य है। पुरूषोत्तम सहस्रनाम में भी भागवत का ही सिद्धान्त कथन किया गया है। उसे 'भागवतसारसमुच्चय' कहने का यही अभिप्राय है। सूरदास ने भागवत के आधार पर सूरसागर की ओर पुरूषोत्तम सहस्रनाम के आधार पर सारावली की रचना की थी। अतः उक्त दोनों रचनाओं का शुद्धादैतवाद से प्रभावित होना स्वाभाविक है। बल्लभाचार्य से भेंट के समय सूर बत्तीस वर्ष के थे। उससे पूर्व उनकी कुछ ख्याति हो गयी थी और उन्होंने कुछ पद भी गाये थे। यद्यपि उस समय तक अपनी अध्यात्मिक उपलब्धियों से वे संतुष्ट नहीं थे फिर भी यह अनुमान करना सत्य से दूर न होगा कि उन पर उन्य विचारधाराओं का भी थोड़ा बहुत प्रभाव पड़ा होगा यहाँतक कि शांकर मतानुयायियों के प्रभाव से भी उन्हें सर्वथा वंचित नहीं कहा जा सकता। इसमें संदेह नहीं कि सूरदास सर्वाधिक समय तक बल्लभ और विट्ठल के संपक्र में रहे और उनके जीवन का वहीसमय आध्यात्मिक और काव्यसाधना की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण भी है। अतः उनकी रचनाओं में शुद्धाद्वैतदर्शन के तत्व ढूढना ही अधिक समीचीन होगा। अन्य वैष्णव सिद्धान्तों के जो तत्व उनकी रचनाओं में मिलते हैं, उसका कारण यह है कि सभी वैष्णव सम्प्रदायों में सैद्धान्तिक स्तर पर कुछ न कुछ समानता है। शास्त्र चिन्तन करने वालों ने उनमें सूक्ष्म भेद दिखाए हैं

लेकिन काव्यरचना मात्र जिनका लक्ष्य था उन्होंने अधिकतर सामान्य तत्वों को ग्रहण किया है। सूर और तुलसी दोनो के बारे में यह सच है। सूर भी मुख्यतः बल्लभ मतानुयायी होते हुए गौण रूप से अन्य वैष्णव सम्प्रदायों से

प्रभावित रहे है और इसी प्रकार तुलसी भी मुख्यतः विशिष्टाद्वैतवादी होते हुए अन्य सिद्धान्तों को भी कहीं–कहीं लेकर चले हैं।

ब्रह्म बल्लभाचार्य ने ब्रह्म को निर्गुण–सगुण उभय रूप बताया था। सूरदास उसका समर्थन करते हुए लिखते हैं–

वेद उपनिषद जस कहैं निर्गुनहिं बतावै।
सोई सगुण होय नंद के दामरी बँधावै।।[7]

इसी प्रकार उन्होंने कहा है–

आदि सनातन हरि अविनासी।
निर्गुण–सगुण धरै तन दोई।[8]

पुरूषोत्तम सहस्रनाम के आधाार पर रचित सरावली के आरंभ में आया है,

अविगत आदि अनत अनूपम अलख पुरूष अविनाशी।
पूरन ब्रहम प्रकट पुरूषोत्तम नित निज लोक विलासी।[9]

जो अलक्ष्य है, वही प्रकट, साकार भी।

ब्रह्म में परस्पर विरोधी गण धर्मों की स्थिति का वर्णन सूर ने अनेक स्थलों पर किया है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

बलि–बलि चरित गोकुल राय।
कीर–पिजंरा देत अँगुरी लेत श्याम भजाय।
बकासुर की चोंच फारी दष्टि अचरज लाय।।
बिना दीपक सदन में हरि नैकु धरत न पाय।।
अघासुर मुख पैठि निकले, बाल बच्छ जिवाय।।
लिख्यो द्वारे नाग कारौ दखि स्याम डराय।
नृत्य काली फनगि ऊपर सप्तताल बजाय।। आदि।[10]

---

7. *ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 43*
8. *ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 43*
9. *ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 43*
10. *ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 43*

आनंद अंश की किंचित् न्यूनता होने से ब्रह्म ही अक्षर पर ब्रह्म हो जाता है और उसी अक्षरब्रह्म से प्रकति, पुरूष, नारायण तथा ब्रह्म, विष्णु, महेश उत्पन्न होते हैं। सूरदास ने इसका भी स्थान– स्थान पर उल्लेख किया गया है। यथा,

माया कियो क्षोभ बहुविधि करि पुरूष के संग।
राजस तामस सात्विक बहुकरि प्रकृति पुरूष के संग।। तथा
हरिपद प्रीति करे सुख पावै।
उत्पत्ति, पालन, प्रलय हेतु हरि तीन रूप धरि आवै।
विष्णु रूद्र ब्रह्म हरि सब प्रेरक अन्तरजामी सोई।।[11]

शुद्धाद्वैतवाद के अनुसार जीव की तीन अवस्थायें होती हैं– शुद्ध, संसारी और मुक्त। सुर ने उन तीनों प्रकार के जीवों का वर्णन किया है।

शुद्ध अवस्था वाले जीवों का वर्णन

जहाँ वृन्दावन आदि अजर जहँ कुंज लता बिस्तार।
सारस हंस चकोर मोर खग कूजत कोकिल कीर।।
गोपिन मंडल मध्य विराजत निसि दिन करत बिहार।
सहस रूप बहु रूप पुनि एक रूप पुनि दोय।[12]

संसारी जीवों का वर्णन

जौ लौं सत्स्वरूप नहिं सूझत।
तौ लौं मषामद नाभि बिसारे फिरत सकल बन बूझत।
अपनौ मुख मसि मलिन मंद मति देखत दप्रन माहीं।
चा कालिमा मेटिवे कारन पचत पखारत छाहीं।।[13]

मुक्त अवस्था वाले जीवों का वर्णन

अपुन पौ आपुन ही मै पायौ।
शब्दहि शब्द भयौ उजियारौ सत गुरू भेद बतायौ।
जगि लख्यौ ज्यौं कौ त्यौं ही है ना कहूँ गयौ न आयौ।
सूरदास समुझे की यह गति मनहीं मन मुसकायो।
कहि न जाइ या सुख की महिमा, ज्यौ गूंगै गुड़ खायौ।[14]

---

11. ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 43
12. ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 43
13. ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 43
14. ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 43

जगत्

शुद्धाद्वैतसिद्धान्त में जगत् को ब्रह्म के संदेश से उत्पन्न बताया गया है और कहा गया है कि प्रलयोपरान्त वह उसी में लय हो जाता हैं। सूरदास ने इसी सिद्धान्त को स्वीकार किया है–

कृष्ण ते यह जगत् प्रकट है हरि में लय ह्वै जावै।[15]

बल्लभ के मतानुसार जगत्सत्य और नित्य है। जो मिथ्या है, वह संसार है। सूरदास ने जगत् और संसार दोनों पदों का व्यवहार किया है और सर्वत्र जगत् को सत्य और संसार को मिथ्या माना है जो शुद्धाद्वैतवाद के सर्वथा अनुकूल है।

जगत् की सत्यता

जग प्रपंच हरि रूप लहै जब दोष भाव मिटि जाहीं।
सूरदास तब कृष्ण रूप ह्वै, हरि हिय में रहे आहीं।[16]

संसार की निःसारता

अरे मन मूरख जनम गँवायौ।
यह संसार सुहा सेमर ज्यौं सुन्दर देखि लुभायौ।
चाखन लग्यौ रूई उड़ि गई हाथ कछू नहिं आयौ।।[17]

सूरदास की भक्तिभावना का सामान्य रूप

सूरदास नेत्र विहीन थे। वे कब अंधे हुए, इसके विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इतना निर्विवाद है कि बल्लभाचार्य से भेंट के पहले वे अंधे हो चुके थे। सम्भवतः बाल्यकाल में ही किसी समय वे अन्धे हो गये रहे

---

15. ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 43
16. ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 44
17. ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 45

और न उन्हें समाज में सम्मानपूर्वक जीने का अधिकार ही था। इसलिए यह अनुमान किया जा सकता है कि सूरदास को परिवार और समाज की ओर से उपेक्षा मिली होगी। उस स्थिति में अत्यन्त स्वाभाविक रूप से उनका ध्यान ईश्वर की ओर गया। सत्य की खोज में वे इधर–उधर खूब भटके। सारावली की कतिपय पंक्तियों के आधार पर कहा जा सकता है कि उन्होंने विभिन्न साधना पद्धतियों को आजमाया किन्तु किसी से उन्हें संतोष न हुआ। संयोग से उनकी भेंट बल्लभाचार्य से हो गयी और उनकी प्रेरणा से वे पुष्टिमार्ग में दीक्षित हो गये, तबसे जीवन पर्यन्त श्रीनाथ जी के मंदिर में रहकर कीर्तन सेवा करते रहे।

बल्लभाचार्य से भेंट के पूर्व सूरदास ने कर्म, योग, ज्ञान और उपासना सभी पद्धतियों को अपनाया था। कर्म योग, आदि का जितना वर्णन उनकी रचनाओं में मिलता है, उससे यह सिद्ध नही किया जा सकता कि कुछ काल तक वे उन पद्धतियों पर चले थे। उपासना अवश्य भक्ति का ही समानार्थक शब्द है और उन्होंने कर्म, ज्ञान आदि के साथ उसका भी उल्लेख किया है। इससे यह अनुमान करना उचित होगा कि उन्होंने पुष्टिमार्ग से भिन्न अन्य किसी भक्तिमार्ग का अवलम्बन किया होगा। कुछ लोगों का अनुमान है कि वे निर्गुणोपासना की ओर झुके थे। निर्गुणोपासना से आशय उस मार्ग से है जो कबीर द्वारा प्रवर्तित होकर विकसित हुआ और जिसमें ईश्वरोपासना के बाह्य विधानों की तीव्र भर्त्सना की गयी। सूरदास का स्वर कभी उतना तीव्र और कर्कश रहा होगा, इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। उनकी शारीरिक अक्षमता के कारण उनमें जो हीन भावना थी उसने भी उन्हें विद्रोह करने से रोका होगा। फिर भी एक लक्षण के आधार पर उस समय की उनकी भक्ति भावना के स्वरूप का सरलता से अनुमान लगाया जा सकता है। विनय के पदों में उन्होंने अनेक स्थलों पर अपने को पापी, अधम, अपराधी आदि कहकर भगवान् से उद्धार की याचना की है। अतः उनकी तत्कालीन भक्तिभावना में दैन्य की प्रधानता स्पष्ट है। संसार सत्य है अथवा असत्य यह दार्शनिक विवाद का

विषय हो सकता है किन्तु दीन– हीन के लिए संसार में अपेक्षाकृत कम आकर्षण रहता है, इसमें सन्देह नहीं। दीनता और वैराग्य का कुछ सहज सम्बन्ध है। पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने से पूर्व सूर की भक्ति वैराग्यमूलक थी जिसमें संसार की असारता का बोध मिश्रित है। दार्शनिक दृष्टि से यह विचारधारा शंकर वेदान्त के समीप है जिसे ज्ञानमार्ग कहा जाता है। निर्णुणोपासक यद्यपि भक्त ही थे किन्तु उनकी विचारधारा में शंकर मत का अधिक मेल था। कबीर आदि सन्तों की शाखा को ज्ञानमार्गी शाखा कहने से भी उनके पंथ में ज्ञान की प्रधानता ही सूचित होती है। सूरसारावली के कथन में सम्भवतः 'ज्ञान' का प्रयोग निर्गुणभक्ति के लिए हुआ है। अतः कहा जा सकता है कि बल्लभचार्य से भेंट के पूर्व सूर की भक्ति में दैन्य और वैराग्य की प्रधानता के साथ निर्गुणियों के ज्ञानमार्ग का प्रचुर मिश्रण था। 'अबिगत गति कछु कहत न आवै' आदि उक्तियों से इसकी पुष्टि होती है।

पुष्टिमार्ग मे दीक्षित होने के बाद सूर की भक्तिभावना में अभूतपूर्व परिवर्तन हो गया। उन्होंने पुरूषोत्तम श्रीकृष्ण को अपना सब कुछ समझ लिया। वार्ता साहित्य में उनकी भक्तिभावना को सख्य भाव की बताया गया है किन्तु सूरसागर में शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य सभी पंच महाभावों के पद प्रचुर परिमाण में मिलते हैं। बल्लभाचार्य के समय सम्प्रदाय में वात्सल्य भाव की उपासना का प्राध्यान्य था, यद्यपि माधुर्य भाव का सर्वथा निषेध नही किया गया था। ब्रज के अन्य धर्म सम्प्रदायों में माधुर्यभाव अपेक्षाकष्त अधिक था। उसके प्रभाव से विट्ठलनाथ के समय बल्लभ सम्प्रदाय में भी माधुर्यभाव का विस्तार हुआ। कथाक्रम में भी किशोरीलीला का स्थान बाललीला के पश्चात् आता है, इसलिए सूरसागर में पहले बाललीला के पदों को और बाद में किशोरीलीला के पदों को देखकर यह तो नहीं कहा जा सकता कि सूर ने माधुर्य भाव को अपेक्षाकष्त बाद में ग्रहण किया, फिर भी ऐतिहासिक परिस्थितियों को ध्यान में

रखकर विचार करने से यही भाव दृढ होता है कि माधुर्य भाव का ग्रहण सूर ने अपेक्षाकृत बाद में किया होगा।

सूरदास अत्यन्त बष्द्ध होकर गोलोकवासी हुए थे। सूरसागर के अनेक पदों में वृद्धावस्था का सजीव वर्णन देखकर इस बात में सन्देह नही रह जाता। वार्धक्य में इन्द्रियों के शिथिल होने पर पुनः वैराग्य की भावना दृढ हो जाती है। अतः यह अनुमान करना गलत न होगा कि विनय के अनेक पदों में वैराग्यमूलक भक्ति के जो उद्‌गार देखने को मिलते हैं वे सब सूर की युवावस्था से संबन्धित नहीं है। उनमें से कुछ उस समय के भी अवश्य होंगे जब वे अत्यन्त वृद्ध हो गये थे। आशय यह कि सूर भक्ति मे वैराग्यमूलक अंश का समावेश एक बार पुनः उस समय हुआ जब वे अत्यन्त वृद्ध हो गये। संक्षेप में यही उनकी भक्ति भावना का सामान्य रूप कहा जा सकता है।

पुष्टिमार्ग और सूरदास

जिस प्रकार बल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित दर्शन को शुद्धाद्वैवाद कहा गया उसी प्रकार उनके द्वारा प्रवर्तित साधना प्रणाली पुष्टिमार्ग नाम से विख्यात हुई। पुष्टि शब्द पोषण का समानार्थी है। भागवत में भगवदनुग्रह को पोषण कहा गया है। इस आधार पर पुष्टिमार्ग का आशय वह साधना प्रणाली हुआ जिसके द्वारा भगवान् का अनुग्रह प्राप्त किया जा सके। पुष्टिमार्ग मे भगवत्कृपा को विशेष महत्व दिया गया है। साधक अपना सब कुछ भगवतदर्पण करके उस पर निर्भर हो जाता है और भगवान् उसे जिस प्रकार रखें वह उसी प्रकार जीवनयापन करता है। तन, मन, धन, से भगवान् की सेवा करके हमें उसकी कृपा प्राप्त हो जाती है इस लिए पुष्टिमार्ग में भगवत्सेवा का व्यवस्थित और विस्तृत विधान किया गया है, पुष्टिमार्गीय साधना का नाम ही सेवा प्रणाली है। जिस भज् धातु में क्तिन प्रत्यय लगाकर भक्ति शब्द बनता है उसका अर्थ सेवा करना है। इस दृष्टि से विचार तो पुष्टिमार्गीय साधना ही सच्चे अर्थों में भक्ति है। इसी लिए

सूरदास ने उससे भिन्न अन्य साधना प्रणालियों को यहाँ तक कि उपासना अथवा भक्ति को भी भ्रम कहा था। सामान्य लोक जीवन में किसी की सब प्रकार से सेवा करने को तन, मन, धन से सेवा करना कहते हैं। इसी को पुष्टिमार्ग में थोड़ा सा शास्त्रीय रूप देकर तनुजा, वित्तजा, और मानसी सेवा कहा गया है। अपनी शक्ति के अनुसार भगवान की सेवा मे द्रव्य लगाना वित्तजा सेवा कहलाती है और प्रातः काल भगवान् के मन्दिर में झाड़ू देने से लेकर रात को सोने तक भगवान् की सेवा करना तनुजा सेवा है। नित्य नियमपूर्वक तनुजा और वित्तजा सेवा करने से भक्त का हृदय भगवान के साथ तन्मय हो जाता है, यही मानसी सेवा कहलाती है जो सेवा भावना ही पराकाष्ठा है।

पुष्टिमार्ग में सेवा प्रणाली का जो व्यवस्थित और विस्तृत विधान है उसके भीतर दो प्रकार की सेवायें आती हैं। एक को नित्यसेवा कहते हैं और दूसरी वर्षोत्सव सेवा कही जाती है। प्रातः काल सोकर उठने के समय से लेकर रात को पुनः शयन के लिए जाने के समय तक की अवधि को आठ भागों में बाँटकर प्रत्येक अवसर के लिए पूजा अथवा सेवा की एक निश्चित विधि बना दी गई है। उसको अष्टयाम सेवा कहते हैं। अष्टयाम सेवा का क्रम इस प्रकार है।

मंगला :–

भगवान् को प्रातः काल जगाकर कलेऊ कराना तत्पश्चात आरती करना इसी से इसको मंगल भोग और मंगला आरती भी कहते है।

श्रृँगार :–

भगवान् को ऋतु के अनुसार उष्ण अथवा शीतल जल से स्नान कराकर सुगंधित द्रव्य, वस्त्राभूषणों से सुसज्जित करना।

ग्वाल :–

दुग्ध फेन से युक्त भोजन कराना तदनन्तर भगवान को गाय चराने के लिए भेजना। भगवान् के विग्रह को ग्वालवेष में सजाकर भावना की जाती है कि वे गोचारण के लिए रहे हैं।

राज भोग :–

मध्याह्न के भोग को राजभोग कहते हैं। मध्याह्न के समय तरह–तरह के पकवान और सुस्वादु भोज्य पदार्थ भगवान् को अप्रित किए जाते हैं, उसके बाद उसे सेवकों में प्रसाद स्वरूप वितरित कर दिया जाता है। गृहस्थ लोग दोपहर में भगवान् को भोग लगाने के बाद ही स्वयं भोजन करते हैं। राजभोग के पश्चात् भगवान् को विश्राम कराया जाता है।

उत्थापन :–

दोपहर के पश्चात् और सायं काल से कुछ पूर्व भगवान् को फिर जगाया जाता है।

भोग :–

भगवान् को जगाने के आधा घटे बाद पुनः भोग लगाया जाता है। इसे व्यालू कहते हैं।

सन्ध्याआरती :–

इस समय पुनः भगवान् को स्वच्छ वस्त्र धारण कराए जाते हैं और आरती होती है।

शयन :–

रात्रि में भगवान् को शैया पर शयन के लिए लेटाया जाता है। शैया के समीप जल, ताम्बूल आदि रख दिया जाता है।

पुष्टिमार्गीय मंदिरों में नित्य सेवा के अतिरिक्त समय–समय पर अनेक पर्व और उत्सव मनाए जाते हैं जिन्हें वर्षोत्सव सेवा कहा जाता है। वर्षोत्सव पाँच प्रकार के होते हैं– नित्य एंव अवतार लीलाओं के उत्सव, लोक त्यौहार, वैदिक पर्व और अन्य अवतारों की जयन्तियाँ।

नित्य एवं अवतार लीलाओं में चैत्रशुक्ल प्रतिपदा को संवत्सर लीला, चैत्रशुक्ल तृतीया को गनगौर, वैसाख शुक्ल तृतीया को अक्षय तष्तीया, अषाढ शुक्ल द्वितीया को रथयात्रा, श्रावणशुक्ल एकादशी को पवित्रा, भादौं शुक्ल अष्टमी को राधाष्टमी, भादौं शुक्ल एकादशी को दानलीला, भादौं की पूर्णिमा को साँझी, आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से नौमी तक नवरात्र, आश्विन की पूर्णिमा को रासलीला, कार्तिक शुक्ल एकादशी को व्रतचर्या के उत्सव होते हैं।

छः ऋतुओं के छः अलग–अलग उत्सव हैं जिन्हें षड्ऋतुओं के उत्सव कहते हैं। बसन्त का उत्सव डोल, ग्रीष्म का उत्सव फूलमंडली, पावस का उत्सव हिंडोला (भा0 कृ1) शरत् का उत्सव रास (आ0 शु0 15) हेमन्त का उत्सव जागरण व्याह (का0 शु0 11) और शिशिर का उत्सव होली (फा0 शु0 15) है। लोक त्योहारों में श्रावण्ज्ञ शुक्ल पूर्णिमा को रक्षाबंधन, अश्विन शुक्ल दशमी को दशहरा, का0 कृ0 15 को दीपावली और फा0 शु0 15 को होली होती हैं।

मकरसंक्रान्ति माघ में और ज्येष्ठाभिषेक जेठ में वैदिक पर्व है। इसके अलावा राम, नृसिंह, वामन और कृष्ण की जयन्तियाँ भी मनाई जाती हैं।

गोवर्धन पर स्थित श्रीनाथ जी का मंदिर पुष्टिमार्गीय साधना का प्रधान केन्द्र है। स्वयं महाप्रभु बल्लभाचार्य के आदेश पर अम्बाले के प्रसिद्ध सेठ पूरनमल खत्री ने उसका निर्माण कराया था। उपर्युक्त सेवा प्रणाली का विधान उसी मंदिर में भगवान् की सेवा के लिए किया गया था। अष्टयाम सेवा का विधान स्वयं बल्लभाचार्य ने किया था। पर्व और उत्सव भी उन्हीं के समय से प्रचलित हो गये थे किन्तु उनके द्वितीय पुत्र विट्ठलनाथ ने उत्सवों का विशेष विस्तार किया। उनके समय में ऐसे अनेक नवीन उत्सव प्रचलित हुए जो उनके पिताजी के समय में नहीं होते थे। उन्हीं उत्सवों को देखकर सूर ने कहा था – **"गुरू परसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रबीन"।** नित्यसेवा और वर्षोत्सव

सेवा के अवसर पर अष्टछाप के कवियों द्वारा उस भाव के पद गाकर सुनाए जाते थे। सूरदास उन कवियों में प्रधान थे। उनके सभी पद नित्यसेवा और वर्षोत्सव सेवा के अवसर पर गाए जाने के लिए रचे गए। इसी से सूरसागर को कीर्तन काव्य कहा गया है और उसमें पदों का जो पुराना क्रम है उसे उत्सव क्रम कहते हैं। इससे स्वतः स्पष्ट है कि सूर के पदों में नित्य सेवा और वर्षोत्सव सेवा का वर्णन है। अतः उन्हें पुष्टिमार्गिय सेवा प्रणाली के सर्वथा अनुरूप कहा जाना चाहिए। सभी सेवाओ के अवसर पर गाए गए पद सूरसागर में मिलते हैं। यह कहना चाहिए कि सूरसागर का प्रत्येक पद किसी न किसी सेवा भाव से सम्पृक्त है। वस्तुतः सूरसागर पुष्टिमार्गीय सेवा प्रणाली का शब्दरूप है। कहीं से कोई पद उठा लें, वह किसी न किसी सेवाप्रणाली से सम्बद्ध मिलेगा। नमूने के लिए कुछ पद यहाँ उदष्त किए जा रहे है।

नित्य सेवा के पद

(1) ब्रज मंगल की मंगल आरती।
रतन जटित कनक थार लै ता मधि चित्र कपूर लै बारती।।
लेति बलाइ करति न्यौछावरि, तन–मन–प्रान वारनै बारती।[18] –मंगला

(2) करति श्रृंगार मैया मन भावत।
शीतल जलहिं उष्ण करि राख्यौ लै लालन कों बैठि।[19] – न्हवावत

(3) दै री मैया! दोहिनी दुहिहौं मै गैया।
माखन खाए बल भयो, करौं नंद दुहैया।।[20]
कजरी धौरी सेंहुरी, धूमरि मेरी गैया।
दुहि लाऊँ मै तुरत ही, तू करि दै घैया।[21] –ग्वाल

(4) जेंवत श्याम नंद जू की कनियाँ।
बरी बरा बेसन बहु भाँतिन, व्यंजन विविध अनगनियाँ।
भोजन करि अचवन जब कीनों, माँगत सूर जुठनियाँ।[22]–राजभोग

---

18. ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 49
19. ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 49
20. ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 49
21. ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 49
22. ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 49

(5) गिरिधरन सैन कीजै आय।
स्वच्छ सेज सुगंध बहु विध, लाल पौढे आय।
मदन मोहन लाल के सूर चरन चाँपत माय।।[23] –शयन

वर्षोत्सव के पद

(1) सिव सों बिनय करति कुमारि।
हमहिं होउ कृपाल दिन मनि, तुम विदित सेसार।
काम अति तनु दहत दीजै सूर स्याम भरतार।।[24] –गनगौर

(2) देखो माई रथ बैठे गिरधारी।
देखि देखि फूले ब्रजवासी, सुख की रासि अपारी।
कुसुमावलि बरसत इंद्रादिक, सूरदास बलिहारी।।[25] –रथ यात्रा

(3) गोकुल नाथ बिराजत डोल।
संग लिए बृष भानु नंदिनी पहिरे नील निचोल।
खेलत हँसत परस्पर गावत, बोलत मीठे बोल।
सूरदास स्वामी पिय प्यारी, झूलत हैं झकझोल।।[26] –डोल

(4) झूलै माई गिरधर सुरंग हिडोरें।
रतन जटित पटुली पर बैठे, नागर नंद किसोरें।[27] –हिंडोरा

(5) राखी बँधावत मगन भए।
दच्छिना बहुत द्विजन को दीनी, गोप हँकार लए।
यह कौतुक देखत सुर नर मुनि, बरषत कुसम छए।।
सूरदास राधा ललितादिक देखत ओट दए।।[28] –रक्षाबन्धन

(6) जमुना जल गिरिधर करत बिहार।
आस पास जुबती मिलि छिरकति, हँसति कमल मुख चारू।[29]
–जेष्ठाभिषेक

---

23. *ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 49*
24. *ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 49*
25. *ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 49*
26. *ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 50*
27. *ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 50*
28. *ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 50*
29. *ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 50*

सूरदास पर अन्य साधनाओं का प्रभाव

सारावली की कतिपय पंक्तियों से संकेत मिलता है कि सूरदास ने पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने से पहले अनेक साधना पद्धतियों को आजमाया था।

करम जोग पुनि ज्ञान उपासन, सबही भ्रम भरमायौ।
श्री बल्लभ गुरू तत्व सुनायौ, लीला भेद बतायौ।[30]

कर्म, जोग आदि का उन पर कितना प्रभाव पड़ा था और वे उन साधनाओं मे कितने दिन टिके थे इसके विषय में अधिक कुछ बता पाना सम्भव नहीं। विद्वानों का अनुमान है कि वे कुछ समय तक शिवोपासक थे और निर्गुणोपासना का भी उन पर प्रभाव पड़ा था। अतः हम यहाँ केवल, शैव साधना और निर्गुणोपासना का उन पर कितना प्रभाव पड़ा, इसी का विचार करेगें।

शैवसाधना का प्रभाव

सूरसागर में इस बात का संकेत मिलता है कि बल्लभाचार्य के संपर्क में आने से पहले सूरदास शिव के उपासक थे और कदाचित् पशुबलि में भी विश्वास करते थे।

सूरदार के हृदय बसि रहयौ स्याम शिव कौ ध्यान।
हरि–हरि शंकर नमो नमो।
कामना करि कोप कबहूँ करत कर पशु घात।[31]

सारावली में भी कहा गया है –

शिव विधान तप करेउ बहुत दिन तऊ पार नहिं लीन।[32]

उपर्युक्त कथनों के आधार पर डा0 मुंशीराम शर्मा ने अनुमान किया है कि सूरदास पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने से पहले शैवमतानुयी थे। उनका कहना है कि न केवल सूर बल्कि उत्तराखण्ड के अन्य ब्राह्मणवंशी भी उस समय

30. *ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 50*
31. *ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 50*
32. *ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 51*

शैवमतानुयायी हुआ करते थे। पुष्टिमार्ग का व्यापक प्रचार–प्रसार हो जाने के बाद ऐसे बहुत से लोग शैव मत छोड़कर, बल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित हुए। सूर भी उन्हीं में एक थे। डा0 शर्मा ने सूरसागर से उन पदों को उद्धृत किया है जिनकी सम्बन्धित पंक्तियाँ पहले ऊपर उद्धृत की जा चुकी हैं। क्या उन साक्ष्यों के आधार पर माना जा सकता है कि सूर कभी शैव मतानुयायी थे?

श्री प्रभुदयाल मीतल के अनुसार सारावली की उपर्युक्त पंक्ति का अर्थ यह नहीं है कि सूर ने शैव विधि से अधिक समय तक तपस्या की थी। वे उसका अर्थ यह मानते हैं कि "सारावली में कही हुई लीला का अनुभव शिवजी को भी अनेक विधिपूर्वक बहुत दिन तक तप करने से भी नहीं हुआ था।" अपने कथन की पुष्टि के लिए सारावली से ही उन्होंने कुछ और पंक्तियाँ उद्धृत की हैं जिनमें यह अर्थ अधिक स्पष्ट है।

सहस वर्ष लौं ध्यान कियौ शिव, राम चरित सुखसार।
टवगाहन करिकै सब देख्यौ, तऊ न पायौ पार।
नहिं प्रवेस अज शिव गनेस, पुनि कितक बात संसार।[33]

यदि मीतल जी के अर्थ को प्रामाणिक माना जाय तो सारावली की उपर्युक्त पंक्तियों के आधार पर सूर का शैवसाधक होना सिद्ध नहीं होता। सूरसागर के जिस पद के आधार पर डा0 शर्मा ने सूर को शैव साधक प्रमाणित किया है, उसके विषय में डा0 ब्रजेश्वर वर्मा का मत है कि "उस पद से यह निष्कर्ष निकालना कि किसी समय सूरदास या उनका परिवार घोर शैव हठयोगी और हिंसक था भारी भूल होगी। उक्त पद मे वर्तमान काल का प्रयोग तथा यमपुर में अनेक बार जाने की बात विशेष रूप से सूचित करती है कि वे अपने ऊपर अन्योक्ति द्वारा शैवोपासना की आलोचना करके उसे हीन प्रमाणित करते हैं।"

---

33. ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 51

अपनी भक्ति देउ भगवान्।
कोटि लालच जो देखावहु नाहिं नै रूचि आन।
जरत ज्वाला, गिरत गिरितें, सुकर काटत सीस।
देखि साहस संकुच मानत राखि सकत न ईस।
कामना करि कोप कबहूँ करत कर पशु घात।
सिंह शावक जात गृह तजि इन्द्र अधिक डरात।
जा दिनतें जन्म पायौं यहै मेरी रीति।[34]

इसी प्रकार जिस पद में सूरदास ने कृष्ण को "हरवेश" में दिखाकर उनका ध्यान करने का उल्लेख किया है उसे भी डा0 वर्मा उनके समन्वयवादी वैष्णव दृष्टिकोण की उपज मानते हैं। यह तो सच ही है कि उस समय वैष्णव–शैव में जो कटुता थी, उसे दूर करने के प्रयत्न हो रहे थे। तुलसीदास ने भी अपने ढंग से समन्वय करने का प्रयत्न किया था।

शिव द्रोही मम दास कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहिं न पावा।।[35]

यदि सूर ने भी वैसा किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। सूर शैवसाधना की विकृतियों से परिचित थे और उसीआधार पर उन्होंने उसका वर्णन किया। जितने प्रमाण उनकी रचनाओं में हैं उनके आधार पर विश्वास के साथ नहीं कहा जा सकता कि वे स्वयं शैवसाधक थे।

निर्गुणोपासना का प्रभाव

भ्रमरगीत में सूरदास ने नाथपंथियों की योगसाधना और संतो की निर्गुणोपासना दोनों का जमकर मजाक उड़ाया है। उससे यह निश्चित हो जाता है कि उस समय पुष्टिमार्ग को अपनी जड़ें मजबूत करने के लिए योगियों और सन्तों से संघर्ष करना पड़ा था। सूरदास सदृश मृदुभाषी और विनम्र साधक ने अपने ढंग से उनके विषय में जितना कुछ कह दिया, वह बहुत है। पुष्टिमार्ग में

34. ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 51
35. ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 52

दीक्षित होने से पहले वे स्वयं निर्गुणोपासक थे, अथवा नहीं, इसका निर्णय करना सरल नहीं है। "अबिगत गति कछु कहत न आवै" आदि पदों से यह अनुमान होता है कि उन्होंने निर्गुणोपासना के मार्ग से भी भगवत् साक्षात्कार करने का प्रयास किया था किन्तु उसमें अनेक कठिनाइयाँ देखकर वे सगुणोपासना में आ गये। उनके अनुसार वे कठिनाइयाँ इस प्रकार हैं–

अबिगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यौं गूंगे मीठे फल कौ रस, अन्तयगत ही भावै।।
परम स्वाद सबही सु निरन्तर अमित तोष उपजावै।
मन बानी को अगम अगोचर सो जानै जो पावै।[36]

निर्गुण ब्रह्म के लिए अबिगत, अगम, अगोचर आदि जिस तरह के शब्दों का प्रयोग सूर ने किया है लगभग वैसे ही शब्दों का प्रयोग कबीर की रचनाओं में भी मिलता है, यहाँ तक कि "ज्यौं गूँगे मीठ फल को रस" तथा "कछु कहत न आवै" आदि वाक्यांश के भाव भी कबीर की रचनाओं में मिल जाते हैं। एक स्थान पर अपनी अनुभूतियों का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है–

अविगत अकथ अनूपम देख्या कहता कह्या न जाई
सैन करै मन ही मन रहसै गूँगै जान मिठाई।।[37]

सूर और कबीर में न केवल इतना घनिष्ठ भावसाम्य बल्कि शब्द साम्य तक देखकर यह अनुमान होता है कि सूर का निर्गुणोपासना से घनिष्ठ परिचय अवश्य था।

सूरसागर में दो पद ऐसे हैं जो किंचित् हेर– फेर के साथ कबीरग्रंथावली में भी पाए जाते हैं। वे पद इस प्रकार है–

36. ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 52
37. ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 52

अपुनपौ आपुन ही मैं दिसयौं।
जैसे स्थान काच मंदिर में भ्रमि भ्रमि भूकि मयौं। आदि
अपुनपौ आपुन ही मैं पायौ।
शब्दहि शब्द भयौ उजियारौ, सतगुरू भेद बतायौ।।
जागि लख्यौ, ज्यौ कौ तयौं ही है म नही मन मुसकायो।।
कहि न जाइ या सुख की महिमा, ज्यौ गूँगे गुड़ खायौ।[38]

श्री प्रभुदयाल मित्तल ने उपर्युक्त पदो।के शुद्धाद्वैतवाद के अनुरूप सिद्ध करने का प्रयास किया है जबकि कुछ अन्य विद्वान उनके आधार पर सूर को प्रतिबिम्बवादी बताते हैं। जो भी हो, इन पदों का कबीर की रचनाओं में भी प्राप्त होना यह सूचित करता है कि सूर और कबीर में कुछ बातें समान रूप से मिलती हैं। कबीर निश्चित रूप से सूर के पूर्ववर्ती थे। इसलिए कबीर ने उन बातों को सूर से न ग्रहण किया होगा बल्कि संभावना इसी बात की अधिक है कि सूर ने उन्हें कबीर से लिया। सूर के एक अन्य पद में ये पक्तियाँ आई हैं –

जौ लौं सत् सरूप नहिं सूझत।
तौ लौं मृगमद नाभि विसारे फिरत सकल बन बूझत।।[39]

कबीर ने भी लिखा है–

कस्तूरी कुंडल बसै मृग ढूढै बन माहिं।
ऐसे घट घट राम हैं दुनिया देखत नाहिं।[40]

ऐसी ही और बहुत सी उक्तियाँ ढूंढी जा सकती हैं जो सूर और कबीर में समानरूप से मिलती है। संभव है पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने से पहले सूर ने इस प्रकार के पद गाए हैं। तब इस बात की संभावना अधिक कही जाएगी कि वे बाकायदे निर्गुणमार्गी थे और यह भी हो सकता है कि पुष्टिमार्ग मे रहते हुए उन्होंने अन्य सम्प्रदायों से प्रभाव ग्रहण किया हों।

---

38. ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 53
39. ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 53
40. ओंकारनाथ त्रिपाठी, सूरकाव्य की समीक्षा, पृ0 53

एक महान् कवि और जागरूक साहित्यकार के लिए यह भी कोई असंभव बात नहीं है। दानों स्थितियों में यह कहा जा सकता है कि सूर पर निर्गुणोपासना का प्रभाव पड़ा था।

सूरदास की उपासना एवं भक्ति पद्धति

सम्प्रदायिक अनुश्रुतियों के अनुसार महाकवि सूरदास का जन्म वैशाख शुक्ला 5 संवत् 1535 को वर्तमान हरियाणा के सीही गांव में एक अत्यन्त निर्धन सारस्वत ब्राहमण परिवार मे हुआ था। वे बल्लभाचार्य से दस दिन छोटे थे। गोसांई विट्ठल नाथ जी ने सेवक श्रीनाथ भट्ट के कथन से यह प्रमाणित होता है कि वे जन्मान्ध थे। मिश्रबन्धु, डा0 श्यामसुन्दरदास, डॉ0 बेनी प्रसाद, नलिनी मोहन सान्याल, नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ0 ब्रजेश्वर वर्मा, प्रमृति विद्वानों का अनुमान है कि सूरदास जन्मान्ध नहीं थे।

प्रत्युत अपनी वृद्धवस्था में नेत्र विहीन हो गये थे। डॉ0 दीनदयाल गुप्त भी सूरदास को जन्मान्ध नहीं मानते, किन्तु वे उनकी वृद्धावस्था में नहीं, अपितु बाल्यावस्था में अन्धे होने का अनुमान करते हैं। किन्तु विद्वानों का एक तीसरा वर्ग ऐसा है जो सूर को जन्मान्ध मानने के पक्ष में है। इनमें गोस्वामी हरिराय, डॉ0 मुंशीराग शर्मा, प्रभुदयाल मीतल, अष्टसखान की वार्ता, दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता, चौरासी वैष्णवों की वार्ता सीताराम चतुर्वेदी एवं गोवर्धन नाथ शुक्ल महाराज रघुराजसिंह के अनुसार सूरदास जी जन्मान्ध थे। आधुनिक काल के अधिकांश विद्वान उन्हें जन्मान्ध ही मानते है।

कहा जाता है कि सूरदास के जन्मान्ध होने से मां–बाप बहुत खिन्न हुए। पारिवारिक दरिद्रता से सूर के अन्तर्मन में कडुवाहट भरने लगी। दरिद्रता में अन्ध सन्तान भी भारस्वरूप हो जाती है, "मूकं करोति वाचालं" वाली उक्ति सूर के हीनता ग्रस्त व्यक्तित्व के लिए मार्मिक पुकार बन गई। घर का उपेक्षापूर्ण वातावरण, तिरस्कार और हीनता भाव ने उन्हें वैराग्य के लिए विवश किया। यहीं

से सूर के व्यक्तित्व में पीड़ा उभरी जो दर्द बन कर रह गई। इस प्रकार पारिवारिक दारिद्रय की ओर, जन्मान्धत्वजन्य हीनता, उपेक्षा एवं तिरस्कार से त्रस्त होकर छोटी अवस्था में ही गृह त्याग करना पड़ा। हरिरायकृत भाव प्रकाश के अनुसार सूरदास अपनी छः वर्ष की आयु तक अपने माता–पिता के साथ रहे थे, इसके अनन्तर उन्होने गृह–त्याग किया और मियासिंह कृत "भक्त विनोद" के अनुसार आठ वर्ष की अवस्था में इनका यज्ञोपवीत हुआ, इसके पश्चात उनके माता–पिता उनको लेकर ब्रज यात्रा के लिए गए। वहां पर मथुरा में सूरदास कृष्ण–भक्तों के साथ रह गये और अपने माता–पिता के आग्रह करने पर भी उनके साथ वापस नहीं गए।

बाल्यावस्था में ही वैराग्यभावना बालयोगी सूरदास को गांव के बाहर एक तालाब के किनारे गऊघाट के पास ले गयी। जहाँ के सुरम्य वातावरण में रहकर ही उन्होंने जीवन के कई वर्ष गुजारे। यहीं एक आकस्मिक चमत्कार घटित हुआ। "सूर"ने स्थानीय जमीदार की खोई हुई दस गायों और पिता की खोई हुई मोहरों का सटीक ठिकाना बता दिया था और वे मिल भी गई। इन घटनाओं से सूर को प्रसिद्धि प्राप्त हुई कि– सूर शकुन बतलाते हैं, सूर की वाणी सिद्ध वाणी है। जमीदार ने उनके खाने रहने का प्रबन्ध कर दिया। चारों ओर से लोग शकुन पूछने या चमत्कार की भाषा में आने लगे।

इस प्रकार सूर पुज गये अन्न, वस्त्र और द्रव्य की कमी न रह गई सूर के विकल विक्षुब्ध अहं ने एक शीतलता का अनुभव किया। तिरस्कार के प्रति मूंक हिंसा की चीख कुछ–कुछ शान्त हुई। अब तक सूरदास "स्वामी" जी कहलाने लगे। यहां तक कुछ लोगों ने उनसे दीक्षा ली और अनेक व्यक्ति उनके सेवक हो गये। वहीं कीर्तन–संगीत का जमघट जमने लगा और जीवन की कटुता उनके विरह के पदो।के रूप के व्यक्त होने लगी। एक नये ढंग के जीवन का सूत्रपात कवि के जीवन में यहीं से हुआ।

अद्‌भुत जीवन-संघर्ष

इस अवस्था के मानसिक संघषों का चित्रण करते हुए डा0 चन्द्रभान रावत का कथन है–"अब हीनता–ग्रस्त व्यक्तित्व" के लिए दो मार्ग हुएः सिद्धि वाणी के चमत्कार द्वारा अपनी क्षति पूर्ति करे या काव्य और गायन की प्रतिभा साधना से उच्चतर क्षतिपूर्ति का मार्ग पकड़े। सिद्धि और भक्ति में भी द्वन्द्व चलने लगा। भक्ति का संकेत प्रतिभा साधना की ओर था– लोक रंजन की ओर। सिद्धि की सफलता कष्च्छ साधना पर आश्रित थी– सन्दिग्ध भी थी। सूर के अन्तर्द्वन्द्व का यही स्वरूप क्षतिपूर्ति के आरभिक क्षणों में घटित हुआ। इसी संघर्षपूर्ण स्थिति में सूर की अवस्था अठारह वर्ष की हो गई।" डा0 रावत के कथन का अभिप्राय है कि इस अवस्था तक सूर के जीवन निर्वाह की समस्या हल हो गई। सिद्धि की सफलता के कारण माया–जाल में भी फस गये थे। बाबा सूरदास बड़े आदमी बन गए और किसी दिन उन्हें अपने पूर्व जीवन का संघर्ष याद हुआ कैसे मैनें निर्धन के घर का दुःख झेला? पेट की चिन्ता को मिटाने के लिए क्या–क्या करता रहा? अब तो नई चिन्ता है कि इस सफलता का क्या करूँ? मुझे तो जीवन चरितार्थ करना है। इस जीवन संघर्ष का उल्लेख हरिराय जी ने अपने भाव प्रकाश मे इस प्रकार किया है–

"या प्रकार सूरदास तालाब पेपीयर के व्क्ष के नीचे बरस अठारह के भये। सो एक दिन रात्रि को सोवत हते, ता समय सूरदास को वैराग्य आयौ। तब सूरदास जी अपने मन में विचारे जो देखो में श्रीभगवान् के मिलन के अर्थ वैराग्य करि के घर सों निकस्यों हतौ। सो यहाँ माया ने ग्रसिलियौ।कृ. पाछे सूरदास एक वस्त्र पहरी के लाठी लैके उहाँ से कूच किये।कृकृ कितने सेवक संसार सोंरहित हते सो सूरदास जी के संग चले।"

इस वैराग्य भावना के उदात्त विचार ने सूरदास के अंतर्मन को आन्दोलित किया फलतः पुनः एक बार भ्रमण के लिए निकल पड़े। इस प्रकार उनके जीवन का आरम्भिक भाग समाप्त हुआ।

अलौकिक अतृप्ति की वेदना

हरिराय जी के उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि सूरदास जी ने अठारह वर्ष की अवस्था तक जीवन की सच्चाइयों का सामना करते हुए सफल और सुखमय लौकिक जीवन व्यतीत किया तत्पश्चात् अलौकिक अतृप्ति की वेदना ने उन्हें वैराग्य की ओर प्रवृत्त किया इसकी सूचना उनके कुछ पदों में मिलती है। व दिन गये अलेखें" जैसी उक्तियां अलौकिक अतृप्ति की वेदना को व्यक्त करती है।

जब विलक्षण जीवन की सच्चाइयों से प्राप्त सामर्थ्य रसिक अवस्था, विचारशील मन और जाग्रत विवेक को लेकर भगवक्षाप्ति कर जीवन की सफलता को चरितार्थ करने की धुन मे अपने कुछ सच्चे सेवकों सहित यायावरी के लिए निकल पड़े, तब "देर आये दुरस्त आये" वाली कहावत चरितार्थ हुई। सूर कहते है–

चत्यो सबेरौ, आयो अबेरौ, लेकर अपने साजा।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलि है, देखत जम दल भाजा।।[41]

इस सम्बन्ध में सूर–निर्णय के लेखक द्वय का मत उचित जान पड़ता है कि– "दृढ भक्ति से पूर्व की स्वामी अवस्था में काक, क्रोध, निंदा, स्तुति आदि दोषों का आना स्वाभाविक है। सूरदास कष्त दीनती, विनय, एवं वैराग्य के पदों में ऐसे अनेक कथन हैं जिनसे उस समय की दशा का ज्ञान हो सकता है। ये कथन अतिश्योक्ति पूर्ण होते हुए भी अवास्तविक नहीं जान पड़ते। कुछ समय तक सूरदास जी मथुरा में रहे पर उनका विचारशील मस्तिष्क और संवेदनशील मन मथुरा नगरी के कोलाहल में नहीं रमा। वे मथुरा से निकट रेणुका क्षेत्र के एक गांव गऊघाट गए। यमुना के किनारे रहे और बारह वर्ष तक वैराग्य, विनय और दीनता के पद गाते रहे। ज्ञान का उपदेश भी देते रहे।

41. *डॉ0 नरेन्द्र सिंह फौजदार, सूर की भाव साधना, 1989, पृ0 172*

सूरदास के जीवन का वास्तविक आरम्भ गऊघाट से ही होता है। वहां से उन्हें उचित मार्ग मिला। उनके अन्धत्व की हीनता ने उनकी वाणी को खरा बना दिया। जिससे उनकी दैन्य और विनय की उक्तियों में सख्य भाव भरता ही गया। उस समय तक सूर संगीत के कुशल पारखी हो चुके थे जिससे लोग उन्हें स्वामी हरिदास सम्प्रदाय का कहने लगे। सूर के व्यक्तित्व में माधुर्य की अन्तर्धारा पर हरिदास सम्प्रदाय का प्रभाव अवश्य था पर इसका कोई पुष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं है। वस्तुतः वे वल्लभ के ही सेवक थे।

डा0 चन्द्रभान रावत का मत है– "विनय और दैन्य अब व्यक्तित्व के बोझ नहीं थे। उनको काव्य का उदात्त माध्यम प्राप्त हुआ यह "हरि" को निवेदित होने लगा। दैन्य के उदात्तीकरण का क्षण अधिक से अधिक भाव–विहवल होता गया। अपनी हीनता अब विस्तृत होकर जीव मात्र की पीड़ा प्रतीत होने लगी। प्रभु की ऐश्वर्य कल्पना विभिन्न स्रोतों में पुष्ट होने लगी। विनय पवहलता के क्षणों में कुछ ऐसी अनूठी उक्तियां भी विःसृत होने लगी जिनमें इष्ट के साथ अधिक सामीप्य प्रकट हुआ है। विनय के अधिकांश पदों में केवल यही बात दिखाई गई है कि मैं अत्यन्त पतित हूँ, पतितों का राजा हूँ, आप पतित पावन हैं। आप मेरा उसी प्रकार उद्धार कीजिए जैसे आपने अन्य पतितों का किया है। यहीं कहीं यह वषत्ति उपालम्भ तक पहुँच गई है–

मेरी वेर देर क्यों करी, मोहि उवारौ तो मैं जानू।[42]

आदि सूर के विनय भाव की विशेषताएं निम्नांकित है।

वैराग्यपूर्ण भक्ति-साधना

विनय के पदों में सूरदास ने राम और कृष्ण का कोई भेद नहीं रखा क्योंकि उन्होंने जिन भक्तों के उद्धार की बात कही है, उनमें से कुछ तो राम

42. *डॉ0 चन्द्रभान गुप्त, सूर साहित्य नव मूल्यांकन, पृ0 42*

भक्त हैं, कुछ कृष्ण–भक्त, उन्होने विनय के पदों में अन्य सगुणोपासना करने वाले भक्तों के समान भगवान् की भक्तवत्सलता का ही सहारा लिया है और उसी की दुहाई दी है। भगवान की इस भक्त वत्सलता में उन्होंने अन्य भक्त कवियों के समान उन सब भक्त कवियों का भी उल्लेख किया है जिनके लिए कृष्ण भगवान् ने नररूप धारण किया था और जिनके शत्रुओं को मारकर उनकी रक्षा की अथवा उनकी कठिनाइयों को सप्त किया। इस प्रकार सूरदास ने भक्तों के लिए किए हुए भगवान् के पराक्रमों की दुहाईदेकर अपने तरजाने के लिए भी प्रार्थना की। अपने विरूद्ध की लाज सम्भालने के लिए चेतावनी दी। कृपा के लिए प्रार्थना की, गुण–अवगुण न विचारने का आग्रह किया और फिर इसी झोंक में उन्होंने ललकारा भी। आचार्य सीताराम चतुर्वेदी के मतानुसार–"देखा जाय तो विनय के पद उनकी मानसिक तन्मयता के पद हैं जिनमें उन्होंने भगवान् के प्रति अपनी निष्ठा भी प्रकट की है, उनकी महत्ता का भी परिचय कराया है, उनकी भक्तवत्सलता की भी दुहाई दी है, उपालम्भ भी दिए हैं और भक्ति के आवेश में कभी–कभी ललकारा भी है। वस्तुतः दैन्यभावापन्न पदों में सूर ने अपनी हीनता और भगवान की भक्त वत्सलता का चित्रण किया है। दैन्य के अन्तर्गत आने वाली भक्त की अनेक मानसिक स्थितियां भी इन पदों में मिल जाती है। दैन्य भाव की भक्ति करने वाला भक्त कभी अपनी "दीनता" का प्रदर्शन करता है, कभी "मानमर्षण" (अभिमान का त्याग) की भावना से अभिभूत हो उठता है। कभी संसार की भयंकरता की कल्पना करता हुआ अपने मन को भयदर्शन कराकर भगवान् की ओर उन्मुख होना चाहता है। कभी अपने मन की भर्त्सना करता है। कभी यह सोच कर कि भगवान् की कृपा उसे प्राप्त हो गई है मनो राज्य में विचरण करता है। कभी भगवान् के विरूद्ध का ध्यान करके आश्वासन प्राप्त करता है। कभी संसार की विचित्र स्थिति लक्ष्य करता हुआ विचरण करता है और कभी उसे अपने जीवन की व्यर्थता पर पश्चाताप होता है। पर सागर में ये सभी स्थितियां मिल जाती हैं। सूर को अपनी लघुता पर गर्व है। भगवान् के पतित–पावन विरूद्ध पर उन्हें पूर्ण आस्था है। इसीलिए वे

कभी–कभी भगवान् के नैकट्य का अनुभव करते हुए घृष्ट भी हो गये हैं। उन्हें चुनौती भी देते हैं, व्यंग्य भी करते हैं किन्तु अन्ततः पूर्ण आत्मसमप्रण भी कर देते हैं।

वैष्णव भक्ति परम्परा दास्य भाव की स्थिति से प्रीति रस की निष्पत्ति मानती है। दास्य भाव का भक्त अपने को सतत रूप से भगवान् का अनुग्राह्य समझता है। इसीलिए वह अपने को हीन और निकृष्ट समझता है और भगवान् को प्रसन्न करना चाहता है। इसी कारण उसमें "सभ्रम" का भाव उत्पन्न होती है दास्य भक्त मन में विश्वास की दृढता होने पर यह भावना उत्पन्न होती है कि भगवान् मेरे प्रभु और रक्षक हैं। इसी भावना को "गौरव" कहा गया है। इन्हीं आधारो पर दास्य–भक्ति के दो रूप माने गये हैं। "संक्राम प्रीति" और "गौरव प्रीति" सूर के दैन्य भाव के पदों में "सभ्रम" और "गौरव" दोंनो ही भावनाएं मिल जाती हैं।

इस प्रकार सूरदास आरम्भ से ही संसार के प्रति वैरागी और हरि के प्रति परम अनुरागी थे। उनका यह अनुराग अवस्था के साथ तीव्र से तीव्रतर और तीव्रतम होता गया। कभी–कभी दिग्भ्रम हुआ पर फिर संभल गये।

वैराग्यपूर्ण भक्ति के अन्तर्गत सूर ने जीवन की कटुता, असारता और जगत् की नश्वरता पर बहुत व्यापक रूप में विचार किया है। कवि के विचार से संसार में कोई अपना नहीं है, सब मतलब के सगे हैं। घर की नारी जिससे बहुत प्रेम होता है और जो सदा संग लगी रहती है, प्राण रूपी हंस के प्रयाण के समय प्रेत–प्रेत कहकर भागने लगती हैं। कुटुम्ब के बन्धु–बान्धव शरीर को घर के बाहर जला देते हैं, लकड़ी से सिर फोड़ देते हैं, तथा पृथ्वी के घर में जो कुछ गाड़ रखा है, उसे संभालने लगते हैं। इन्हीं प्रपंचात्मक भावनाओं को ध्यान में रखते हुए सूर ने भक्ति–विहीन जीवन व्यतीत करने के कारण अगले जन्म में चार पैर तथा दो सींगों वाला बैल होने की बात कही है। इसी प्रसंग में

कवि ने प्रभु की भक्त–वत्सलता का उल्लेख किया है। इन्होंने वैराग्य पूर्ण भक्ति के लिए आत्म ज्ञान की आवश्यकता पर बल दिया है। आत्म ज्ञान के अभाव में जीव मृग की भांति संसार–वन में भटक्ता रहता है। तेल, तूल और पावक पुट में भरकर रखने से कुछ नहीं होता है, वास्तविक चीज तो आत्म–ज्ञान है। आत्म ज्ञान वैराग्य से होता है। इस प्रकार कवि ने वैराग्य और भक्ति में सामंजस्य स्थापित किया है। डा0 हरगुलाल के मतानुसार–"कवि ने भगवान् की भक्त वत्सलता और उनके औदार्य का वर्णन करते हुए प्रथम स्कन्ध के अन्तर्गत विनय के अधिकांश पदों में वैराग्यपूर्ण भक्ति का विवेचन किया है। यह भक्ति ज्ञान के शुष्क तर्को से समचित न होकर सूर की अमर कल्पना और संचेतना से युक्त हैं।"

भक्ति बिनु बैल बिराने हैहौ।
पाउ चारि सिर मुख, तब कैसे गुन गैहों।[43]

डा0 ब्रजेश्वर वर्मा का कथन है– "अपने इष्टदेव कृष्ण का लीला–गान करने से पूर्व हमारे कवि की विचार'–धारा में संसार की असारता, मनुष्य–जीवन की निरर्थकता एवं भावी की प्रबलता सूचक मनोभावों की प्रधानता थी। मायावाद के मिथ्यात्वपरक सिद्धान्त के अनुसार माया–प्रेरित अहन्ता–ममता के वशीभूत होकर मनुष्य के अज्ञान तथा उसकी सहज विषयोन्मुखता सम्बन्धी धारणा उस समय कवि के मानस की सबसे दृढ अनुभूति जान पड़ती है। सूरदास के मत में मनुष्य जीवन का एक मात्र कर्त्तव्य हरि की सर्वभावेन भक्ति है। अनन्य भक्ति की चरम परिणति साधन और साध्य की एकरूपता में ही सूरदास ने व्यक्त की है।" भाव साधना के इस विकास को देख कर कहा जा सकता है कि सूर ने धर्म के समस्त साधनों–ज्ञान, वैराग्य, तप, यज्ञ, योग आदि के स्थान पर स्वतःपूर्ण और स्वाधीन हार्दिक अनुभूति को प्रधानता दी है। कवि ने एक के बाद एक 'विनय' के समस्त पदों में यही प्रतिपादित किया है कि मनुष्य को नर–जन्म बड़ी

43. *डॉ0 ब्रजेश्वर वर्मा, सूरदास, पृ0 184*

कठिनाई से मिलता है अतः उसे व्यर्थ नहीं गंवाना चाहिए, वरन् आत्मसमप्रण कर हरि की एकान्त भक्ति करनी चाहिए। अपने मत की पुष्टिके लिए उसने व्याध, अजामिल,, गीध, कृष्ण आदि अनेक अधर्मों के उदाहरण देकर सिद्ध किया है कि हरि की तनिक सी भक्ति से समस्त पातवा नष्ट हो जाते हैं।

भक्ति पद्धति

व्युत्पत्ति की दृष्टि से "भक्ति "शब्द "भजसेवायाम्" धातु से क्रमशः "ल्युट" तथा क्तिन" प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। "क्तिन" प्रत्यय भाव अर्थ में होता है– भजनं भक्तिः। "भज् धातु का अर्थ भगवान् की सेवा करना है। "भक्ति" शब्द की व्युत्पत्ति "भज्विश्राणने" से भी मानी गई है। "विश्राण" का अर्थ है विभाजित करना या बाँटना। भक्त अपने को जगत् के स्वार्थों से विभक्त करता है और भगवान् से भी विभक्त रहकर उनके रूप और कर्म सौंदर्य का साक्षात्कार करता है क्योंकि उसका ध्येय प्रायः सामीप्य लाभ होता है। भक्ति के साम्राज्य में भोक्ता और भोग्य दोनों ही पारस्परिक साहचर्य जन्य आनन्द का उपभोग करने के लिए चिन्मयदेहेन्द्रिय–विशिष्ट होते हैं।

भक्ति–साधना के आचार्यों ने तत्कालीन युगधर्म एवं अपने अपने भाव विचारों के अनुसार इस शब्द की जो भी व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं, उनमें शाब्दिक विभिन्नता के होते हुए भी एक मुल तत्व अनुराग की समानता अवश्य विद्यमान है। भारतीय धर्म साधना का विधिवत् अनुशीलन करने से भी यही सत्य प्रतिपादित होता है कि भक्ति अपने प्रकृत स्वरूप में मधुरभाव की ही पोषिका है।

भक्ति की व्याख्या अनेक प्रकार से की गई है। भक्ति के विषय में अधिकारिक व्याख्या हमें गीता, भागवत्, शाण्डिल्य तथा नारद के भक्ति सूत्रों में मिलती है। भक्ति मत के प्रचार के साक्ष्य उपनिषदों से भी मिलते हैं। यद्यपि उपनिषदों में भक्ति शब्द का उल्लेख नहीं है, तथापि भक्ति पदार्थ के स्थानापन्न रूप में श्रद्धा शब्द का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। यथा–

"श्रद्धा त्वन्योपायबर्ज भक्त्युन्मुखचित्तवृत्तिविशेषः।"[44]

अर्थत् कर्म, ज्ञान आदि उपायों का त्याग करके भक्ति के प्रति उन्मुख चित्तवृत्ति विशेष का नाम श्रद्धा है। ईशादि मुख्य दस उपनिषदों में भक्ति शब्द का उल्लेख न प्राप्त होने पर भी श्वेताश्वतर उपनिषद् के अन्तिम मन्त्र में भक्ति शब्द का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। उपनिषद्–साहित्य में भक्ति को "उपासना" भी कहा गया है। स्वयं "उपनिषत्" शब्द का अर्थ भी उपासना है। इस भक्ति की परम्परा वेदों के समय से ही चली आ रही है। वेदों में भक्ति के पर्याय भजन् का स्पष्ट निर्देश है।

श्रीमद्भागवत् पुराण तो भक्ति–काव्य ही है। इसमें भक्ति का विशद विवेचन किया गया है। भागवत्कार ने स्पष्ट लिखा है कि सांसारिक विषयों का बोध कराने वाली इन्द्रियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति जब निष्काम रूप से भगवान में लीन रहती है, तब उस वृत्ति को भक्ति कहते हैं। देवर्षि नारद ने परमात्मा के प्रति परम प्रेम की भक्ति माना है। परम प्रेम में ज्ञान–कर्म के अनुशासन से और समस्त इच्छाओं के बन्धन से मुक्ति की अवस्था का भाव निहित है। ईश्वर ही परम प्रेम का लक्ष्य है। प्रेम शब्द इस बात का द्योतक है कि नारद का प्रेम भक्ति का चरम बिन्दु हे। महर्षि शाण्डिल्य ने ईश्वर के प्रति परम अनुरक्ति को भक्ति बताया है। इस अनुरोग में निस्वार्थता का भाव निहित है। तथा ईश्वर परम है अनुराग के लक्ष्य रूप में स्वीकृत है। इन दोनों सूत्रों से विदित होता है कि भक्ति–भाव की विधायिनी आशक्ति एकमात्र ईश्वरत्व में ही "परम अनुरक्ति" है जो माहात्म्य ज्ञान से प्रभावित होकर अखिल विश्व की एक मात्र संचालिनी शक्ति के प्रति ही सम्पूर्णभावेन है आत्मसमर्पण के रूप में प्रकाशित होती है। इस स्थिति को प्राप्त मानव की समस्त आकांक्षाएं एवं संपूर्ण जागतिक आसक्तियाँ मात्र उस अव्यक्त शक्ति के ही काल्पनिक किंतु साकार–निराकार

---

44. डॉ0 नरेन्द्र सिंह फौजदार, सूर की भाव साधना, 1989, पृ0 15

रूपों में केन्द्रीभूत हो जाती हैं। प्रगाढ प्रेम की यह चरम स्थिति में ही मानव मन को आत्मानन्द के साक्षात्कार से अन्य लौकिक कामनाओं से भी मुक्त करा देती है।

गीता में भी पूर्ण सर्मपण और उत्कृष्ट प्रेम भक्ति के आधार तत्व माने गये हैं। गीता के अनुसार भक्त चार प्रकार के होते हैं– आर्त–द्रौपदी, जिज्ञासु–उद्धव और अर्जुन, अर्थार्थी–ध्रुव, ज्ञानी–शुक और नारद। इनमें ज्ञानी भक्त सर्वश्रेष्ठ माना गया है। ज्ञानीभक्त की भक्ति का एक मात्र लक्ष्य ईश्वर होता है। साथ ही यह भी कहा गया है कि वेदाध्ययन, तपश्चर्या तथा दान आदि मार्ग भक्ति में ये सभी सन्निहित रहते हैं। अनन्य भक्ति के द्वारा ईश्वर दृश्य हो जाता है, उसको जाना जा सकता है तथा इसी मार्ग से उस परम तत्व में प्रविष्ट हुआ जा सकता है।

शंकर के अनुसार अनन्य भक्ति यह वह गहन प्रेम है जो ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य लक्ष्य की ओर उन्मुख नहीं होता। उनके अनुसार आदर्शभक्त वह है जो अपनी समस्त ज्ञानेन्द्रियों द्वारा केवल एक वस्तु ईश्वर का ही अनुभव करता है। श्रीमद्भागवत में भी कहा गया है– "जो मेरे भक्त हैं, वे मेरी सेवा छोड़कर और कुछ नहीं चाहते। सालोक्य (मेरे साथ एक लोक मे वास), सार्ष्टि (मेरे सामान ऐश्वर्य), सारूप्य (मेरे सामान रूप), सामीप्य (मेरे समीप अवस्थान) या एकत्व (निर्वाण–मुक्ति) इनमें से कोई भी यदि मैं देना चाहूँ, तो भी वे ग्रहण नहीं करते। वे चाहते है मुझसे प्रेम करना, मेरी सेवा करना। इसी का नाम "आत्यन्तिक भक्तियोग" है। इसके द्वारा मेरे भक्तगण त्रिगुणात्मिका माया का अतिक्रमण करके मेरे विमल प्रेम को प्राप्त करते है। गीता में भगवान् ने माया को "दैवी" और "दुरत्यया" कहा है। माया को जीतना बहुत कठिन है। परन्तु भगवान् ने कहा है जो मेरी शरण ले लेते हैं, माया उनकी फिर आबद्ध नहीं कर सकती। इसी कारण अर्जुन को गीता का चरम उपदेश देते हुए भगवान् कहते हैं– सब धर्मों को परित्याग कर मेरी शरण में आ।

भागवत्कार के अनुसार भक्ति मन की सत्व से अनुप्राणित, स्वाभाविक और अनिमित वृत्ति है। यह परम धर्म है यह मनुष्य के मन में विष्णु के प्रति अनवरत्, अहैतुक और अक्षय प्रेम ही सृष्टि करता है। भक्त का मन इसकी झलक मात्र से आहलाद विभोर हो उठता है। इसी कारण उन्होंने भक्ति को ज्ञान, कर्म आदि सभी साधना पद्धतियों से श्रेष्ठ माना है। तथा ईश्वर प्राप्ति का इसे सरलतम मार्ग निरूपित किया है।

नाथ सुखायो भगवान् देहिनां देवकी सुत।
ज्ञार्नानां चाल्यभूतानां यथा भक्तिमतामिह।।[45]

रामानुजाचार्य प्रभु–प्रेम को निर्हेतुक और सहेतुक दो प्रकार का मानते हैं। रामानुज प्रपत्ति अर्थात् सर्वात्मना समर्पण की भावना को प्रधानता देते हैं और कहते हैं कि प्रभु का अनुग्रह ओर उनका प्रेम प्रपत्ति द्वारा ही संभव है। उनके अनुसार भक्ति भगवान् की एक अविच्छिन्न स्मृति है। यह स्मृतिधारा की अविच्छिन्नता उसी प्रकार एक पात्र से दूसरे पात्र में उड़ेलने पर तेल की धारा की अविच्छिन्नता बनी रहती है। भक्ति बुद्धि का प्रशिक्षण और आत्मशक्ति का अनुशासन है। यह जीवन का एक शाश्वत् भाव हैं।

शंकराचार्य को अधिकांश लोक ज्ञानवादी मानते हैं क्योंकि वे अद्वैतवाद के प्रतिष्ठापक थे। अद्वैंतवाद दर्शन के ज्ञान–क्षेत्र की चरमता का परिचायक है। परन्तु वे केवल ज्ञानवादी ही नहीं थे, मूर्तिमान् ज्ञान–कर्म और भक्ति के समुच्चयवादी थे। आचार्यने ज्ञान वैराग्य के साथ भक्ति को भी मुक्ति का साधन बताया है। उनके अनुसार भक्ति ज्ञान की पूर्वावस्था है अथवा भक्ति ही आगे चलकर ज्ञान में रूपानतरित होती है। श्रीकृष्ण के चरण–कमल में भक्ति किये बिना अन्तरात्मा की अर्थात् मन की शद्धि नहीं होती और मन शुद्ध हुए बिना ज्ञान का आविर्भाव या स्थायित्व असम्भव है। श्रीकृष्ण–प्रीति के द्वारा मनुष्य को सांलोक्य, सामीप्य और सायुज्य की प्राप्ति होती है– इसका समर्थन भी हमें उनके उपदेशों से प्राप्त होता है।

45. डॉ0 नरेन्द्र सिंह फौजदार, सूर की भाव साधना, 1989, पृ0 35

अन्यासिलाषित शून्यं ज्ञानाकर्माधनावृतय।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनी भक्ति सत्तमा।।[46]

भक्ति के प्रयोजन और फल आदि कहकर भी शंकराचार्य तृप्त न हो सके, अतः उन्होंने भक्ति–संज्ञा भी निर्धारित कर दी तथा भक्ति का श्रेष्ठतव स्थापन करते हुए कहा कि–"मुक्ति के जितने हेतु हैं, उनमें भक्ति ही श्रेष्ठ है। विद्वान लोग कहते हैं कि स्वरूप का अनुसंधान ही भक्ति है।

श्री रूप गोस्वामी के अनुसार किसी प्रकार की अभिलाषा किए बिना और ज्ञान एवं कर्म के प्रभाव से रहित श्रीकृष्ण का ही निरन्तर एवं प्रेमपूर्वक अनुशीलन करना ही भक्ति है। भक्ति रसायन में भी इसी तथ्य का उद्‌घाटन करते हुए कहा गया है कि– "भक्ति मन की ही एक वृत्ति है, जो आध्यात्मिक साधना से द्रवीभूत होकर ईश्वर की ओर प्रवृत्त होती है। इस भक्ति को प्राप्त करनेवाला व्यक्ति तृप्त एवं सिद्ध होकर संसार की किसी भी वस्तु में वस्तु में आसक्त नहीं होता।

इसी प्रकार समस्त भारतीय मध्ययुग में भक्ति–भाव का ही विचार विश्लेषण प्रधान रूप से होता रहा, यहाँ तक कि वेदान्त के नीरस ज्ञान को भी भक्ति भावों से परिप्लावित करने का प्रयास किया गया। बल्लभाचार्य ने ज्ञान एवं भक्ति का पारस्परिक समन्वय प्रस्तुत करते हुए कहा है–" भगवान् के प्रति माहात्म्य ज्ञानपूर्वक सुदृढ एवं सतत् स्नेह भक्ति है और मुक्ति का इससे सुगम अन्य कोई साधन नहीं है।

प्राचीन धर्म ग्रन्थों एवं मध्ययुगीन आचार्यों की भांति कतिपय आधुनिक आलोचकों ने भी भक्ति की व्याख्या प्रस्तुत की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार "भक्ति मार्ग अपने विशुद्ध रूप में धर्म–भावना का भावात्मक या रसात्मक विकास है।" आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भक्ति को भगवान् के प्रति

46. डॉ0 नरेन्द्र सिंह फौजदार, सूर की भाव साधना, 1989, पृ0 36

अनन्यगामी एकान्त प्रेम के रूप में माना है जो कि आत्मसमर्पण के द्वारा उपलब्ध होता है। यह प्रेम भौतिक प्रेम से परे "उज्ज्वल रस" है और आत्मसमर्पण की तीव्र भावना वाले ही इसे अपनाते है। डॉ0 मुंशीराम शर्मा ने भक्ति क्या है? का उत्तर देते हुए कहा है– "प्रभु को भजना, उसके समीप पहुँचना, बैठना, उसकी सेवा करना और असके आनन्द से आनन्दी बनना" भक्ति है। आचार्य विश्ननाथ प्रसाद मिश्र का यह मत है कि "सहज उच्छ्लन ही उसकी विशेषता है। यही कारण है कि उसमें किसी प्रकार का बन्धन नहीं है। उन्मुक्त विचरण है। भक्ति में काम का बन्धन नहीं है, सहज समर्पण है।" डॉ0 राममूर्ति त्रिपाठी के मतानुसार भक्ति अन्तःकरण की वृत्ति विशेष का नाम नहीं है, वह तो साक्षात् चिदानंदमय ब्रह्म की आनन्दमयी स्वरूप शक्ति की वृत्ति ही है।

संक्षेप में, अहैतुक रूप से भगवान् की सेवा, आत्मसमर्पण एवं अनन्य प्रेम द्वारा आनन्दमय स्वरूप का आस्वाद करना ही भक्ति है। स्वरूपानन्द की अनुभूति भगवद्नुग्रह से होती है।

भक्ति-भाव या रस

भक्ति–साधना का साहित्य में विशिष्ट स्थान है। इसकी संवित् शक्ति को काव्य शास्त्रीय दृष्टि से क्या नाम दिया जाय–इस सम्बन्ध में दो विकल्प उपस्थित होते हैं :–

(1) इसे स्वतंत्र काव्य–तत्व के रूप में स्वीकार करते हुए रस की संज्ञा दी जाए, अथवा

(2) भाव की संज्ञा दी जाए।

इस विषयपर प्रकाश डालने से पूर्व रस और भाव का स्वरूप जानना आवश्यक है।

रस का स्वरूप :-

आचार्य भरत ने रस का स्वरूप इन शब्दों में निरूपित किया है :–

विभावानुभावव्यभिचारि संयोगा द्रसनिष्पत्तिः।[47]

अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के साथ स्थायी भावों का संयोग होने पर रस निष्पत्ति (अभिव्यक्ति) होती है। इस बात को वे पाक–रस का दृष्टान्त रखकर समझाते है। जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यंजनों, औषाधौं, द्रव्यों के संयोग से भोज्य पदार्थो के अपने स्वाद रस बन जाते हैं उसी प्रकार नाना भावों से युक्त स्थायी भाव भी रसत्व को प्राप्त करते हैं। वे रस पद की व्युपत्ति भी इसी दृष्टि से करते हैं –"रस इति कः पदार्थः। उच्यते। आस्वाद्यत्वात्।" अर्थात् रस क्या है, बताते हैं। रस या आस्वाद्य होने के कारण इसे रस कहते है। इस प्रकार भरतमुनि के उनुसार "रस" शब्द का अर्थ हुआ "रस्यते आस्वाद्य ते इति रसः।"

काव्य प्रकाशकार मम्ट ने कहा है कि आलम्बन विभाव से उद्‌बुद्ध, उद्‌दीपन से उद्‌दीप्त, व्यभिचारी भावें से परिपुष्ट तथा अनुभावों द्वारा व्यक्त ह्रदय का स्थायी भाव ही इस रस दशा को प्राप्त होता है। अतः काव्य पढने सुनने या अभिनय देखने पर विभावादि के संयोग से निष्पन्न होने वाली चित्तवृत्ति ही रस हे। भरत इस वस्तु रूप रस की अवस्थिति नाट्य में मानते हैं।

काव्य–रस इस प्रकार की विलक्षण, अलौकिक एवं अनिर्वचनीय अनुभूति है, लोक व्यवहार से भिन्न है और केवल आनन्द देती है। इसका आस्वाद ही किया जा सकता है। इसीलिए इसकी अनुभूति को रसास्वाद, रस चर्वणा आदि कहा गया है।

---

47. डॉ0 नरेन्द्र सिंह फौजदार, सूर की भाव साधना, 1989, पृ0 19

साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ ने सत्वोद्रेक को रस का हेतु बताया है। "सत्वोद्रेक" शब्द का तात्पर्य है– सत्वमन का उद्रेक (विस्फुरण)। सत्व उस मन को कहते हैं जो रजोगुण और तमागुण से अस्पृश्य हो। मन शब्द का लक्ष्यार्थ है– मन्नोवृत्ति, मन का धर्म, अथवा मन का गुण। सत्वौद्रेक का आशय है उक्त दोनों विकारोत्पादक गुणों से भिन्न एक अन्य गुण का विस्फुरण, जो विकार का सूचक न होकर उदात्त भावना का सूचक हो। परिष्कृत एवं उदात्त भाव जागृत होने पर ही प्रमाता रस का आस्वादन कर पाता है। सत्वगुण सम्पन्न रस को विश्वनाथ ने अखण्ड, स्वप्रकाशानन्द, चिन्मय वेदान्तर स्पर्श शून्य, ब्रह्मनन्द सहोदर, लोकोत्तर, चमत्कार प्राण और अपने आकार से भिन्न कहा है।

अलंकारवादी भामह केवल विभाव विधान में रस निष्पत्ति मानते हैं, जबकि दण्डी के अनुसार विभाव–अनुभाव, व्यभिचारी सामग्री के द्वारा परिपुष्ट हाकर स्थयी इतयादि भाव हर श्रंगारादि रसों के रूप में परिणित होते हैं। दण्डी ने काव्य वचनों को "रसवद्" कहा है। बामन ने कान्ति– गुण विशिष्ट रीति को काव्य की आत्मा कहा।

दर्शन सापेक्ष रस-निरूपण

रस विवेचन में दर्शन का संस्पर्श करते हुए भदलोल्लट ने रस सम्बन्धी दृष्टिकोण इन शब्दों में प्रस्तुत किया है–

उपचितावस्था अर्थात् परिपक्वता की प्राप्त स्थायी भाव ही "रस" नाम से अभिहित होते हैं। स्थायी भाव, जो स्वयं तो वासना रूप में सुप्त एवं अनुपचित है, विभाव–अनुभाव–व्यभिचारी से उपचित (कारण सामग्री द्वारा उभारी हुई) या पुष्ट होकर रस बन जाते हैं।

यह उद्‌बुद्ध भावों की स्थिति, जिसे रस कहा गया है वास्तविक रामादि में तो होती ही है, अभिनय कौशल के बल पर रामादि का अनुकरण करने वाले नट में भी होती है।

शंकुक ने लोल्लट के मत का खण्डन करते हुए स्थायी भावों के अनुकरण को रस कहा है। शंकुक का रस नटनिष्ठ है क्योंकि रस भावो का अनुकरण है और नट द्वारा अनुक्रियमाण है अतः इस अर्थ में रस निष्ठ है। शंकुक के मत में भाव अनुकार्यगत है पर रस अनुकृर्तृगत। इनके अनुसार सामाजिक नट के सफल अभिनय को देखकर उसमें रामादि के रत्यादि भावों की विद्यमानता अनुमित कर लेता है। नट सम्बन्धी विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव उसे कृत्रिम न दिखाई देकर स्वाभाविक से प्रतीत होने लगते हैं अतः सहृदय इनके द्वारा स्वतः रस की चर्वणा करने लग जाता है। और इस चर्वणा मे सहायक होती है उसकी अपनी वासनाएं अर्थात् पूर्व जन्म–संस्कार।

आचार्य महिमभट्ट के अनुसार विभाव– अनुभाव व्यभिचारी के द्वारा गम्य गभक भाव से असत्यभूत इत्यादि स्थायी भावों की अनुमानात्मा प्रतीति ही रस है। कहिक की दृष्टि में रस सुख रूप है तथा रत्यादि की सत्यासत्यता का प्रश्न अनावश्यक है। उनके मतानुसार रत्यादि की असत्यता और परोक्षता काव्य निष्ठ वैषयिक चारूत्व से मिलकर भावानुमिति को चमत्कार पूर्ण बनाते हैं और काव्यानुभूति को सुखात्मक बनाती है।

अभिनव गुप्त ने रस को अलौकिक अथवा लोकोत्तर कहा है। इसका कारण है कि रस–निष्पत्ति की स्थिति में सत्वगुण का आविर्भाव हौता है तथा रजोगुण और तमोगुण का तिरोभाव। पण्डितराज जगन्नाथ ने भी रस की विषयानन्द और ब्रह्मानन्द से भिन्न माना है। अतः कहा जा सकता है कि रस अलौकिक है क्योंकि लौकिक सुख अन्तःकरण की वृत्तियों से युक्त चैतन्य स्वरूप रहते हैं किन्तु काव्यानन्द शुद्ध चैतन्य स्वरूप है, अर्थात् काव्यानन्द का उपभोग करते समय अन्तःकरण की वृत्तियों से सम्बन्ध नहीं रहता। अब तक इस रस का स्वरूप समझा चुके हैं, परन्तु रस और भाव का अन्तर स्पष्ट करने के लिए भक्ति काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों के आधार पर भाव का स्वरूप समझने का प्रयास करेंगं।

भाव का स्वरूप

भाव राग की एक गतिशील इकाई है। साधना और रस परिपाक भाव की गतिशीलता के कारण उत्तरोत्तर विकास की प्रक्रिया में ढल जाते है। "भावऽभू से व्युत्पन्न है, इसका घात्वर्थ है बढना या विकास करना। यास्क ने इसकी 6 अवस्थाएं मानी है। जायते, अस्ति, परिणमति, वर्धते, अपक्षीयते एवं विनश्यन्ति। सांख्य दर्शन में भाव विवेचन हुआ है उसमें "मानुषाणां भावाः" के अनुसार मानसिक भावना अथवा घटना के लिए प्रयुक्त हुआ है। व्याप्त करने के अर्थ में भी इस शब्द का प्रयोग प्रचलित हुआ है। भाव जो भावित करें। अतः भाव में पर साध्य के साक्षात्कार की सामर्थ्य है क्योंकि "परम पुरूष" भक्ति भाव से वश्य है। भाव कृष्ण नति या "भगवद्रति" का पर्याय है, मूलतः शुद्ध, सात्विक, सहजात है। यह भगवान् के माहात्म्य बोध के साथ नाना भूमिकाओं में विकसित हाकर फल–भक्ति का रूप ग्रहण करती है। चित्त में दबे हुए सात्विक रति रूप संस्कार, स्मृति रूप आभ्यन्तर निमित्त द्वारा, अथवा शास्त्र वर्णित "अतसीकुसुमोपमेपकान्ति" आदि कमनीय स्वरूप तथा अर्चादि विग्रहों के दर्शन से वृत्ति या भाव के रूप में परिणित होते हैं। स्मृति या कपनाजन्य वस्तु से अथवा इन्द्रियप्रणाली द्वारा बाहय वस्तु से दपराग या आभेग के अनन्तर मन में जो ग्राहय ग्रहणाकारा प्रतीति होती है, वही वृत्ति है। अर्थात् शुद्ध सहज रति भक्ति का प्रथम तथा समापत्ति चरम अवयव है।

वृत्ति में अस्थिरता नहीं होती , यह अन्यान्य वृत्तियों (भावों) द्वारा विच्छिन्न होती रहती है। नाम–कीर्तन तथा भावनादि साधन भक्ति द्वारा आराध्य के साथ चित्त जब पूर्णतया समापन्न होता है, तब उस भाव का उच्छेद कठिन हो जाता है, इस स्थिति में यह भावमात्र न रहकर शक्ति का रूप ग्रहण करती है। इस शक्ति को शुद्ध सत्व कहा जाता है। भक्त को यही भक्ति रस की अनुभूति होती है। प्रेमा आदि इसी भाव की प्रौढ अवस्थाएं हैं, अतः यही भक्ति रस का स्थायी भाव है।

भगवान् की स्परूपात्मिका शक्ति होने के कारण भाव को शुद्ध सत्व कहा जाता है। इसे ही "हलादिनी", "सन्धिनी", "संवित्" आदि संज्ञाओं से अभिहित किया जाता है। भगवत्प्राप्ति की अभिलाषा, उनकी सेवा की अभिलाषा तथा भगवान् के सौहार्द्र लाभ की अभिलाषा से यह भाव भक्ति–प्रेम–सूर्य की किरणों के समान उदय होकर चित्त को मसृण कर देती है। चित्त जब सम्यक रूप से मृसृण (कोमल) हो जाता है, तब परमआनन्द के उत्कर्ष से घनीभूत भाव ही प्रेम कहलाता है।

भावदशा में मसृणता की बात सम्यक् रूप से कही नहीं जा सकती। किन्तु प्रेम में मसृणता तथा ममत्व–बोध पूर्ण रूप से प्रकट होता है। प्रेम अथवा निर्मल भाव, विभाव, अनुभाव, सात्विक और व्यभिचारी भावों के संयोग से श्री कृष्ण रति में चमत्कार आता है। कृष्ण–रति भक्त चित्र को उल्लसित करती है, ममता बुद्धिका उदय करती है, विश्वास उत्पन्न करती है, प्रियत्व का अभिमान जागृत करती है, हृदय को द्रवित करती है, अतिसय लालसापूर्वक स्व (श्रीकृष्ण) के साथयुक्त करती है। प्रतिक्षण नये–नये रूप में जनुभूत होती है, अतुलनीय एवं निरतिशय चमत्कृति के द्वारा उन्मन्त कर देती है। भाव की इस प्रकार की उन्मत्तावस्था को ही "महाभाव" या "मोदन भाव" कहा गया है।

महाभाव स्वरूपिणी श्री राधा श्री कृष्ण के प्रेयसीगणों में सर्वश्रेष्ठ है। परम सुन्दर, असमोर्ध्व, लीला चातुर्य की संपदा से समलकृत नन्द नन्दन श्रीराधा के प्रेम के आलम्बन है, श्री राधा मधुर–रस का श्रेष्ठतम आश्रय है। श्री राधा गोविन्द की परस्पर रति इतनी प्रगाढ है कि सजातीय अथवा विजातीय किसी भी भाव के समावेश से कहीं भी कभी भी उसमें व्याघात नहीं होता। यथा–"कुछ दूर पर माता यशोदा है चारों ओर सखागण सुशोभित हैं, आंखों के सामने चन्द्रावली है, समीप ही पर्वत के टीले पर अरिष्टा सुर है, तथापि दाहिनी ओर कुसुमित लता की ओट में स्थित श्रीराधा के प्रति मुकुन्द की चंचल दृष्टि विद्युत् के समान बारम्बार पड़ रही है।

श्रीकृष्ण की संघिनी, संवित् के समान और हलादिनी–इन तीन शक्तियों में श्री कृष्ण एवं भक्तों का सुख विधान करने वाली हलादिनी शक्ति का सार है, मोदननामक भाव, जिसमे सब प्रकार के भावों को उत्पन्न कराने की सामर्थ्य है। यह महाभाव स्वरूपा श्री राधा का असाधारण गुण है। इसी कारण श्री राधा के भाव का नाम है– "मादमाख्य महाभाव।"

मधुरारति में भाव और महाभाव उच्चतर और उच्चतम अवस्थाए कहलाती हैं। भाम की चरम सीमा में अनुराग प्राप्त होता है। भाव ही अनुराग का महान आश्रय है। अनुराग के दृष्टान्त में गोपी–प्रेम का उल्लेख किया जा सकता है। उज्ज्वल नीलमणि ग्रन्थ में कहा गया है–"यह महाभाव श्रेष्ठ अमष्त के तुल्य स्वरूप सम्पत्ति धारण करके चित्त को निज स्वरूप प्रदान करता है। पण्डित लोग इस महाभाव के रूढ और अधिरूढ दो भेद बतलाते हैं।

जिस महाभाव में सारे सात्विक भाव दीप्त होते हैं, उसको रूढ भाव कहते हैं। रास–रस निमग्ना गोपियों में स्वरभंग, कम्प, रोमांच, अश्रु, स्तम्भ, वैवर्ण्य, स्वेद तथा मूर्च्छायें आठों सात्विक भाव परिलक्षित होते हैं।

जहाँ रूढभवोक्त अनुभावों से आगे बढकर सात्विक भाव किसी विशिष्ट दशा को प्राप्त होते हैं, उसको अधिरूढ भाव कहते हैं। अधिरूढ महाभाव "मादन"और "मोदन" भेद से दो प्रकार का होता है। "चैतन्य चरितामष्त" ग्रन्थ मे लिखा है–

"प्रेमेर परम सार तार नाम भाव।"[48]

अर्थात् प्रेम का जो परम निर्यास है, उसी का नाम भाव है। इस भाव क परम सार को "महाभाव" कहते हैं। महाभाव में ही प्रेम की पराकाष्ठा है। प्रेम के भीतर जितना आश्चर्यमय, अपूर्व, चिन्मय उल्लास तथा उच्छष्वास निहित है,

48. *डॉ0 नरेन्द्र सिंह फौजदार, सूर की भाव साधना, 1989, पृ0 24*

उसका अनिर्वचनीय प्राकठ्य महाभाव में होता है। इसकी सिद्धि केवल राधा मे ही मानी गयी है।

वैष्णव महात्माओं ने भगवद्रस के रूप में रसों का विभाजन करते हुए भाव के पांच भेद किए हैं– शान्ति, प्रीति, सख्य, वासल्य और माधुर्य (प्रियत्व) इन पांच भावों के विकास में पांच रसों का उदय होता है। वे हैं– शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य। यह अनवार्य नहीं है कि इनका क्रम विकास ही हो, पर यह निर्विवाद है कि अगले–अगले रस में पिछले पिछले रस की निष्ठा अवश्य रहती है। जैसे आकाशादि पंचभूतों के गुण अगले अगले भूतों में वर्तमान रहते हैं, वैसे ही इस क्षेत्र में भी रसों की स्थिति होती है। जैसे पृथ्वी में पांचों गणों की स्थिति है, वैसे ही माधुर्य में शान्त दास्यादि के समस्तगुणों – निष्ठा, सेवा, ममता और आत्मसमप्रण की विद्यमानता रहती है। यह स्वरूपतः मनोविकार रूप नहीं, शुद्ध सत्व विशेषरूपा हैं।

भक्ति भाव या रस साहित्यिक और साम्प्रदायिक पक्ष

भक्ति रस : साहित्यिक पक्ष :-

भक्तिभाव है या रस, इस सम्बन्ध में साहित्याचार्यो ने थोड़ा बहुत विवेचत किया है। रस सम्प्रदायाचार्य भरतमुनि ने अपने नाट्य शास्त्र में श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भूत और शान्त रस को ही मान्यता दी है। भक्ति का उल्लेख नहीं किया है। कन्हैयालाल पोहार ने भक्ति को भाव ने मानकर रस माना है। इन्होंने भक्ति को ब्रह्मनन्द का पर्यायवाची मानते हुए कहा है कि श्रृंगार आदि को, जो ब्रह्मनन्द सहोदर माने गये हैं, रस मान लेने पर भक्ति को रस मानने में काई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। उनका दूसरा तक्र यह है कि यदि करूण, भयानक आदि रसों की आस्वादकता का प्रमाण सहृदय है तो भक्ति रस की आस्वादकता का प्रमाण भक्त है। अतः इसे रस मानना चाहिए। भक्ति की स्थापना का श्रेय दण्डी को दिया जाना चाहिए। दण्डी ने सर्वप्रथम "प्रयोलंकार" के विवेचन में कृष्ण के प्रति विदुर के तथा महेश्वर के प्रति रातवर्म

नामक राजा के प्रति प्रकाशन वचनों को प्रस्तुत करते हुए–"भक्तिमात्र समाराध्यः सुप्रीत श्वततोः हरिः" कहकर भक्ति की स्थापना की है। दण्डी ने रस को "रसवद्" अलंकार तथा प्रीति को 'प्रेयः' नामक अलंकार के अन्तर्गत रखा है। उक्त कृष्ण परक प्रीति और शिव–परक प्रीति को प्रेयः अलंकार कहा है। जिस काव्य में न्रियतर अनुभूति का आख्यान या प्रकाशन हो उसे दण्डी प्रेयः कहते हैं। दण्डी ने भक्ति तथा प्रीति को पर्याय के रूप में ग्रहण किया है किन्तु देवता विषयक प्रीति को ही उन्होंने प्रेयः के अन्तर्गत समाविष्ट किया है, दाम्पत्येत्तर अन्य रति रूपों को वे इससे पृथक् रखना उचित समझते थे। इसीलिए उन्होंने श्रंगारी रति से प्रीति की भिन्नता स्थापित करते हुए कहा है–

"पाक्र् प्रीतिद्र्शिता सेयं रतिः श्रृंगारगतां गता।"[49]

इस प्रकार दण्डी ने भक्ति को केवल अलंकार कहा है, वे उसे रस नहीं कह सके। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि दण्डी से पूर्व भरतमुनि के समक्ष भक्ति परक कोई अभिनेय साहित्य नहीं था अतः भक्ति उनकी इस परिगणना मे स्थान प्राप्त नहीं का सकी, उनकी दृष्टि में रस की संख्या केवल आठ है। अतः भरत से हटकर दण्डी भक्ति भाव को रस कहने का साहस नहीं कर सकते थे।

उद्भट ने इसे रसवत् अलंकार से स्पष्टतया अलग करते हुए भावकाव्य के रूप में अलंकार और भाव मात्र को प्रेयस् माना है।

सर्वप्रथक रूद्रट ने भक्ति को व्यापक रूप प्रदान करते हुए प्रेयान् रस के रूप में स्वीकार किया। "प्रेयान् रस" का स्थायी भाव उन्होंने "प्रीति" के स्थान पर "स्नेह" माना है। इसके अन्तर्गत उन्होंने अन्योन्य सुहृदों बीच का नियजि प्रेय या स्नेह (व्यवहार) ही परिगणित किया है। डा0 आनन्द प्रकाश दीक्षित के मतानुसार "कालान्तर में इसी के आधार पर प्रेयस, वात्सल्य, प्रीति आदि कई रसों की स्थापना का प्रयत्न हुआ।"

49. डॉ0 नरेन्द्र सिंह फौजदार, सूर की भाव साधना, 1989, पृ0 25

अभिनव गुप्त से पूव्र तक देवता विषयक रति का "भक्ति रस"या श्रद्धा रस के अन्तर्गत समावेश कर लिया गया था, इस विषय में स्वयं अभिनवगुप्त से ही संकेत मिल जाता है। अभिनव गुप्त ने भक्ति या श्रद्धा को एक पष्थक रस के रूप में स्वीकार नहीं किया अपितु शानतरस के संचारियों में अन्तर्भूत करके दिखाया।

भगवद् विषयक रति और श्रद्धाको अभिनव ने अलग रस रूप मे इस कारण स्वीकार नहीं किया क्योंकि इन दोनों ही भावों का समोवेश स्मषति, मति, घषति या उत्साह मेंहो जाता है और शान्त के अंगभूत हो जाते हैं। अतः उनके अनुसार भक्ति शान्त रस में ही अन्तर्भूत हो जाती है।

भक्ति के सम्बन्ध में काव्य शास्त्रीय मान्यता कहां तक संगत है, इस पर विचार करने से पूर्व वैष्णव आचार्यो द्वारा प्रतिपादित साम्प्रदायिक पक्षपर दृष्टिपात करना अपेक्षित है।

भक्ति रस : साम्प्रदायिक पक्ष

भक्ति को रस कोटि तक पहुँचाने में साम्प्रदायिक आचार्यों और भक्त कवियों का विशिष्ट योगदान है। साम्प्रदायिक दृष्टि में भक्ति, मधुर रस है। उदाहरण स्वरूप हरिदासी या निम्बार्क सम्प्रदाय की रस चेतना ली जा सकती है। साम्प्रदायिक भक्ति आचार्यो ने राधा कृष्ण के राम–मिलन को रस कहा है।

धर्म प्रधान देश भारत में भक्ति रस की स्वीकृति आश्चर्यजनक नहीं है, किन्तु भारतीय इतिहास के मध्यकालीन कृष्णभक्ति साहित्य में भक्ति–रस का प्रतिपादन अनेक भक्तिग्रन्थों में किया गया। श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भागवतगीता, भगवद्भक्ति चन्द्रिका, शाण्डिल्य भक्ति सूत्र, नारद–भक्ति–सूत्र जैसे धार्मिक ग्रन्थों और हरिभक्ति रसामष्त सिंधु, उज्ज्वल नीलमणि, भगवद्भक्ति रसायन तथा अलंकार कौस्तुभ आदि शास्त्रीय ग्रन्थों में

भक्ति की रस की संज्ञा दी है। डा0 प्रेम स्वरूप का भी कहना है कि – "प्राचीन आचार्यो ने साम्प्रदायिक भक्तों ने और आधुनिक विवेचकों ने वैष्णव रस के लिए भक्ति रस शब्द का ही प्रयोग किया है।

नारद ने भक्ति की व्याख्या करते समय उसे "परम प्रेम रूपा" बतलाया है और फिर "अमृत स्वरूपा" भी कहा है, जिससे प्रकट होता है कि प्रेमी भक्त एवं प्रेमास्पद भगवान् का नित्य एवं अविचल संयोग ही उसका परम ध्येय है। वे प्रेमस्वरूप को मूकास्वादनवत् एवं अनिर्वचनीय भी कहते हैं। शाण्डिल्य ने भी भक्ति को ईश्वर में "परानुरक्ति" अथवा "सर्वोत्तम एवं गंभीर अनुराग की संज्ञा दी है।

बंगाल के चैतन्य सम्प्रदाय के आचार्य रूप गोस्वामी और जीव गास्वामी ने भक्ति को सभी प्रकार से रागानुगा रूप देकर रस सिद्धान्त की भाषा में भक्ति सिद्धान्तों का विवेचन प्रस्तुत किया। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का मत है कि– "भक्ति रसामष्त सिन्धु के रचयिता ने भक्ति रस के अन्तर्गत अनेक रसों का समावेश शास्त्रीय ढंग से करने के यत्न किये और उन्हें क्रमशः मधुररस में परिणत किया।

भगवद्भक्ति –चन्द्रिका के रसोल्लास में भक्ति की रस में स्थापना हुई है और कहा गया है कि अनासंग की जननी पर अपर के बोध के विपरीत सामरस्य की उपस्थितिकारिणी तथा परम प्रेम रूपा परमानन्द दायिनी मधुराभक्ति भक्तों के द्वारा पराभक्ति कहलाती है –

परत्रानासंगं जनमति रतिर्यानियमतः
परस्यिन्नेवास्मिन सूरस तथापश्यतिइमम,
परप्रेमाढयेयं भवति परमानन्द मधुरा,
पराभक्तिः प्रोक्ता रस इति रसास्वादन चणैः।।[50]

50. *डॉ0 नरेन्द्र सिंह फौजदार, सूर की भाव साधना, 1989, पृ0 27*

साम्प्रदायिक चेतना से अनुप्रेरित मधुसूदन सरस्वती ने भक्ति को ब्रह्मनन्द रूप कहा है। तो रूप गोस्वामी ने समाधिजन्य ब्रह्मनन्द को परमाणु के तुल्य भी नहीं माना है। उनकी दृष्टि में रसानुभाव ब्रह्मनन्द से उत्कष्ट है, इसलिए उपनिषद वचनों में उसे "पुच्छ" का स्थान दिया है और प्रीति को "सिर" का। रूप गोस्वामी ने भक्ति की यह असाधारण गौरव इसलिए दिया है, क्योंकि द्रवीभूत चित्त द्वारा विभु,नित्य, पूर्ण, ज्ञान और सुख स्वरूप भगवान् को ग्रहण कर लेने पर कुछ भी शेष नहीं रह जाता। उस स्थिति में इस ब्रह्माण्ड के सभी स्पृहणीय प्राप्तव्यों की समुपलब्धि संभव है। उन्होंने भक्ति को रस रूप में प्रतिष्ठित कर इसे मोक्ष, ज्ञान और वैराग्य आदि से श्रेष्ठ बताया है। भक्ति प्राप्त व्यक्ति मोक्ष की कामना ही नहीं करता।

श्री मधुसूदन सरस्वती का मत है कि शान्त, दास्य, वात्सल्यादि रसों में पूर्ण सुख का संस्पर्श नहीं रहता जबकि भक्तिरस में पूर्ण सुख की अनुभूति होती है। यही कारण है कि अन्य रस इसके सम्मुख हीन प्रतीत होते हैं तथा अन्य रस इसके समक्ष सूर्य के सम्मुख खघोत से जान पड़ते हैं। इनके मतानुसार भक्ति रस में अन्य रसों की स्थिति संचारिभाव के ही समान है।

भक्ति योग स्वयं नव रस मिश्रित होता है और अन्य रसों के समान विभाव, अनुभाव, संचारी भाव के संयोग से रति रूप स्थायी भाव रस दशा को प्राप्त होता है। यहां देवादि विषयक "रति" स्थायी भाव मानी गई है, किन्तु–"आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्ति रूतमा" के अनुसार श्री कृष्ण के अनुकूल होकर यह आनन्ददायिनी "रति" भक्ति रस का रूप धारण कर लेती है। रति स्वतन्त्र, पूर्ण एवं उभरा हुआ भाव है, जिसमें विरूद्ध या अविरूद्ध सभी भाव उसके पोषक बनते हैं अर्थात् हास्यादि सात भाव स्थायी कृष्णरति के संचारी भावों के स्थान पर है।

रूप गोस्वामी ने भक्ति रस के दो प्रधान भेदों का उल्लेख किया है– मुख्य और गौण। इनमें मुख्य रस के 5 प्रकार हैं– शान्त, प्रीति, प्रेयान्, वत्सल और मधुर। गौण के सात प्रकार माने गये हैं– हास्य, अद्भुत वीर, करूण, रौद्र, भयानक, एवं वीभत्स। मुख्य और गौण रसों में अन्तर रस के स्थायी भाव रति की स्थिति की दृष्टि से माना गया है।

रूप गोस्वामी के अनुसार कृष्ण रति स्थायी भाव है, प्रभु कृष्ण इसके आलम्बन हैं; तुलसी तथा चन्दन आदि पूजा सामग्री उद्दीपन है। हर्ष के आंसू तथा नेत्र विकार आदि अनुभाव है। संपूर्ण सृष्टि प्रसार प्रभुमय है। परमानन्द रूप प्रभु ही स्वयं रस के रूप में सिद्ध होने वाले हैं, उन्हीं का प्रतिबिम्ब भक्तों के अन्तःकरण पर पड़ता है, अतः भगवद्कारता नामक स्थायी भी प्रभु रूप ही है और आलम्बन तो प्रभु हैं ही।

चैतन्य महाप्रभु ने भी मधुर– भक्ति–रस का आलम्बन श्री कृष्ण को माना है। उनके मतानुसार आलम्बन स्वरूप श्री कृष्ण की प्राप्ति के अनेक साधन हैं, जिस साधन के द्वारा साधक को आनन्दानुभव होता है,उसके लिए वही उत्तम है, परन्तु निष्पक्ष विचार से साधको के भाव में भेद प्रतीत होता है। किन्तु मधुर रस के प्रेम मे भाव– रसों के सारे गुण एवं भावों के अन्तर्भूत हो जाने से भाव भेद नहीं रहता क्योंकि श्रीकृष्ण की आल्हादिनी शक्ति में जो सार अंश है, वह है मधुर प्रेम। यह प्रेम आनन्द चिन्मय रस है। इसका परम सार महाभाव है। चैतन्य ने वात्सल्य रस प्रधान मधुर रस में शान्त एवं दास्य को भी अन्तर्भूत माना है।

रूप गोस्वामी का तो यहां तक कहना है कि भक्ति जैसे अनुभव सिद्ध तथा सहस्त्रगुणा आनन्द देने वाले रस को रस न मानना जड़वत अपलाप करना हैं।

इस प्रकार इन गोस्वामी आचार्यों की दृष्टि में "रस" मुख्यतः भक्ति रस ही है। भक्ति काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों में श्रीमद्भागवत को भी रस कहा गया हैं।

भागवत् में भगवद्भक्ति रस की स्थिति होने के कारण "रस" कहा है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि श्रीमद्भागवत "रसैकमय" है अतः उसे "रस" कहना उपयुक्त है। यह रस "भागवत" अर्थात् "भगवद्भक्ति" से सम्बन्धित है। इतना ही नहीं, जीव गोस्वामी के कथ्नानुसार तैत्तिरीय के "रसो व सः" इत्यादि भगवान् के लिए प्रयुक्त रस शब्द मात्र औपचारिक ही प्रतीत होते हैं। इनकी दृष्टि मे भगवान् को भक्तिमय होने के कारण "रस" कहा गया है।

भक्ति में भगवान् की आनन्दमयी शक्ति का विस्फुरण होता है। शक्ति और शक्तिं मान् में अभिन्न सम्बन्ध होता है अतः भगवान् भी रस रूप है। रस को प्राप्त करके ह ीवह आनन्दमय होते हैं अतः "भक्तिरस" आत्मस्वरूप बोध एवं ब्रह्मनन्द से भी श्रेष्ठ है। इस प्रकार कतिपय भक्त आचार्यों ने भक्ति को रति का एक रूप स्वीकार न करके एक स्वतंत्र रस घोषित किया, किन्तु भक्ति को एक स्वतंत्र रस न मानकर इसे भाव के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए, इस सम्बन्ध मे विद्वानों के तक्र दृष्टव्य हैं।

भक्ति भाव साहित्यिक पक्ष :-

आचार्य भरतमुनि ने रसों के विभिन्न भेदों का उल्लेख करते हुए आठ रसो का परिचय दिया है, ये रस हैं– श्रृंगार, रौद्र, वीर, वीभत्स, हास्य, करूण, अद्भुत और भयानक। शान्त रस का उल्लेख इस ग्रन्थ में नहीं है। रस प्रकरण में इन्होने भावों की संज्ञा 49 मानी है–8स्थायी– 33 संचारी भाव, और 8 सात्विक भाव। भरत ने भाव की परिभाषा में कवि के मानसिक आवेगों को ही "भाव" संज्ञा से अभिहित किया है। अतः भक्ति भी मानसिक आवेग से सम्बन्ध होने के कारण भाव ही कही जानी चाहिए इसे रस की श्रेणी में रखना उपयुक्त नहीं। इसके पश्चात दण्डी ने भी इन्हीं आठ रसों का विवेचन किया किन्तु उद्भट ने शान्तरस को मिलाकर नौ रसों का उल्लेख किया है। इनके परवर्ती

आचार्य रूद्रट ने भरत मान्य आठ रसों के साथ शान्त और "प्रेयान्" को रस मानते हुए रस संख्या दस गिनायी है।

आचार्य अभिनव गुप्त ने केवल नौ ही रस स्वीकार किए हैं और शेष को भाव के अन्तर्गत समाविष्ट माना है। परिणामतः भक्ति भी भाव के ही अन्तर्गत स्वीकार की गई है। अभिनवगुप्त ने भक्ति को घृति, मति, स्मृति तथा उत्साह में अन्तर्भूत मानते हुए उसे शान्त के अन्तर्गत स्वीकार किया है। इसी प्रकार धनंजय ने भी भक्ति को "भाव" मात्र मानकर उसको हर्ष उत्साह आदि में अन्तर्भुक्त माना है।

भोज ने नाटकों के नायकों के आधार पर प्रेयान्, शान्त, उदात्त और उद्धत के साथ स्वातंत्रय, आनन्द, प्रशय, पारूष्य साघस्व, विलास, अनुराग तथा संगम रसों का उल्लेख करते हुए भक्ति रस को स्वीकार नहीं किया है। भोज के अनुसार रस तत्वतः एक है, वह है "अंहकार तत्व" जिसका नाम है श्रृंगार। इस प्रकार एक ही रस श्रंगार है यदि विभावादि से परिपुष्ट होने पर संचारी भावों को रस कहा जा सकता है तो उनचास रस कहे जा सकते हैं। मम्मट ने रस ध्वनि और भावध्वनि का अलग–अलग विवेचन करते हुए देवादिविषयक रति को भाव माना है। इनके मतानुसार देवादिविषयक रति आदि स्थायी भावों की वर्णना और व्यभिचारी भावों की स्वतंत्र अभिवयंजना मे "भावध्वनि" कही जाती है। इसी बात को विश्वनाथ ने स्पष्ट करते हुए कहा है– जब संचारियों का वर्णन किसी स्थायी का सहायक न होकर स्वतंत्र तथा प्रधान होता है, देवादिविषयक रति तथा उद्‌बुद्ध मात्र स्थायी भाव वर्णन "भाव" मात्र कहलाता है। रसास्वादन में विभाव, अनुभाव और संचारी भाव से परिपुष्ट स्थायी भाव उद्रेक के सौंदर्य को प्राप्त करता है।

पंडितराज जगन्नाथ शान्त रस में भक्ति का अन्भर्भाव नहीं मानते। वह भक्ति के आधार अनुराग तथा शानत का वैराग्य होने से दोनों में भेद उपस्थित

करते हैं किन्तु उन्होंने श्रृंगारेत्तर रति को भाव माना है। उनका तक्र है कि यदि देवादिविषयक रति को स्थायीभाव मानना आरम्भ कर दिया जायेगा तो फिर पुत्रादिविषयक रति को मानने के लिये भी लोग आग्रह करेंगे।इससे उन्हें शंका है कि यदि किसी ने यह भी कह दिया कि जुगुप्सा तथा शोक को आप स्थायी भाव न मानें तो परम्परा भंग के कारण बड़ा वितण्डा उपस्थित हो जावेगा। अतएव अच्छा यह है कि अन्तर समझ कर भी मौन रहा जाय। पण्डिराज का कहना उचित ही है, वे साहित्य में प्रचलित नव रसों के नव स्थायी भावों को मान्यता प्रदान करते हैं किन्तु इष्टदेव विषयक रति को भाव मानने में भी उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। भाव गीति में भी इसे भाव की अभिव्यक्ति मिली है। रति के विभिन्न रूपों के आधार पर विभिन्न भाव रूपों को स्वीकृति मिली है। मानव रति विषयक रचनाओं में विरह और मिलन के भाव रहते अतः इन्हें श्रृंगारिक गीति कहते हैं, वात्सल्य प्रधान रचनाओं में बाल रति कहते हैं,इनका आध्यात्मिक संयोजन भक्ति का मूल तत्व है, जिसके दास्य, सख्य, वत्सल और मधुरादि भेदों की कल्पना होती है। अतः भाव गीति के दो व्यापक वर्ग हुए– लौकिक और आध्यात्मिक।

पण्डितराज जगन्नाथ ने भक्ति को सिद्धान्ततः भाव रूप ही स्वीकार किया है, किन्तु उन्होंने इसे स्थायी भाव के रूप में नहीं माना है, जो रस कहा जा सके। भक्ति भाव को स्थायी भाव के रूप में स्वीकार न करने के विषय में उनके तक्र दृष्टव्य हैं–

(1) यद्यपि भक्ति रस दुरपहन है तथापि उसकी सहृदयता का क्षेत्र संकुचित है, भक्त–रस के भोक्ता कतिपय भगवद्भक्त ही होते हैं।

(2) कान्ता–विषयक रति को भरत एवं मम्मट ने स्थायी भाव के रूप में स्वीकार किया है तथा अन्य रतियों को भाव रूप में ही स्वीकृति दी है, अतः भक्ति भी भाव की श्रेणी में रखी जा सकती है रस कोटि में नहीं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि काव्य शास्त्रियों ने भक्ति को रस न मानकर भाव कोटि में रखा है।

भक्ति के सम्बन्ध में साहित्यिक पक्ष कहां तक संगत है, इस पर विचार करने से पूर्व आधुनिक काल के विद्वान आलोचकों की मान्यताओं पर एक दृष्टि डालनी होगी।

आधुनिक आलोचकों की भक्ति भाव विषयक धारणाएँ

आधुनिक काल में कतिपय मराठी लेखकों ने पण्डितराज जगन्नाथ को परम्परा का अनुसरण करते हुए भक्ति को रस मानने वालों का विरोध किया है। श्री रंगाचार्य रेड्डी का मत है कि "रति भाव विस्तारात्मक है, अतः उसी से राष्ट्र, शास्त्र, देवता, गुरू तथा राजा आदि के विषय में भक्ति का विकास होता है। किन्तु एक ही स्थायी भाव से कई रस मानना शास्त्र मर्यादा का अतिक्रमण करना जान पड़ता है। दूसरी बात यह है कि केवल भक्ति का वर्णन करने से भक्ति रस नहीं माना जा सकता। रस के लिए तो विभावादि की योजना होनी चाहिए, चरित्र का वर्णन होना चाहिए, केवल भक्ति मार्ग अपनाना ही भक्ति रस नहीं कहा जा सकता। यदि यही बात है तो राष्ट्र प्रेम आदि को भी इसी प्रकार भक्ति रस मानना पड़ जायेगा।

भक्ति रस का विरोध करने वाले कतिपयय विद्वानों ते भक्ति रस का दूसरे रसों में अन्तर्भाव माना है। प्रो0 मा0 दा0 अल्टेकर भक्ति को श्रृंगार में अन्तर्मुक्त मानते हैं तो प्रोवि0 पराजपे शान्त के अन्तर्गत95 और बा0 ना0 देशपाण्डे रहस्वादी कविताओं की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए उसे अद्भुत रस में अन्तर्मुक्त मानते हैं। प्रो0 द0 सी0 पंगु का आरोप है कि निर्जीव मुर्ति के प्रति निवेदन होने के कारण वह रस के समान उत्कट नहीं हो सकता , अतएव उसे भाव ही मानना चाहिए।

डा0 मुंशीराम शर्मा के मतानुसार परमात्मा से भाव और भावसे तप रूप ज्ञान तथा कर्म प्रकट होते हैं, जो पीछे नाम–रूपतामक जगत में परिणित हो जाते हैं। विलीनीकरण में यह क्रम विपरीत हो जाता है। नाम तथा रूप भाव में और भाव परमात्मा में लय को प्राप्त होते हैं। भक्त भी इसी प्रकार अपनी चित्तवृत्तियों को नामरूप के सहारे भाव में फिर भाव के सहारे परमात्मा में लीन कर देता है। भक्ति योग इसी भाव पद्धति का दूसरा नाम है। बल्लभाचार्य जी ने भी विशुद्ध प्रेम को शुद्ध पुष्टि कहा है। यह विशुद्ध प्रेम भाव स्वरूप होता है। आचार्य के मतानुसार भाव को सिद्ध करने का एक मात्र साधन उसका भावना सस्नेह क्रियात्मक चिन्तन हैं। अन्य किसी भी साधन से उस भाव प्रेम की सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। इसीलिए बल्लभमत में परमदेव श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिए गोपीजनों की प्रेम भावना वाली सेवा को प्रस्तुत किया है।

डा0 ब्रजेश्वर वर्मा ने भक्ति को भाव मानते हुए भक्ति की व्यापकता और उसके भेदों पर प्रकाश डालते हुए कहा है–"भाव –भेद के अनुसार इष्टदेव की भावमूर्ति के विविध रूप तथा उसके साथ भक्त के अनेक प्रकार के सम्बन्ध हो सकते हैं। मनुष्य के भावलोक के प्रधानतया दो विभाग किए जा सकते हैं। एक प्रकार के भाव अनुराग अथवा आसक्ति मूलक है और दूसरे प्रकार के उत्तेजक।" इन्होंने अनुरागमूलक भाव को "रति" की संज्ञा प्रदान की है। और रति को विभिन्न मानवीय सम्बन्धों का आधार मानकर भक्ति– भाव के "वात्सल्य","सख्य" और "मधुर" भेद बताएं हैं। डा0 चन्द्रभान रावत ने भक्ति साधना को मनुष्य की रागात्मक वृत्ति से सम्बद्ध निरूपित करते हुए कहा है कि "भावनाएं मानवीय सम्बन्धों के मूल में रहती है। इन्हीं भावों के उदात्त रूप आध्यात्मिक सम्बन्धों की योजना करते है। प्रेम एक मूल भाव है, जो विविध रूपों से प्रस्फुटित होकर विविध सम्बन्धों को संभव बनाता है। इसके वात्सल्य सख्य, दास्य, माधुर्य आदि रूप हैं।

भक्ति के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भक्ति मानव मन की भावभूमियों और प्रतिक्रियाओं का सम्प्रक्त रूप है इसी कारण वह लोक व्यापी है। भक्ति और लोक के सम्बन्ध के विषय में डा0 सत्येन्द की मान्यता है कि भक्ति तत्व लौकिक तत्व है। इसका विकास लोक तत्वों से समन्बित होकर सम्पन्न हुआ है। भक्ति के मनोवैज्ञानिक स्वरूप पर ध्यान दिया जाए तो विदित होगा , कि इसमें एक ओर तो रागतत्व की तन्मयकारिणी या तादात्म्य कारक वृत्ति होती है, दूसरी ओर इसके साथ मूल अनुष्ठानिक भावना होती है। मानसिक तन्मयता शक्ति और आत्मनिवेदना शक्ति भक्ति के दो महत्वपूर्ण आधार हैं, इन दानों का ही सम्बन्ध मानसिक भावों से है, यह भाव प्रेम लक्षणा भक्ति के रूप में प्रस्फुटित होते हैं। यही प्रेम भाव भक्त और भगवान् के भावातमक सम्बन्धों की सुदृढ मिति है। डा0 रामकुमार खण्डेलवाल का मत है" प्रेमाभक्ति अपने संतोष और सुख के लिएनहीं होती, उसका भाव है प्रेमास्पद का सुख, प्रेम और भक्ति इष्ट के साथ अनेक भावात्मक सम्बन्धों के रूप में व्यक्त होती है। अनेक आसक्तियों के आधार पर इन्हीं भावात्मक सम्बन्धों को नवधा भक्ति के रूप में स्पष्ट किया गया है।" डा0 राममूर्ति त्रिपाठी की स्पष्ट मान्यता है "साहित्य के क्षेत्र में "भक्ति" एक "भाव" के रूप में ही स्वीकृत है।

वस्तुतः भक्ति भाव ही है, रस नही। यह ऐसा भाव है जिसकी सहायता से किसी अलौकिक या अद्वितीय प्रेमास्पद के साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध स्थापित होते हैं। गतिशीलता इसका प्रधान गुण है। गतिशीलता के कारण भक्ति भाव उत्तरोत्तर विकसित होकर हलादिनी, "संधिनी", संवित् शक्ति का रूप ग्रहण करते हैं। भाव का यह विकसित रूप ही प्रेम संज्ञा से अभिहित किया जाता है, इसे ही महाभाव, मादन या मोदन कहा जाता है। इसी भाव से चित्त को निज स्वरूप प्राप्त होता है। हरिराय जी के मतानुसार भी मूलतः भावात्मक है।

सूरदास मंत्र द्रष्टा हैं। कृष्ण इष्ट हैं, किन्तु राम और कृष्ण में समन्वय स्थापित करने का संकल्प भी पूर्णता से दिखता है। अभेदोपासना इसकी प्रामाणिकता सिद्ध करता है।

अध्याय-7

सूर के राम काव्य का भाव पक्ष एवं कला पक्ष

राम काव्य का भावपक्ष

सूर हिन्दी साहित्य में भावना के भंडार है। भावनाये मानवी सम्बन्धों के मूल में रहती है। इन्ही भावनाओ के उदात्तरूप अनेक वृत्तियों की योजना करते है। इसमे आघ्यात्मिकता भी एक है। चित्त के सवेंगो को भाव कहते है। मानव जब जन्म लेता है उस समय से ही उसको चारो तरफ का वातावरण उसे प्रभावित करने लगता है। जैसे–जैसे वह बढता है। उसे अनेक अनुभूतियां होती है। क्रिया और प्रतिक्रिया के फल स्वरूप उसक चित्त मे अनेक भावनाये उठती है। मानव मन की यह स्वाभाविक प्रवृति है। कि वह अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करने के आकुल रहता है। यह व्याकुलता प्राणि जगत में सर्वाधिक स्पष्ट रूप में मानव में ही पायी जाती है। अपनी अनुभूतियों को व्यक्त कर पाने की तीव्रता ही कलाकार को जन्म देती है।

कोई भाषा का माघ्यम लेकर अपनी बात को, कोई रंग और तूलिका और कोई छेनी और हथौडी के माघ्यम से अपने आपको अभिव्यक्त करता है। अभिव्यक्त के और भी अनेक प्रकार है। मानव मन की प्रवृत्तियों को सरलता से परिभषित नही किया जा सकता जटिलता उसका गुण है। विचित्रता और विविधता भी उसमे है। भाव को ठीक–ठीक तथा एक ही प्रकार से सभी मानव व्यक्त नही कर सकते।

सूर का हदय अत्यन्तभाव प्रवल था, तथा कठं अत्यन्त मधुर इसलिए उनकी अभिव्यक्ति संगीत एवं काव्य के रूप में अत्यन्त स्वाभाविक रूप में हुई।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भावों की व्याख्या इस प्रकार की है। 'नाना विषयों के बोध का विधान होने पर ही उनसे सम्बन्ध रखने वाली इच्छा से, अनेक रूपता के अनुसार, अनुभूति के वे भिन्न–भिन्न योग संधटित होते हैं, जो भाव या मनोविकार कहलाते है। अतः हम कह सकते है। कि सुख या दुख की

मूल अनुभूति ही विषयभेद के अनुसार, प्रेम, हास, उत्साह, आश्चर्यक्रोघ भय करूणा घृणा आदि मोह विकारो का जटिल रूप धारण करती है।

शुक्ल जी ने बोध के विधान 'पर बल दिया है।बोध से भाव का अनयतम सम्बन्ध है। किसी भी विषय के बीच की जितनी सूक्ष्म सम्वेदना मानव मन में होगी वह भावो को उतनी ही तीव्रता से प्रभावित करेंगी। मनोवैज्ञानिको ने भावों को अनुभूतियों का संघटन और व्यक्ति बाहय जगत के प्रति आंतरिक प्रकिया कहकर इसका समर्थन किया है।

सूरदास की भाव संस्थापन पद्धति की सबसे बडी विशेषता है'उनकी मानव प्रकति सम्बन्धी सूक्ष्म परख। वे यद्यपि दृष्टि से हीन थे ,तथापि उन्होने मानव मन का गहनतम अनुशीलन किया था। वे मन के सूक्ष्मतम विकारों तथा सवेदनाओं से अत्यन्त परिचित थे। आश्चर्य होता है जब वे एक–एक भावनाओ का चित्रण करते चलते है। जब तक वे अभिव्यक्ति के चरम प्रकर्ष पर नही पहुचते उनका कवि ह्रदय, तृप्ति ही नही प्राप्त करता। सूर के भाव विधान की परिणति परम सात्विक आन्नद रस के प्रागण में होती है।

भारतीय आचार्यो ने रस को काव्य की आत्मा माना है। सहृदयों की चित्त वृत्तियों मे अन्नत रूप से परिव्याप्त रहने वाले सस्कारों को ही भाव की सेवा प्रदान की गयी है। उनका मत है कि यह मानवीय संस्कार ही अनुकूल परिस्थितियों मे प्रबुध्द होकर रस अथवा आनन्द के रूप में अभिव्यक्ति होते रहते है। इन भावो को उदीप्त करने वाले मनोविकारेा को विभाव कहा जाता है। विभाव को भी आचार्यो ने दो भागों में विभाजित किया है। (1) आलम्बन विभाव (2) उददीनपन विभाव। (3) आलम्बन विभाव स्थायी भाव को अंकुरित करता है और उददीपन उसे पल्लवित करता है। अनुभवों के साथ इन दोनो विभावो का पूर्ण सहचर्य रहा करता है। स्थायी भाव के साथ कुछ भाव और संचरित अथवा तरगित होते है, आवार्यगण इसे स,चारी या व्याभिचारी भाव कहते है। काव्य

शास्त्रमें आनन्द या हर्ष को संचारी के रूप में ही रख गया है, क्योकि यह संचरित अवस्था में ही रहता है, अभिव्यक्ति मे इसकी प्रबलता स्थायी नही है। यह शोकदि भावो की तरह सहदय को रसदशा में नही पहुचता।

स्थायी भाव

श्री आनन्द प्रकाश दीक्षित ने अपनी पुस्तक रससिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण, में लिखा हैः हदय में वासना रूप में संस्थित, अन्य भावो द्वारा किसी प्रकार भी न दबने वाले प्रधान, विरोधी–अविरोधी भावो को अंतहित करके आत्म–भाव प्राप्त करा सकने वाले चिरकाल अथवा आप्रबधं स्थायी रहने वाले आस्वाद योग्य मनो–भावो को स्थायी भी कहते है। अपने नाट्यशास्त्र में आचार्य भरत मुनि ने कहा है। जिस प्रकार मनुष्यो में नृपति और शिष्यों में गुरू की प्रतिष्ठा की जाती है उसी प्रकार सभी भावो मे स्थायी भाव श्रेष्ठ होते है। किसी भी रस के परिपाक मे स्थायी भावो का महत्व पूर्ण स्थान है, बल्कि यह कहा जा सकता है कि रस परिपाक स्थायी भावों के बिना हो ही नही सकता।

भारतीय आचार्यो में सर्व स्वीकृत नौ स्थायी भाव हैं यथा–रति शोक, निर्वेद (शम) क्रोध उत्साह, विस्मय हास ,भय और घृणा। इन्ही के आधार पर साहित्यमें नौ रस माने गये है श्रृंगार, करूण, शान्त, रौद्रवीर, अद्भुत, हास्य, भयानक और वीभत्स। आचार्य विश्वनाथ ने वात्सल्य को भी स्थायी भाव माना है और वे दसवें वात्सल्य रस की भी स्थापना हुई है। सूर के काव्य। वात्सल्य रस प्रचुरता से है।

संचारी भाव

स्थायी भाव को तीव्र करने वाले तथा इन्ही के साथ उत्पन्न होने वाले, तरगित होने वाले और विलुप्त होने वाले, भावों को संचारी भाव कहा जाता है।

इसकी कोई निश्चत संख्या नही है। साधारणतः संचारी भाव तैंतीस माने गये है। यथा–

हर्ष, आवेश, चपलता, निर्वेद, ग्लानि, शंका, मद, असूया, श्रम, आलस्य, दैन्य, चिन्ता, मोह, स्मृति, धृति, क्रीडा, जडता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, अमर्ष, अवहित्था, अपस्मार, निद्रा, सुप्ति, विवोध, उग्रता, वितक्र, मति, त्रास, व्याधि, उन्माद और मरण। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा अन्य कुछ विद्वान अन्य अनेक अन्तर्भावों को संचारी भाव के रूप में प्रस्तुत करते है और यह सही भी है क्योकि संचारी भावों की संख्या को निश्चित नहीं किया जा सकता– उदासीनता क्षोभ असंतोष अनिश्चय। घबराहट सकपकाहट चकाचौंध नैराश्य विस्मृति इत्यादि अनेक संचारी भाव है।

सात्विक भाव

सात्विक भाव आठ माने गये हैं यथा–रोमांच, स्वरभंग, स्वेद, स्तम्भ, वैवर्ण्य, अश्रु तथा प्रलाप। आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है–''सात्विक भाव एक प्रकार से संचारियों से श्रेष्ठ है क्योंकि वे आन्तर होते हैं। इनका रसों से विशेषकर श्रृंगार रस से घनिष्ठ सम्बन्ध हैं इसलिए इन्हें भाव ही कहना चाहिए।''

महात्मा सूरदास जन्म से भक्त माने गये हैं। भक्ति–साधना मनुष्य की रागात्मक वृत्ति से संबद्ध है। कुछ विद्वान सभी भावनाओं से भक्ति –भाव को उर्ध्व स्तर का मानते हैं। शांत रस और भक्ति भावना दोनों सहचर हैं परन्तु पंडित राज जगन्नाथ ने अपनी पुस्तक 'रसगंगाधर' में भक्ति का अन्तर्भाव शांतरस में स्वीकार नही किया हैं। इनका कहना है कि शांतरस का स्थायी भाव निर्वेद है और भक्ति भावना ईश्वर अनुरक्ति के बिना नहीं हो सकती। अनुराग और निर्वेद एक दूसरे के विपरीत भाव हैं। भक्ति मे रति है और निर्वेद में विरति। अन्य विद्वान पंडितराज से सहमत नही हैं।

भक्ति को भाव कहा जाता है परन्तु कुछ विद्वान इसे रस की श्रेणी में रखते हैं। हमें इस विवाद से कोई मतलब नहीं है और यह विषय महत्वपूर्ण भी नही हैं।

प्रेम एक मूल भाव है जो विविध रूपों में उपस्थित होता है। बिना प्रेम के भक्ति भाव भी संभव नहीं है। भक्ति के वात्सल्य, सख्य, दास्य, माधुर्य आदि अनेक रूप है।

सूरदास को सांसारिक जीवन की व्यर्थता और उद्देश्य हीनता का अनुभव प्रारम्भ से हो गया था और वे सांसारिकता से विरक्त हो गये थे इसी के फलस्वरूप उनके हृदय में भक्तिभाव का उदय हुआ। उन्होनें अपने आस–पास के लोगों को इन्द्रियों का गुलाम लोभ लालच मद और मोह में फॅसे हुए अनेक दैहिक और भौतिक व्याधियो में घिरे कष्ट सहतें सुनां।संतों के समागम से उन्हें यह भी ज्ञात हुआ की भगवान भक्त वत्सल हैं और पतिंतो के उद्धारक हैं अतएव उन्होंने प्रारम्भ में विनय के दों पदों में अपनी दैन्यता का भाव प्रस्तुत किया हैं। उन्हें भगवान की भक्ति वत्सलता पर भी विश्वास है–

रावन अरि कौ अनुज विभीषण ,ताको मिले भरत की नाई।
वकी कपट करि मारन आई,सो हरिजू बैकुठं पठाई।।[1]

वे अपने बहाने मानव मात्र को समझाते है कि अच्छे कर्म करने से ही अच्छा फल प्राप्त होगा। बबूल का वृक्ष लगााने वालों को अंगूर के फल प्राप्त नहीं हो सकते –

अब कैसे पैयत सुख मांगे।
– – – –
पिछले कर्म सम्हारत नाहीं, करत नहीं कुछ आगे।
बोवत बबुर, दाख फल चाहत, जीवन हैं फल आगे।।[2]

---

1. *श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 75*
2. *श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 75*

कवि कई बार आत्म ग्लानि से भर उठता है और अपने को कोसता है कि 'जन्म साहिबी करते'– चापलूसी करते बीत रहा है। सूरदास लेकिन हताश कहीं नहीं दिखते।

डॉ0 ब्रजेश्वर वर्मा ने अपने ग्रन्थ सूरदास में लिखा है कि "पतितपावन हरि की कृपालुता उसके दैन्य को चमत्कृत कर देती है। हरि की करूणा की असीमता और अपने आदर्श रूप में कल्पित असंख्य पापों की तीव्र अनुभूति ने कवि को अपने हृदय को चूर–चूर करके भगवान के चरणों में अप्रित करने का अवसर दिया है। वस्तुतः विनय के पदों में व्यक्त सूरदास की दीनता उनके स्वभाव का अन्यतम लक्षण है , जिसे उन्होंने अनेक पौराणिक एवं स्वकल्पित आख्यानों के संदर्भों में विविध सहयोगी भावों के साथ चित्रित किया है। कृपालुता के अतिरिक्त अपने भगवान के अन्य अनेक गुणों से आत्मीयतापूर्ण परिचय हो जाने के बाद सूरदास का भावलोक भले जगमगा उठा और उनकी दीनता ऊपर से बहुत कम दिखाई दी पर वस्तुतः वह भावों के अन्तराल में निरनतर विद्यमान रहती है और तनिक से आधात से दबे हुए स्रोत की भांति उच्छल गति से फूट पड़ती है।"

सूरदास कहीं–कहीं भगवान के बहुत समीप होकर उनसे आत्मीयता की बात करने लगते हैं और भगवान की भक्त वत्सलता पर पूर्ण विश्वास करके कवि का दैन्य भाव हलकीं सी धृष्ठता में बदल जाता है।

आगे चलकर कवि भगवान से व्यंग विनोद करने लगता है, परन्तु इन ब्याजोक्तियों में कवि का दैन्य भज्ञव अन्तर्निहित है। फिर भी इस प्रकार के व्यवहार के कारण दैन्यभाव के प्रकाशन में भावना का विस्तार और चमत्कार आ गया है।

सूर के राम काव्य के अन्य स्फुट पदों में ही दैन्य भाव है जहां वे धारा प्रवाह रामावतार की कथा नवत स्कन्ध के पद 459 से आरम्भ करते हैं वहाँ

दैन्यता नहीं है। दैन्य भाव मन को संकुचित करता है। पूरे राम काव्य में मन को उत्सासित करने वाली भावना ही विद्यमान है।

वात्सल्य

राम काव्य का प्रारम्भ ही वात्सल्य से होता है। वात्सल्य भाव में सुख और आनन्द है। महाराज दशरथ के आँगन में भीड़ लगी हुई है। लोग हर्ष विभोर होकर एक दूसरे का आलिंगन कर रहे हैं । अत्यन्त उत्साह की स्थिति है। महाराज दशरथ सभी याचकों को इतना धन देते हैं कि वे सब निहाल हो उठे हैं। देवतागण इस हर्षोत्साह में सम्मिलित हैं और विमान से यह दृश्य देख–देख कर विभोर हो रहे हैं। भू भार उतारने के लिए भगवान ने जन्म ले लिया है।

राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुध्न चारो भाइयों का छोटे बालकों के रूप में नन्हीं–नन्हीं धनुहियाँ सहित कनकमय आँगन में खेलने का दृश्य भी वात्सल्य का अनुपम उदाहरण है।

जैसा कि हमने पूर्व में बताया है, पाश्चात्य विद्वानों ने पितृ भावना को भी वात्सल्यता के अन्तर्गत माना है। महाराज दशरथ राम वनवास का वर कैकेयी को देने के बाद अधीर हो जाते हैं। सूरदास ने उनकी अधीरता का वर्णन बड़े प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है–

रघुनाथ पियारे आजु रहौ (हो)
चारि जाम विश्राम हमार, छिन–छिन मीठे बचन कहौ (हो)।
वथ्था होहु बर बचन हमारो, कैकइ जीव कलेस सहौ (हो)।।[3]

दशरथ जी अपने दिये गये वचन तक को वृभा करने को तैयार है, राम लक्ष्मण के प्रति अपनी वात्सल्य भावना के कारण। अन्त में राम जब वन की

3. *श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 77*

ओर चले ही जाते हैं, तब दशरथ अपने को रोक नहीं पाते और अत्यन्त भावुक होकर वे, अपने पुत्रों को वन जाते हुए देखने के लिए ऊंची अटारी पर चढ जाते हैं–

'ऊँचे चढि दशरथ लोचन भरि सुत –मुख देखे लेत'।

माता कौशल्या का वात्सल्य भी कवि ने बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। महाराज दशरथ पुत्र वियोग में प्राण त्याग देते हैं। माता कौशल्या विलाप करती हैं इस अवसर पर भी उनका वात्सल्य जागृत है। वे महाराज के मरण पर सूने सिंहा–सन की ओर लोगों का ध्यान दिलाकर कहती है कि कोई दौड़े और राम को रोक ले।

रामहि राखौ कोई जाई।
जब लग भरत अयोध्या आवै कहत कौशल्या माई।।[4]

जब लक्ष्मण को शक्ति लगने का समाचार, हनुमान जी, अयोध्या में, देते हैं माता कौशल्या और सुमित्रा विलाप करने लगती हैं।

त कारन लक्षिमन सर लाग्यो, भये राम बिन भ्रात।
यह सुनि कौशल्या सिर ढोरूयौ सबनि पुहुमितन जोयो।
त्राहि–त्राहि कहि पुत्र–पुत्र कहि मातु सुमित्रा रोयो।[5]

सुमित्रा केवल विलाप ही नहीं करती, उन्हें अपने पुत्र पर गर्व होता है वे कहती हैं–

धन्य सुपुत्र पिता–मन राख्यों, धनि सुबधू कुल– लाज।
सेवक धन्य अन्त अवसर जो आवै प्रभु के काज।।[6]

---

4. *श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 77*
5. *श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 77*
6. *श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 77*

सुमित्रा माता को गर्व है कि उनका पुत्र लक्ष्मण अपने स्वामी (बड़े भाई) राम के काम आ गया। वात्सल्य का यह विलक्षण उदाहरण है। इससे भी एक कदम आगे कौशल्या के वात्सल्य का चित्रण महाकवि ने किया है। कौशल्या कहती हैं–

सुनो कपि कौशिल्या की बात।
इहिं पुर जनि आवहिं मम वत्सल, बिनु लछिमन लघु भ्रात।
– – –

लछिमन सहित कुशल वैदेही, आनि राजपुर की जै।
नातरू सूर सुमित्र– सुत पर वारि अपुनयौ दी जै।[7]

सुमित्रा का वात्सल्य भी कम नहीं पड़ता, वे पुनः बोल पड़ती हैं –

'सेवक जूझि परै रन भीतर ठाकुर तउ घर आवै'।[8]

इस प्रकार सूर ने अपने रामकाव्य में वात्सल्य भावना का अच्छा चित्रण किया है।

राम नाम का महत्व

राम सम्बन्धी जो अन्य स्फुट पद हैं उसमें सूरदास ने रामनाम की महिमा कई स्थानों पर गायी है। वे राम नाम को अद्‌भुत बताते हैं–

'अद्‌भुत राम नाम के अंक'।[9]

उन्होंने रामनाम के निर्घनों का महाधन निरूपित करते हुए कहा है–

हमारे निर्धन के धन राम।
चोर न लेत, घटत नहिं कबहूँ, आवत गाढे काम।
जल नहिं बूड़त, अगिनि न दाहत, है ऐसो हरिनाम।[10]

---

7. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 78
8. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 78
9. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 78
10. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 78

रामनाम ऐसा धन है, जिसे चोर चुरा नहीं सकते, जो कभी घटता नहीं और संकट में हमेशा काम देने वाला। सूरदास को राम नाम पर इतनी आस्था है कि वे कहते हैं– रामनाम की ओट बहुत बड़ी है। राम की शरण में आने पर प्रभु कभी भी अपनी शरण से दूर नहीं करते, अपितु अपनी कृपा भक्तों पर तुरन्त करते हैं। उन्हें यह विश्वास है कि राम का नाम पारस पत्थर की तरह है, जिसके स्पर्श मात्र से लोहे का खोटापन समाप्त हो जाता है और वह स्वर्ण हो जाता है , यथा–

बड़ी है रामनाम की आट।
सरन गये प्रभु काढि देत नहिं करत कष्पा के कोट।
बैठत सबै सभा हरि जू की कौन बड़ौ को छोट।
सूरदास पारस को परसै मिटत लोह की खोट।[11]

इस प्रकार सूरसागर के कई स्थलों में सूरदास के रामनाम की महिमा गायी है।

भ्रातृ प्रेम

रामचन्द्र ने अपने भाइयों के प्रति हमेशा स्नेह रखा और भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुध्न ने भी राम के प्रति आदर और प्रेम की भावना रखी है, सूरदास ने अनेक स्थलों पर ऐसा दर्शाया है।

बालकपन में चारों भाई एक साथ खेलते थे। महाकवि ने बड़ा प्यारा रूपक बांधा है–

'मानौ चारि हंस सरवर तें बैठे आइ सदेहियां'।[12]

चारों भाई सदेह चार हंस की तरह एक ही सरोवर में बैठे हैं। इसी प्रकार–

---

11. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 78
12. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 79

'चारों वीर संग इक सोभित, वचन मनोहर बोलत'।

महाराज ने जब राम को वनवास की आज्ञा दी , तब लक्ष्मण जी भी साथ ही वन जाने को तैयार हो गये। राम ने अपने भाई लक्ष्मण को कहा कि तुम व्यर्थ वन मत जाओ। वे कहते हैं–

'तुम लछिमन निज पुरहिं सिधारो'।[13]

इस पर लक्ष्मण का भ्रातृ–भाव इतना उमड़ पड़ा कि उनके मुँह से एक भी शब्द नहीं निकला।

सूरदास ने गाया है–

लछिमन नैन नीर भरि आए।
उत्तम कहत कछू नहीं आयो, रहे चरन लपटाए।
अंतर जामी प्रीति जानि के, लछिमन लीन्हें साथ।।[14]

भरत जी ने जब सुना कि उनकी माता कैकेयी ने उनके लिए राजगद्दी तथा राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास महाराज दशरथ से मांग लिया है, तब वे भ्रातृ– प्रेम से विव्हल हो उठते हैं। वे अत्यन्त दीनता से अपनी माँ कैकेयी को कहते हैं।

आए भरत दीन है बोले, कहा कियो कैइ भाइ?
हमस सेवक वे त्रिभुवनपति, कत स्वान सिंह– बलि खाइ?[15]

भरत को अपने भाई राम से इतना अधिक स्नेह था कि वे भाई की तुलना में अपनी माँ को भी भला बुरा कहते हैं।

मो अपराधी के हित कारन, ते रामहि बनवास दियो।
कौन काज यह राज हमारे, यह पावक परि कौन जियो।।[16]

---

13. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 79
14. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 80
15. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 80
16. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 80

भरत जी राम को अयोध्या में न देखकर व्याकुल हो उठते हैं। उन्हे सारा वातावरण राम के बिना सूना–सूना लगता है। भाई के प्रति इनका प्रेम कवि ने बड़े अनूठे ढंग से चित्रित किया है। भरत अपनी माता को धिक्कारने लगते हैं। और यहां तक कह देते है कि भाई राम के बिना, अयोध्या से मेरा कोई नाता नहीं है–

राम जू कहां गये री माता।
सूनो भवन, सिंहासन सूनौ, नाहीं दशरथ ताता।
धृग तब जन्म, जियन धषा तेरो, कहीं कपट मुख बाता।[17]

– – –

मुख अरिविन्द देखि हम जीवत, ज्यों चकोर ससि राता।
सूरदास श्रीरामचन्द्र बिनु, कहा अयोध्या नाता।।

राम का भी अपने भाई से उतना ही प्रगाढ प्रेम भाव है। चित्रकुट में जब वे भरत का मुंडित सीस देखते हैं, तो बिलख उठते हैं, और दौड़कर भरत को गले से लगाकर विलाप करने लगते हैं–

भ्रात –मुख निरखि राम बिलखाने।
मुण्डित केस–सीस विहवल दोउ, उमंगि कंठ लपटाने।।[18]

लंका कांड में जब लक्ष्मण को शक्ति लगती है, और लक्ष्मण भूमि में अचेत पड़े रहते हैं तब अपने भाई लक्ष्मण के लिए, राम को जिस प्रकार बिलखते दिखाया गया है, वह राम के भ्रातृ प्रेम का अनुपम उदाहरण है। कहाकवि ने कहा है–

'निरखि मुख राघव धरत न धीर'।[19]

---

17. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 80
18. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 80
19. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 80

राम विलाप करते हुए कहते हैं कि अब मै किसका मुह देखा करुगा ? वे हनुमान जी से यहां तक कह देते हैं कि यदि लक्ष्मण जी की मूर्छा दूर नहीं हुईतो अपना प्राण भी छोड देंगें और यह सुनकर जानकी भी मष्त्यु का आलिंगन कर लेंगी।

'मैं निज प्राण तजौंगो सुनि कपि तजिहिं जानकी सुनिकै'।[20]

अपने भाई लक्ष्मण के प्रेम में राम इतने व्याकुल हो उठते हैं कि महाकवि ने इस समय की स्थिति में राम को अनाथ तक कहदिया है वे अनाथ की सी स्थिति में हनुमान जी को पुकारते हैं–

'है अनाथ रघुनाथ पुकारे संकट मित्र हमारे'।[21]

वे हनुमान जी को सम्बोधित कर कहते हैं।

कह्यो तब हनुमत सों रघुराई।
दौनागिरी पर आहि सजीवन वैद सुषेन बताई।
तुरन्त जाइ ले आई उहां ते बिलम्ब न करियो भी।[22]

सूर के राम काव्य में भातृभाव के कई ऐस प्रसंग हैं जिनका अनुकरण परवर्ती कवियों ने किया है।

संयोग पक्ष

नायक नायिका के परस्पर मधुर भाव से दर्शन स्पर्शन कथोपकथन क्रीडा आलिंगन परिरम्भन इत्यादि अनेक भाव इसके अंतर्गत आते हैं। कंकण–मोचन के समय का यह पद देखिये–

कर कंपै कंकन नहिं छूटे।
राम–सिया कर परस मगन भये कौतुक निरखि सखी सुख लूटे।।[23]

---

20. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 81
21. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 81
22. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 81
23. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 88

यह चित्रण कितना पुलकित करने वाला है।

वियोग पक्ष

सीता हरण के बाद राम व्याकुल हैं–

''रघुपति कहि प्रिय नाम पुकारत'' वे सीता का नाम ले–लेकर चारों ओर पुकारते हैं। वे इतने विव्हल हो गये हैं कि लता–वृक्षों से भी सीता का पता पूछते हैं–

फिरत प्रभु पूछत वन–द्रुम–बेली।[24]

सीता अशोक वन में राक्षसियों से घिरी बैठी हैं। राम के वियोग में उनका हृदय जल रहा है। वे सहानुभूति रखने वाली एक मात्र राक्षसी त्रिजटी से कहती हैं–

सो दिन त्रिजटी कहु कब ऐहै ?
जो दिन चरन–कमल रघुपति के हरषि जानकी हृदय लगै है।[25]

सीता जी हनुमान को संबोधित कर राम को उलहना देती हैं–

सुनकपि रघुनाथ वै नाही?
जिन रघुनाथ पिनाक पिता–गृह तोरे यो निमिष माहीं।[26]

सीता आशंका करने लगती हैं कि कहीं राम ने वैराग्य तो नही ले लिया। उन्हें ऐसा लगता है कि वे उनकीर याद भूल गये हैं।

कै रघुनाथ तज्यौ प्रन अपनो जोगिन दसा गही।
कै रघुनाथ अतुल बल राक्षस दशकंधर डरहीं।।[27]

---

24. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 88
25. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 88
26. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 88
27. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 88

वियोगावस्था में ही अनुराग में उत्कृष्टता प्रगट होती है। उपरोक्त उदाहरण इसी बेचैनी को दर्शाता है।

वियोग श्रृगांर में ही अभिलाषा चिंता स्मरण गुणकथन उद्वेग उन्माद व्याधि प्रताप जडता और मरण सभी भाव के चित्र रामकाव्य में हैं।

रामकाव्य का कला पक्ष

पश्चिमी विद्वान काव्य को 'कला' मानते हैं। ड्राइडन के अनुसार –'कविता शब्द चित्र है तो चित्र मूक कविता'टालस्टाय, क्रोचे, हेगिल सभी काव्य को कला मानते हैं।

भारतीय परम्परा में काव्य को कलाओं में नहीं माना गया है। कला के अंतर्गत–संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला के अतिरिक्त पुस्तक बांधना और सूक–सारिका पढ़ाना जैसे साधारण कौशलयुक्त कार्यों की गणना की गयी है। कामशास्त्र में जिन चौंसठ कलाओं का वर्णन है उसमें 'काव्य–समस्या पूर्ति को अवश्य कला माना गया है परन्तु 'काव्य की मूल संरचना' एक अलग शिल्प है। हमारे यहां पूर्ति काव्य का क्षेत्र कला से उच्च बताया गया है। आचार्य भामह ने कला की विशेषता 'विचक्षणता ' को माना है– वैवक्षण्यं कलासु च'। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं– 'कलाओं के संबंध में जिनका लक्षण केवल सौन्दर्य की अनुभूति उत्पन्न करना है,यह मत कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता है। इसी से चौंसठ कलाओं का उल्लेख हमारे यहां काम–शास्त्र के भीतर हुआ है। पर काव्य की गिनती कलाओं में नहीं की गयी है। '

वैसे देखा जाये तो काव्य और कला दोनों सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति ही हैं। रसाननद दोनों में है। कौन किसके अंतर्गत आता है यह प्रश्न महत्वहीन है। काव्य– शिल्प है और इसके उपकरण शब्द और अर्थ हैं। व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'श्ल्प'शब्द 'शिला' से सम्बंधित है। 'शिला 'को अपनी भावना, हस्त कौशल और

कल्पना के आधार पर काट–छांट कर शिल्प का स्वरूप दिया है। यह शिल्प अंग्रेजी के 'क्राफट के समतुल्य चीज है।

कवि धर्म के विषय में आचार्य शुक्ल ने लिखा है– ''कवि–धर्म में कल्पना की बहुत आवश्यकता होती है, पर यह कल्पना विशेष प्रकार की होती है। उसकी क्रिया कवि की भावुकता के अनुरूप होती है। कवि अपनी भावुकता की दृष्टि के लिए ही कल्पना को रूप विधान में प्रवृत्त करता है। जब भाव की उमंग ही कल्पना को प्रेरित करती है तब कवि का मूल गुण भावुकता अर्थात अनुभूति की तीव्रता है। कल्पना उसकी सहयोगिनी है। पर ऐसी सहयोगिनी है जिसके बिना कवि अपनी अनुभूति को दूसरे तक पहुंचा ही नहीं सकता। अनुभूति को दूसरे तक पहुंचाना ही कवि धर्म है। अतः हम कह सकते हैं कि कल्पना और भावुकता कवि के लिए दोनों अनिवार्य हैं। भावुक जन कल्पना–सम्पन्न और भाषा पर अधिकार रखने वाला होता है, तभी कवि होता है।"

कल्पना कवि के अन्तर्मन में उत्पन्न होती है। अन्तर्मन का संयोग आनंद का संयोग है। अन्तर्मन की विराटता और संयोग की यह उदात्त स्थिति सहज कवि को जन्म देती है, उनकी भाषा भी उतनी ही सहज होती है। आनंदवर्धन कहते हैं "काव्य की वह अर्थ वस्तु और उसे व्यक्त करने वाला शब्द"कोई ही हीती है। महाकवियों को इन शब्दार्थो की पहिचान प्रयत्न पूर्वक करनी चाहिये।"

इस तरह कवि की रचना–प्रक्रिया में अंतर्मन और भाव जब परस्पर प्रत्यक्ष हो जाते हैं तब उसकी भाषा का उदय होता है। कवि की सर्जना में भाषा की इस अपरिहार्य स्थिति से फिर वही चिरंतन प्रश्न उपस्थित होता है। काव्य की रचना में भाषा का क्या स्थान है? काव्य का "जीवित" क्या है? भाषा का वैशिष्ट्य या अर्थ का वैशिष्ट्य?

जयशंकर त्रिपाठी अपनी पुस्तक "कवि का रचना व्यापार और साहित्यशास्त्र" में कहते है, संस्कृत काव्य शास्त्र के चिंतन के प्रथम एक हजार वर्ष की अवधि में चार बार भाषा वादियों ने अपने क्रान्तिकारी पक्ष प्रस्तुत किये हैं– (1) "सौशब्द्य" को काव्य मानने वाले आचार्यो का सम्प्रदाय, दंडी के "काव्यादर्श" में इनका संकेत और भामह के "काव्यालंकार" में स्पष्ट उल्लेख मिलता है। यह काव्य के अस्तित्व की मूल स्थिति थी। (2) दूसरी क्रांति तब हुई जब दंडी (4 थी शती ई0) ने गुण को काव्य का प्राण बताया। (3)वामन (8 वीं शती ई0) ने इन गुणों से विशिष्ट–पद की रचना–रीति को काव्य की आत्मा कहा (रीति रात्मा काव्यस्य) तथा (4)कुंतक (11वीं शती ई0) ने गुण– रीति से आगे बढकर भाषा की शक्ति को अधिक गहराई से पहिचाना और उन्होंने भाषा की उस शक्ति को लक्ष किया जो हठात् मनोहर अर्थ को अपने मे समाहित कर लेती है। भाषा की इस शक्ति का उदय कवि के व्यापार अर्थात उसकी सज्रना में होता है, अतः काव्य क्या है, इसके उत्तर मे कुंतक ने कहा कि कवि व्यापार की मनोहर (वक्र) सर्जना में शब्द और अर्थ की सम्मिलित आल्हादकारिणी स्थिति काव्य है। अर्थात क्रोधित काव्य का जीवित है। कारिका में 'वक्र कवि व्यापार शालिनि' कह देने के बाद "तद्–विदाल्हादकारिणी" विशेषण की आवश्यकता नहीं थी, वक्र कवि व्यापार तो इस वैशिष्ट्य के साथ प्रवष्त्त ही होगा, एकान्त आल्लाद ही सर्जना की प्रेरणा है। कुतंक ने दूसरे विशेषण का प्रयोग कर पुनरूक्ति की है, किन्तु उनकी यह पुनरूक्ति कवि की सर्जना में उसके पाठक के अस्तित्व की ओर इंगित करती है। पाठक इस बात का प्रमाण है कि वह भाषा के वैशिष्ट्य पर आकर्षित होता है।"–

भाषा

सूर ने अपनी भाषा को "भाषा" ही कहा है। इसका "ब्रजभाषा" नाम उस समय तक नहीं उभरा था। सूर के पूर्व कवि चंदबरदायी ने इस भाषा का प्रयोग अपने ग्रंथ "पृथ्वीराज रासो" में किया था। यद्यपि रासो की भाषा प्रारंभिक

अवस्था के कारण उतनी मंजी हुई नहीं है। इसके बाद गोरखबानी की भाषा में ब्रजभाषा का प्रथम रूप मिलता है। कबीर के पदों में भी ब्रजभाषा के क्रियापदों की बहुलता है। परन्तु कबीर की भाषा सधुक्कड़ी भाषा के रूप में ही प्रतिष्ठित है।

सूर ने अपने आस–पास में प्रचलित बोली में ही पद–रचना की। ऐसा प्रतीत होता है कि उनका आग्रह यह नहीं था कि वे अपने पद किस विशेष भाषा में रचें। यह तो संयोग ही है कि उस समय प्रचिलित भाषा का सूर के पदों में प्रयुक्त होने से, संस्कार हो गया, और वह ब्रजभाषा के रूप में मान्य हुई। सूर की ब्रजभाषा का एक उदाहरण देखिये–

अयोध्या बाजति आजु बधाई।
गर्भ मुच्यो कौसिल्या माता, रामचन्द्र निधि आई।
गावें सखी परसपर मंगल, रिषि अभिषेक कराई।
भीर भई दशरथ के आंगन, सामवेद धुनि छाई।
पूछत रिषिहिं अजोध्या को पति, कहियै जनम गुसाई।[28]

डॉ0 मनमोहन गौतम ने सूर की ब्रजभाषा का विवेचन करते हुए लिखा है– "सूर के पूर्व ब्रजभाषा काव्य की कोई स्थिर परम्परा नहीं बनी थी। या तो ब्रजभाषा में काव्य रचना हुई ही न थी, और यदि हुई भी तो इतनी नगण्य कि वह एकदम कालकवलित हो गयी। सरदास जी को ही सौभाग्य प्राप्त हुआ कि वे ब्रजभाषा में सर्वप्रथम प्रचुर साहित्य का निर्माण करें। उनकी भाषा में साधारण लोकगीत से लेकर चमत्कार–प्रधान दृष्टकूट–पद रचना तक की विविधता मिलती है। इसलिए उन्हें ब्रजभाषा का वाल्मीकि कहना सर्वथा उचित ही है। सूरदास जी ने ब्रजभाषा को जो स्वरूप दिया वह स्थिर रूप से परवर्ती साहित्कारों द्वारा ग्रहण किया गया।"

28. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 102

सूर के रामकाव्य की भाषा भी ब्रजभाषा ही है। इसमें संस्कृत के तद्भाव शब्द और तत्सम शब्दों की भरमार है। जहां तक विदेशी शब्दों के प्रयोग का प्रश्न है। इसके इक्के–दुक्के प्रयोग ही मिलते हैं, और वह भी भाषा की व्यंजकता और उसके अर्थ–वैभव की वषद्धि करने के लिए ही प्रयुक्त किये गये हैं।

तद्भव शब्द

सूर के तद्भव शब्द संस्कुत के शब्दों को श्रुतिमधुर तथा सरल करके बनाये गये प्रतीत होते हैं।

जैसे "आंगन" (प्रांगण) असीस (आर्शीवाद) चिरजीवी (चिरंजीव) परसे (स्पर्श) अनत (अन्यत्र) दही (दधि) महतारी (मातष) भाषा में प्रसादत्व की अभिवृद्धि हुई है। देशजशब्द जामातनि (दामाद) मैन (मोम) त्रिया–चरित्र, हंकारा,ढरकाए, करतूति, पठवो, ढिग, चलावत बात, इत्यादि इस प्रकार के शब्दों के प्रयोग से जहां पदों में गति और प्रवाह आया है वहीं बात को समझने में भी श्रोताओं को सरलता होती है। इस प्रकार के शब्द सहज ही सूर के पदों में आते चले गये हैं।

विदेशी शब्द

सूरदास तो नेत्र विहीन थे, अतएव उन्होंने किन्हीं प्रकार के ग्रंथों का अध्ययन तो किया ही नहीं। वे केवल बोलचाल की भाषा में आने वाले विदेशी शब्दों को ही ग्रहण कर पाये। रामकाव्य में विदेशी शब्द अत्यन्त ही कम है और जो हैं भी उसे भी उन्होंने अपने उच्चारण की चाशनी में डुबाकर प्रयोग में लाया है जैसे "सिय अंदेस जानि सूरज प्रभु, लियो करन की कोर" इसमें "अंदेस" शब्द फारसी के "अंदेशा" शब्द से सूर ने स्वयं बनाया है, जिसका अर्थ "संदेह" होता

है। इसी प्रकार "सूर दरबान कह्यो जाई टरी" में "दरबान" शब्द फारसी का है परन्तु इसका प्रयोग कितना सहज है।

"कुछ "अरबी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है जैसे–"न्हात–खात सुख करत साहबी" अथवा "यह रूक्का पहुंचाऊ" एक नया प्रयोग सूरदास का देखिये वे दृष्टि हीन थे। परन्तु आकाश की उपमा इन्होंने "कागज" से दी है– "नभ कागज ज्यौ फारौं" इसमें "साहबी" "रूक्का" तथा "कागज" अरबी शब्द हैं।

तत्सम् शब्द

सूरदास ने बहुतायत से संस्कृत के तत्सम् शब्दों का प्रयोग अपने पदों में किया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि उनका काव्य परम ब्रह्म की लीला का वर्णन है, जिसका आधार ही संस्कृत के ग्रंथ हैं तथा जिसमें स्थान–स्थान पर सिद्धान्त निरूपण भी करना पड़ा है। इसके अतिरिक्त संस्कृत काव्य परम्परा के अनुरूप आप्रस्तुत योजना में भी तत्सम् शब्दो के बिना काम नहीं चल सकता। विनय के पदों में भी तत्सम् शब्दों का प्रयोग है यथा –

"राम भक्तवत्सल निज बानों"।
"अर्थ, धर्म अरू काम मोक्ष फल चारि पदारथ देत गनी"।।[29]

इन पंक्तियों के शब्द भक्तवत्सल अर्थ, धर्म, मोक्ष और सभी तत्सम् शब्द हैं। आप्रस्तुत योजना में उपमानों की आवश्यकता होती है और इसमें संस्कृत काव्य की परम्पराओं का ही प्रायः निर्वाह होने के कारण संस्कृत के तत्सम् शब्दों का प्रयोग आवश्यक हो गया है। "मुख अरविंद देखि हम जीवत ज्यों चकोर ससि राता" "इन्दुबदन राजीव– नैन बर" इत्यादि।

29. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 103

मुहावरे और लोकोक्तियाँ

सूर ने अपने पदों को और अधिक गाह्य बनाने की दृष्टि से मुहावरों और लोकोंक्तियों का भी प्रचुरता से प्रयोग किया है यद्यपि उन्होंने कहीं भी इन्हें ठूंसने का प्रयास नहीं किया है। हां कहीं कहीं उक्ति वैचित्रय के लिए भी इनका उपयोग किया है। मुहावरों के उदाहरण देखिये –

"ये भू भार उतारन कारन प्रगटे स्याम सरीर"
"भयें निहाल सूर सब जाचक"
कैसे नाथहिं मुख दिखराऊं जौ बिनु देखे जाऊं।
वानर बीर हंसेगे मोकों, तै बौर्‌यो पितृ नाऊं।
" फिरी रघुबीर दुहाई" "प्रिया वियोग फिरत मारे मन"
"सूरदास रावन कुलखोवन सोवत सिंह जगायौ"
"जनक सुता चरन बंदि, फूल्यौ न समाई"।[30]

लोकोक्ति देखिये–"सो समतुल कन्या किन उपजी, जोकुल सत्रु न मार्‌यौ" इसी प्रकार मुहाबरों और लोकोक्तियों का उपयोग रामकाव्य में आवश्यकतानुसार सहज होता गया है।

उक्ति वैचित्रय के रूप में एक उदाहरण दष्ष्टव्य है। मंदोदरी रावण को समझाती है कि राम ने आज लंका को घेर रखा है, उठ और आंख खोलकर देख। मैने तो समझाने के लिए "कोटिजतन" किये परन्तु तूने मेरी सीख नहीं मानी–

गहगहात किल किलात, अंधकार आयो।
रवि को रथ सूझत नहिं, धरनि गगन छायो।
पौरिपाट टूटि परे, भागे दरवाना।
लंका में सोर पर्‌यो, अजहूं तै न जाना।[31]

---

30. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 104
31. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 104

वर्ण-योजना

काव्य की सारी रमणीयता भाषा में समाहित है। भाषा सार्थक शब्दों से बनती है और सार्थक शब्द वर्णो से बनते हैं। समुचित वर्णो के प्रयोग से शब्दों का सौन्दर्य निखरता है। कवि जो भाव अपने शब्दों से प्रस्तुत करता है उसका माध्यम सुन्दर वर्ण ही होते हैं। सूर ने इस तथ्य को समझा है क्योंकि उनके पदों में हमें कुशल वर्ण– योजना एवं वर्ण–संगीत के दर्शन होते हैं। वर्ण–ध्वनि केवल आकर्षण या चमत्कार ही पैदा नहीं करती, अर्थ को रसमय भी बनाती है। वर्ण–मैत्री कर्ण मधुर होती है और अर्थ को मूर्तिमान करने में भी इसका बड़ा सहयोग रहता है।

रामकाव्य में वण–संगीत और वर्ण मैत्री के दो–चार दष्श्य देखिए।

वर्ण-संगीत

सूरदास के पदों में तो वर्ण कई स्थानों पर जो संगीत उत्पन्न करते हैं उससे मन मुग्ध हो जाता है। "स" शब्द का संगीत देखिये कितना चुटीला कथन है –

"सासु की सौत, सुहागिनि सौ सखि, अतिही पिय की प्यारी"[32]

कंकण मोचन प्रसंग की पहिली ही पंक्ति पूरी पांच शब्दों में कह गयी–

"कर कम्पै कंकन नहिं छूटै"[33]

'न' शब्द का उपयोग देखिये–

"राजिव नैन, मैन की मूरति, सैननि दियो बताइ"

32. *श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 105*
33. *श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 105*

सीता जी की दयनीय दशा के वर्णन में वर्णो का चमत्कार स्पष्ट है। किस प्रकार एक ही वाक्य में सीता का मलिन रूप आँखों के समक्ष उपस्थित हो जाता है–

"अति कृस, दीन छीन–तन प्रभु बिन, नैननि नीर बहाई"[34]

वर्ण मैत्री

वर्ण मैत्री उसे कहते हैं जब शब्द रचना में समान कोटि के वर्णो को रखकर पदावली में समता लायी जाती है। वर्ण मैत्री में यह आवश्यक नहीं है कि एक ही वर्ण की आवृत्ति शब्दों में हो। इसमें प्रमुख विषय है, वर्णो की योजना की समानता। शब्दों में समान संख्या के वर्ण तथा उनकी रूप–रचना में समानता ही इसका सौन्दर्य है। वर्णन वीभत्स रस का है पर वर्ण मैत्री देखिये–

कहुं भुज, कहुं धर, कहुं सिर लोटत, मानो मद–मतवारौ।
भभकत, तरफत, स्रोनित में तन, नाहीं परत निहारौ।[35]

"त्र" शब्द की मैत्री देखिये–

वीर रस का एक उदाहरण, जिसमें हनुमान राम को अपने बल और सामथ्र्य का भरोसा देना चाहते हैं।

कहौ तो सूरज उगन न देऊ दिसि–दिसि बाढै ताम।
कहौ तो गन समेत ग्रसि खाऊं जमपुर जाई न, राम।
कहौ तो कालहि खंड–खंड करि टूक टूक करि काटौं।
कहौ तो मृत्युहिं मारि डारि के खोदि पतालहि पाटौं।[36]

वर्ण–मैत्री में बिना अनुप्रास के सानुप्रासिक आनंद की उपलब्धि भी होती है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है वर्णो के समुचित प्रयोग से सार्थक शब्ग बनते हैं और सार्थक शब्द भाषा के श्रृंगार हैं। शब्द शक्ति पर भी संक्षिप्त चर्चा आवश्यक है।

---

34. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 105
35. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 105
36. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 105

शब्द शक्तियों का सौष्ठव

भाषा सार्थक शब्दों से ही बनती है। कवि के शब्द–शिल्प तथा उसकी शब्द चयन संबंधी कुशलता से ही उसकी उक्ति में शक्ति आती है। शब्द को भारतीय आचार्यों ने साक्षात् "ब्रह्म" माना है। शब्द शक्ति की विवेचना वस्तुतः सार्थक शब्दों की ही विवेचना होती है, क्योंकि साहित्य में अर्थवान शब्द को ही शब्द कहा गया है। किसी शब्द की अर्थ प्रवृत्ति कितने प्रकार की है अथवा अमुक शब्द, अमुक स्थान पर किस अर्थ में आया है यही शब्द वृत्ति का विषय विस्तार है।

पं0 विश्वनाथ ने साहित्य दप्रण में इसके तीन प्रकार बतायेंहैं

1) अभिधा 2) लक्ष्मण और 3) व्यंजना।

गेय पद शैली

अलंकार–

आचार्य भामह ने सर्व प्रथम काव्य–सौन्दर्य के लिए अलंकार तत्व को आवश्यक बताया था। इसके बाद दंडी, उद्भट, वामत, रूद्रट एवं जयदेव ने भी अपनी मान्यता के अनुसार अपने–अपने ढंग पर यह माना है कि काव्य की शोभा अलंकार है। जयदेव ने तो अपने ग्रन्थ 'चन्द्रलोक' में यहां तक कह दिया है कि 'जो लोग काव्य को अलंकार हीन मानते हैं वे यह भी क्यों नहीं मान लेते कि अग्नि शीतल हो सकती है।" अलंकार वादियों के मतों के अध्ययन से यह अवश्य स्पष्ट होता है कि इन आचार्यो की धारणायें अलग–अलग हैं। परवर्ती हिन्दी आचार्यों में कवि केशव ने कहा है। "भूषण बिन न बिराजहीं कविता, बनिता भिन्न" यही दूसरे आचार्य श्रीपति ने यथापि अलंकार को भी कविता के लिए आवश्यक माना है परन्तु से रस तत्व को प्रमुखता देते हुए कहते हैं–

जदपि दाष बिन गुन सहित,अलंकार सों हीन।
कविता बनिता छबि नहीं, रस तिन तदपि प्रबीन।।[37]

हिन्दी में केशव के अतिरिक्त मतिराम और भूषण शुद्ध अलंकारवादी आचार्य हैं। यदि देखा जावे तो अलेकार केवल बाह्य उपकरण मात्र नहीं हैं ये केवल शब्द कौतुक और चमत्कार के लिए ही कविता के भावों को स्पष्ट सरल, सरस, बोधगम्य तथा रंजक भी बनाती है। अलंकार भाव और भाषा दोनों को अलंकृत करते हैं। सुन्दर बनाते है। यह अवश्य है कि अलंकार, अलंकृत करने का ही कार्य करें भार न बने। व्यर्थ के और आवश्यकता से अधिक अलंकार से लदी–फंदी न तो नारी ही शोभायमान होती है और न कविता ही। अधिक अलंकार कविता को कुरूप ही नहीं बनाते बरन उससे रस–दशा में बाधा भी उत्पन्न होती है। अलंकारों का उचित प्रयोग काव्य के भावों का जहां उत्कर्ष करता है वहीं वह काव्य ही भाषा, रूप, गुण और क्रिया की तीब्रता का साधन भी बनता है।

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी लिखते हैं– 'अलंकार वह निश्चल योजना है जिसके अन्तर्गत काव्य का स्वरूप उसके विविध अंग, अंगों के प्रकरण, प्रकरणों के अन्तर्गत कथा वर्णन, संवाद, और उन सब में व्याप्त एक विशेष उद्देश्य की अभिव्यक्ति सब आ जाते हैं और यह सब पूरी योजना जिन अनेक भाषा के विधानों से पूरी होती है उन सबकी समिष्टि ही अलंकार है।

अलंकार शब्द का काव्य शास्त्र में कितनी महत्वपूर्ण संज्ञा है यह इससे ही जाना जा सकता है कि अकेले यह एक शब्द अपने में भारतीय काव्यशास्त्र का लगभग सम्पूर्ण इतिहास समेटे है। इसका संकेत हमने ऊपर किया है। सूर के महाकाव्य पर हम दृष्टि डालें तों हमें इसमें अलंकारों का सर्वथा उचित प्रयोग ही दिखाई देगा। कोई भी पद अलंकार बोझिल नहीं है। शब्दालंकारों में सर्वाधिक प्रयोग 'अनुप्रास' का किया गया है।

37. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 107

अनुप्रास

अनुप्रास को शब्दालंकारों का सम्राट कहा गया है। अक्षरों के प्रयोग चमत्कार से शब्दसें के सौन्दर्य में वृद्धि होती है। वर्ण मैत्री और साम्य से शब्दों में एक रंजक ध्वनि की सृष्टि होती है। इनकी यह श्रुति मधुरता काव्य को प्रभावशाली बना देती है। जब शब्दों की विशिष्टता के कारण अर्थ में वैभिन्न आ जाता है तब 'लाटानु–प्रास' अलंकार होता है। जब एक ही अक्षर दो शब्दों में आदि, मध्य वा अंत में एक ही क्रम में आते हैं तब ''छेकानुप्रास'' अलंकार कहलाता है। राम काव्य में इस अलंकार का प्रचुरता से प्रयोग किया गया है।

अनुप्रास का उदाहरण प्रस्तुत है यथा–

'सासुकी सोति सुहागिनी सो सखी , अतिही प्रियकी प्यारी'
''पालत, सृजत ,संहारत, सेंतत, अंड अनेक अवधि फल आधै''[38]

ठसमें 'त' शब्द प्रथम चार शब्दों के अंत में आकर एक मनोहर ध्वनि का सृजन कर रहा है।'क' शब्द का चमत्कार देखिये –

'कर कंपे कंकन नहिं छूटै' ये सब वृत्तानुप्रास के उदाहरण हैं।

छंकानुप्रास तो प्रायः पद–पद में भरे पडे हैं जैसे–

''ये भू–भार उतारन कारन प्रगटे स्याम–सरीर''
''रामहिं राखौ कोऊ जाई''
'' जबलगि भरत अयोध्या आवै कहत कौशल्या माई ''[39]

पुनरूक्ति प्रकाश-

एक ही शब्द का दो बार प्रयोग पुनरूक्ति प्रकाश है जैसे –

38. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 112
39. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 113

देस–देस तैं टीकौ आयौ, रतन कनक मनि हीर।
घर–घर मंगल होत बधाई अति पुरवासिनि भीर।।
फोरि–फोरि तोरि–तोरि गगन होथ गाजें।
सूरदास लंका पर चक्र संख बाजें।। ?[40]

अर्थालंकार-

जहाँ अर्थ के कारण चमत्कार उम्पन्न होता है वहां अर्थालंकार होता है। इसमें उपमा, रूपक, सांग, रूपक, अतिशयोक्ति, प्रतीप, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, संदेह आदि अनेक अलंकार आते हैं। संक्षेप में हम कुछ अलंकारों पर चर्चा करेंगे–

उपमा-

उपमा दो शब्दों से बना है। उपमा। 'उप' का अर्थ समीप होता है और 'मा' मापने के अर्थ में आया है। अर्थ हुआ 'पास रखकर मापना'। इसके चार प्रमुख अंग हैं उपमेय, उपमान, साधारण धर्म और वाचक शब्द। जहां ये चारों अंग होते हैं वहां पूणप्रिमा होती है। किी भी एक अंग की अनुपस्थिति में यही लुप्तोपमा हो जाती है। उपमा का उदाहरण देखिये –

'सीस जटा सिव–सम सिर बांधे'। इसमें राम के सिर में बंधी जटा की उपमा शिव की जटा से दी गयी है।

उत्प्रेक्षा-

उत्प्रेक्षा 'शब्द अर्थ होता है विशेष रूप से ऊपर से देखना। मनु , मनहु, जनु, मानी जैसे शब्द इस अलंकार के वाचक हैं। वस्तुतः प्रस्तुत और अप्रस्तुत के भेद को जानते हुए जहां कवि उस विभेद को कम करना चाहता है वहीं उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। रामकाव्य में उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रचुरता सं प्रयोग किया गया है। जैसे –

40. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 113

मानौ पच्छ सुमेरहिं, उड् यो अकासहि जात।

अथवा–

जनु सीतल सौं तप्त सलिल दै सुखित समोई करै।

अथवा–

रघुपति पूरन चन्द्र बिलोकत, मनु पुर–जलधि–तरंग बढी।[41]

अतिशयोक्ति-

सूर कवि जब भाव विभोर होकर पद गाते हैं तब उनकी साधारण अभिव्यक्ति असाधारणता की ओर बढ जाती है। स्वाभावोक्ति को छोडकर जब वर्णनों में अतिशयोक्ति होने लगती है, तब अतिशयोक्ति अलंकार की सषष्टि हो जाती है। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता कि जब कवि प्रस्तुत को इस सीमा तक बढा चढा कर प्रदर्शित करने की चेष्टा करता है कि उपमेय का अस्तित्व ही लुप्त हो जाता है, केवल उपमान द्वारा ही उसका बोध हो पाता है, वहीं अतिशयोक्ति अलंकार जन्म लेता है।

हनुमान जी रामचन्द्र जी से कहते हैं कि यदि आपकी आज्ञा हो तो मै लंका गढ को उखाडकर समुद्र के इस पार ले आता हूँ। अथवा आप कहें तो जंबू द्वीप को ही लंका पहुँचा दूँ।

हौं प्रभु जू आयसु पाऊँ।
अबहीं जाइ उपारि लंक गढ, उदधि पार लै जाऊँ।
अबहीं जम्बू द्वीप इहां तें, लै लंका पहुँचाऊँ।।[42]

नीचे एक उदाहरण और प्रस्तुत कर रहा हूँ। इस अतिशयोक्ति अलंकार युक्त पद में अतिशयोक्ति तो है परन्तु इसकी शालीनता तथा सूर का उचित वैचित्र भी कितना सुन्दर है देखें।

---

41. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 114
42. श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 114

सीता हरण हो जाने के बाद राम सीता को खोज वन में घूम–घूम कर करते हैं। उन्हें पूरी सीता तो कहीं नहीं दिखी परन्तु उन्होनें देखा कि सीता के अंग विभिन्न पशु पक्षियों के चूरा लिए हैं किसी ने सीता की कमर चुरा ली है किसी ने उनकी बोली की मधुरता चुरा ली है तो किसी ने उनके दांतों की आभा चुरा ही है। कवि सूर का यह पद देखिये अतिशयोक्ति का उत्तम उदाहरण है–

कटि केहरि कोकिल कल बानी, ससि मुख–प्रभाधरी।
मृग मूसी नैननि की सोभा, जात न गुप्त करी।
पंचक–बरन , करन–कर , कमलनि, दाडिम दसन लरी।
गति मराल अरू बिम्ब अधर छवि, अहि अनूप कवरी।
अति करूना रघुनाथ गुसाई, जुग ज्यों जाति धरी।[43]

इस प्रकार हम देखते हैं कि पूरे रामकाव्य में यद्यपि आवश्यकतानुसार अलंकारों का यथा प्रसंग प्रयोग किया है परन्तु अलंकारों का प्रयोग कहीं नहीं दिखता। पूरी कथा और प्रसंग सहज ही रचे गये हैं और अलंकार भाव को उद्दीप्त करने के लिए स्वाभाविक कवि कर्म के अन्तर्गत आये हैं।

शब्द शक्ति, गुण, रीति–वृत्ति और अलंकार योजना में सूर ने शील और सुरूचि का पूरा–पूरा ध्यान रखा है।

छन्द नियोजन-

सूर के रामकाव्य के छद नियोजन पर चर्चा करने के पूर्व हमें छन्द क्या है, इसे संक्षेप में समझना चाहिये। पण्डित सीताराम चतुर्वेदी कहते हैं–

"छंदयति आल्हादयति चदि असुन चस्य छंदश्च"[44]

43. *श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 115*
44. *श्रीपति वाजपेयी, 'सूर का राम काव्य' प्रथम संस्करण, 1990, पृ0 115*

जो हृदय को आह्मदित करे या जिससे प्रसादन हो वही छन्द है। अर्थ यह है कि छन्द में प्रसादिकता का गुण हो और उसमें मन को प्रसन्न करने उसका अनुरंजन करने की पूर्ण शक्ति हो। एक विद्वान प्रबोधचन्द्र सेन का कथन है कि " कविता का छन्द एक ध्वनि सम्बंधी कला है , किन्तु इस ध्वनि का संबंध यंत्र से नहीं मनुष्य के कंठ से है"।

'जब हम कुछ कहते हैं या पढते हैं तब हमारी कंठ ध्वनि विराम प्रवाह के रूप मे नहीं बहती रहती है। बल्कि नाना विचित्र भंगियों में बीच–बीच में विरत होती रहती है। केवल बातचीत व गद्य पढ़ने समय नहीं, कविता के छन्द पढ़ते समय भी ध्वनि की गति के समान ही यति भी अत्यन्त आवश्यक है। काव्य छन्दों–निर्माण के समय ध्वनि की इस यति को नाना विचित्र कौशलों से लगाना पड़ता है। इसीलिए हमारी उच्चरित ध्वनि की कला , व्याप्ति प्रखर और यति तीनों ही बातें छन्द शास्त्र की प्रथम और प्रधान बातें"।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छन्द की विवेचना इस प्रकार की है–

छन्द वास्तव में बंधी हुई लय के भिन्न–भिन्न ढाँचों(पैटर्न्स) का योग है, जो निर्दिष्ट लम्बाई का होता है। लय स्वर के चढ़ाव –उतार , स्वर के छोटे–छोटे ढाँचे ही हैं, जो किसी छन्द के चरण के भीतर व्यस्त रहते हैं।

पण्डित रामदहिन मिश्रा ने अपनी पुस्तक काव्यदप्रण में कहा है। –:छन्द ही काव्य का संगीत है। संगीत में जो संयम ताल से आता है, वही संयम कविता में छन्द में आता है। :

डा0राजकुमार दाण्डेय कहते– छन्द शब्द का एक बन्धन या छादन ,भी हुआ करता है,और सच तो यह है कि छन्दलय की गति को उसके अविराम स्वर प्रवाह को समय की सुनिश्चित इकाइयों में बांधकर उसे और भी अधिक प्रेष्णीय बना करता है इसी अनुक्रम में बन्धन शब्द के भ्रम से बचने के लिए यह

कह देना भी असंगत न होगा कि छंद का बन्धन, अपनी लयात्मक सुन्दरता की रक्षा के हेतु स्वीकार किया गया ,वाणी का निजी बन्धन है। यह कोई वाहारोपित अथवा विजातीय बन्धन नहोकर काव्य के स्वेच्छा संभूत आत्मानुशासन का प्रतीक है। इसका सहयोग पाकर अभिव्यत्ति की प्रपजलता किसी प्रकार भी बाधितन नहीं होती प्रत्युत उसमें तादात्म्य स्थापित करनें की नवशक्ति का संचार हो जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि गति यति, लय, और वेग से छन्दो का निर्माण होता है। सूर का राम काव्य गीत काव्य है। इसकी रचना मुख्य रूप से पदों में हुई है। गीत काव्य की परम्परा सामवेद से आरम्भ होती है। सूर की यह गीत शैली उनके पूर्ववर्ती कवि जयदेव, गोवर्धनाचार्य, लीलाशुक, विद्यापति और कबीर के पदों ओंर गीतो से प्रभावित है। सूर के काल में विनय केपदो के गाने की भी परम्परा रही है और भगवान की लीला के पद भीगाये जाते रह हैं निश्चित ही सूर ने भी इन परम्पराओं से प्रेरणा ग्रहण की है छन्द दो प्रकार के होते है (1) मात्रिकछंद (2) वाणिकछन्द

रामकाव्य में मात्रिक छन्द ही है अतएव उसी पर चर्चा की जावेगी।

अध्याय-8

उपसंहार

हिन्दी साहित्य में विभिन्न सूधी ज्ञानियों मनीषियों और भक्तों के द्वारा 'राम' के विविध अर्थ प्रस्तुत किये गये है। कर्म, वैराग्य, ज्ञान, योग, उपासना, प्रपत्रि आदि वेदोक्त शुभ 'साधना समुदाय अपनी–अपनी जगह सत्य है। परन्तु युगधर्म अनुरूप उनका सुविस्तृत विधि विधान से निर्वाह होना दुष्कर है। 'राम नाम' एक ऐसा साधन है। वैष्णव पुराणों में सर्वाधिक लोकप्रिय श्रीमद्भागवत में राम और कृष्ण की अभेद प्रतिपादित कर भगवान के विविध अवतारों में एकत्व स्थापित कर दिया गया है। प्रथम स्कन्ध के तीसरे अध्याय में भगवान के बाईस अवतारों का उल्लेख करते हुए दाशरथिराम को 18वां और श्री कृष्ण को 20वां अवतार कहा गया है।

भागवत में दाशरथिराम के लिए नरदेव अर्थात 'राजा' शब्द का प्रयोग किया गया है और 'राम' शब्द से कृष्ण के बड़े भाई बलराम को सम्बोधित किया गया है। नरदेव के रूप में भगवान के जिन कार्यों का वर्णन है उनसे स्पष्ट हो जाता है कि भागवतकार का संकेत दाशरथिराम की ओर है।

नरदेवत्वमान्नः सुर कार्य चिकीर्षया।
समुद्र निग्रहादीनि चक्रे वीर्याव्यतः परम्।।

(देवताओं का कार्य सफल करने की इच्छा से उन्होंने राजा के रूप में अवतार ग्रहण किया और सेतुवंधन रावणवध आदि वीरतापूर्ण बहुत सी लीलाएं की)

महाकवि सूरदास हिन्दी काव्याकाश के भक्ति–काल की सगुण काव्यधारा के प्रमुख कृष्ण भक्ति कवि है। इन्होंने अपनी रचनाओं में कर्मयोगी, पूर्णज्ञानी आनन्द स्वरूप भगवान विष्णु के अवतार कृष्ण को अनन्त सौन्दर्य प्रतिमूर्ति एवं प्रेम की अधिष्ठात्री देवी ''राधा'' के साथ लोकरंजक तथा लोक रक्षक चित्रित किया है। वे मधुर एवं कोमल भावनाओं के चतुर चितेरे रस के अक्षय स्रोत, आध्यात्मिक प्रेम के प्रवीण पारखी तथा मानव में शाश्वत वृत्तियों के सफल गायक थे।

भारतीय धर्म साधना में अवतारवाद की कल्पना से अभिप्रेरित होकर महाकवि सूर ने राम और कृष्ण में कोई मतभेद नही समझा। राम को अपने ग्रन्थों में मर्यादित एवं आदर्शमय रूप में चित्रित किया है। उनके विचार में,

बड़ी है राम नाम की ओट।
सरन गएँ प्रभु काढ़ि देत नहिं, करत कृपा कौ कोट।।
बैठत सबै सभा परि जू की, कौन बड़ौ को छोट?
सूरदास पारस के परसैं मिटति लोह की खोट।।

अर्थात–श्रीराम नाम का आश्रय सबसे महान् है। शरण में जाने पर प्रभु किसी को निकाल नहीं देते अपितु उसे कृपारुपी दुर्ग में रख लेते है। श्री हरि की सभा मे बैठते हैं, वहां कौन बड़ा और कौन छोटा है। सूरदास जी कहते हैं कि पारस का स्पर्श होने पर लोहे का दोष मिट जाता है। इसी प्रकार भगवान के शरण होने पर जीव के दोष नष्ट हो जाते हैं।

साहित्य में सर्वाधिक जगमगाते हुए रत्नमणि द्वीप के सदृश गोस्वामी तुलसीदास जी है। रामचरितमानस शताब्दियों से जन–जन के जीवन का कंठहार बना हुआ है। किन्तु विकास की कड़ी में सूर, गोस्वामी जी से पन्द्रह वर्ष बड़े होने के कारण पहले पड़ते है। सूरदास जी श्रीमद्भगवद्गीता के आधार पर 'सूर सागर' में राम कथा का गान किया है। काल क्रमानुसार सूर ही भाषा में कबीर के बाद 'राम काव्य' के गायक ठहरते है। श्रीमद्भागवत के नवम् स्कन्ध में राम की कथा कही गयी है। जब बल्लभाचार्य जी के आदेशानुसार सूर ने सूरसागर की रचना की तो अपने ग्रन्थ के नवम् स्कन्ध में राम कथा का वर्णन किया पदो की गये शैली के भावात्मक प्रवाह सूर का भावुक हृदय भी कई स्थानों पर वह गया।

सूर ने 'राम कृष्ण' की मधुर साधना की है। यद्यपि इस साधना में कृष्ण की मधुर साधना की है। राम के दूसरे रूप है अन्य कोई नहीं। सूरसागर में प्रायः 98 (अठ्ठानवे) पद ऐसे है। जिनमें राम चर्चा प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से हुई है। सूर

का राम काव्य आकार दृष्टि से उनके कृष्णकाव्ये से कम अवश्य है। किन्तु उन्हें राम काव्य के कवियों में अग्रणी प्रतिष्ठित रखने की सामर्थ्य रखता है।

हिन्दी साहित्य में विभिन्न सूधी ज्ञानियों मनीषियों और भक्तों के द्वारा 'राम' के विविध अर्थ प्रस्तुत किये गये है। कर्म, वैराग्य, ज्ञान, योग, उपासना, प्रपत्रि आदि वेदोक्त शुभ 'साधना समुदाय अपनी– अपनी जगह सत्य है। परन्तु युगधर्म अनुरूप उनका सुविस्तृत विधि विधान से निर्वाह होना दुष्कर है। 'राम नाम' एक ऐसा साधन है। वैष्णव पुराणों में सर्वाधिक लोकप्रिय श्रीमद्भगवत में राम और कृष्ण की अभेद प्रतिपादित कर भगवान के विविध अवतारों में एकत्व स्थापित कर दिया गया है। प्रथम स्कन्ध के तीसरे अध्याय में भगवान के बाईस अवतारों का उल्लेख करते हुए दाशरशिराम को 18वां और श्रीकृष्ण को 20वां अवतार कहा गया है।

सूर और तुलसी हिन्दी–साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। सूर के आराध्य कृष्ण और तुलसी के आराध्य राम हैं। अपने–अपने आराध्य के प्रति भक्ति–भावना व्यक्त करने के लिए, इन दोनों कवियों ने काव्य का प्रणयन किया है। अपने आराध्य के प्रति विशिष्ट श्रद्धा रखते हुये भी इन कवियों ने अन्य देवों के प्रति भी पूरी निष्ठा रखी है। उसी निष्ठा के रूप में सूर ने राम से सम्बन्धित लगभग ढाई सौ पदों की रचना की है, जो 'सूरसागर' में संकलित हैं। तुलसी ने तो स्वतंत्र रूप से 'कृष्ण गीतावली' और पार्वती मंगल' खण्ड काव्य लिखे हैं।

सूर के कृष्ण–काव्य की तो व्यापक चर्चा हुई है, और उस पर अनेक समीक्षा ग्रन्थ भी लिखे गये हैं, पर उनके राम–काव्य पर समीक्षकों की दृष्टि प्रायः नहीं की गयी, और यही कारण रहा, कि उसकी चर्च नहीं हुई। सूर के रामकाव्य का व्यापक विश्लेषण सूर सागर के नवम् स्कन्ध में किया गया है। सूर के रामकाव्य की मार्मिक स्थलों को गहराई से पहचानना और उसका सही मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है। इसके साथ ही रामकाव्य की परम्परा

में सूर का स्थान निर्धारित करने का प्रयास सफलता से किया गया है। आशा है ये सूर साहित्य जगत में आदृत होगी।

सूरदास नाम के कई कवि हुए हैं। अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि महात्मा सूरदास उनमें एक थे। उनका जन्म कब और कहाँ हुआ? उनके माँ–बाप कौन थे? उन्हें काव्य और संगीत की विधिवत शिक्षा मिली थी अथवा नहीं? वे जन्म से विरक्त थे अथवा कभी घरबारी भी रहे? वे जन्मान्ध थे या बाद में कभी अन्धे हुए? बल्लभाचार्य से उन्होंने कब और कैसे दीक्षा ली? बादशाह अकबर से उनकी भेंट कब और कहाँ हुई? तुलसीदास से उनकी भेंट की बात यथार्थ है अथवा मात्र एक किम्बन्दन्ती? से इस संसार, में कब तक रहे और उनका गोलोकवास कब हुआ? अभी तक इन प्रश्नों का कोई सर्वमान्य उत्तर नहीं मिला है। सम्भवतः, भविष्य में भी न मिले। कारण यह कि उसके लिए प्रचुर मात्रा में जिस प्रामाणिक सामग्री की आवश्यकता होती है, हमारे पास उसका अभाव है।

भारतीय धर्म साधना में अवतारवाद की कल्पना के पश्चात् राम और कृष्ण को प्रायः समान दृष्टि से देखा जाता रहा है। यों तो उपासकों को अपनी भावना के अनुरूप विष्णु के किसी एक अवतार को चुन लेने की पूरी छूट रही किन्तु एक अवतार की उपासना करते हुए दूसरे अवतार के प्रति कभी धृणा नहीं देखी गयी। दक्षिण भारत के आलवारों ने विष्णु के विभिन्न अवतारों में कोई भेद नहीं किया। राम और कृष्ण ने उन्हें विशेष रूप से आकृष्ट किया।

रामानुज के आविर्भाव के पश्चात् उपासना के क्षेत्र में जब राम को विशिष्ट स्थान प्राप्त होने लगा और उनके पश्चात् रामानन्द ने उसे चरम उत्कर्ष पर पहुँचा दिया, तब राम और कृष्ण दोनों समान रूप से महत्वपूर्ण हो गये। रामानन्द की शिष्य परम्परा में तुलसी और आचार्य बल्लभ की शिष्य परम्परा में सूर का आविर्भाव हुआ था। उक्त दोनो महाकवियों ने क्रमशः राम और कृष्ण को जन–जन तक पहुँचाने का कार्य किया। सूर मुख्यतः कृष्ण के उपासक थे किन्तु

राम के प्रति उनके हृदय में प्रगाढ श्रद्धा थी। इसी प्रकार तुलसी राम के उपासक होते हुए कृष्ण के प्रति समान भाव से श्रद्धावनत थे। फलतः सूर ने 'रामकाव्य' और तुलसी ने 'कृष्ण गीतावली' के नाम से पृथक कृष्ण काव्य की रचना की।

हरि हरि हरि हरि सुमिरन करौ।
हरि चरनारबिंद उर धरौ।।
जय अरु विजय पारषद दोई
ब्रिप सराप असुर भए सोइ।।
एक बराह रूप धरि मार्‌यौ।
एक नरसिंह रूप संहार्‌यौ।।
रावन कुंभकरन सोइ भए।
राम जनम तिनकै हित लए।।
दसरथ नृपनि अजोध्या राव।
ताकै गृह कौ आविर्भाव।।
नृप सौ ज्यौ सुकदेव सुनायो।
सूरदास त्यौंही कहि गायो।।

हरि का बार–बार स्मरण करो। भगवान के चरण कमलों को हृदय में धार करो। (विष्णु के) जय और विजय नाम के दो द्वारपाल थे। ब्राह्मणों टसनकादि ऋषियों) के शाप से वे असुर हो गए। उनमें से एक (हिरण्याक्ष) को भगवान् ने वराह रूप धारण करके मारा और दूसरे (हिरश्कशिपु) का संहार नृसिंह रूप धारण करके किया। वे दोनों फिर रावण और कुम्भकरण के रूप में उत्पन्न हुए। उनके उद्धार हेतु ही श्रीराम ने अवतार धारण किया। अयोध्या के राजा दशरथ रथ के घर पर श्रीराम का अविर्भाव हुआ। राजा परीक्षित को जिस प्रकार शुकदेव जी ने (यह प्रसंग) सुनाया, सूरदास ने उसी प्रकार वर्णन करके उसका गान किया।

हिन्दी साहित्य का भक्ति–काव्य स्वयं में एक आन्दोलन था, आन्दोलन इस अर्थ में कि उस युग की परिस्थितिजन्य जो समस्याएं थीं, अथवा जो चुनौतियाँ जन जीवन के सामने थीं, उनका समाधान और उत्तर भक्ति–काव्य ने

दिया। यदि एक ओर तुलसी ने "मानस" के द्वारा ऐसे अनूठे चरित्रों को जन–जीवन के समक्ष रखा जो उनके विषमता–पूर्ण जीवन के लिए प्रकाश–स्तम्भ के समान थे, तो दूसरी ओर "सूर" ने एक ऐसे चंचल, सुन्दर, जीवन्त, आकर्षक और अबोध बालक के गतिशील चित्र दिए जिसमें जीवन के सम्पूर्ण प्रस्फुटन की संभावनाए थी।

सूर काव्य का कृष्ण एक ऐसा बालक है जिसकी दिनचर्या गाँव के बच्चों जैसी हैं और मनोवैज्ञानिक धरातल पर वह हर साधारण बालक जैसा है। कहीं वह मिट्टी खाता है, कहीं माखन–चोरी करता है, कहीं माँ की डाट खाता है, कहीं माँकी क्षमा–शीलता का पात्र बनता है।

इसके अतिरिक्त सूर के काव्य में मातृ–हृदय के जो भाव–पूर्ण चित्र हैं, वे केवल यशोदा के ही चित्र नहीं हैं वरन् किसी भी माँ के हृदय की सूक्ष्म भावनाओं के चित्र हैं। मातृ हृदय का यह सहज अंकन और शैशव की ये मनोहारी छबियाँ क्या कभी अप्रासगिक हो सकती हैं? क्या विज्ञान शिशु क्रेड़ाओं को किन्हीं नियमों, सिद्धान्तों या "फार्मूलों" के द्वारा नियन्त्रित कर सकता है? क्या मातृ–हृदय की वेविष्यमयी भावनाए और आकांक्षाए भौतिक–अभिवृद्धि के वातावरण में लुप्त होकर अप्रासंगिक हो सकती हैं? क्या बच्चों की सहज क्रीड़ाएं देखकर एवं साधारण मानव–मन की आकर्षित होने की स्वाभाविकता की कोई राजनीतिक हलचल बदल सकती है ?

सूरकाव्य का यह पक्ष हमारी आज की भी राष्ट्रीय समस्याओं का उत्तर है। आज भी राष्ट्र में जब धार्मिक दंगे और साम्प्रदायिक दंगों की अग्नि भभकती है, तब उसका समाधान केवल धार्मिक सहिष्णुता में ही खोजा जा सकता है। न केवल राम–नाम का यह उल्लेख वरन् राम–कथा पर लिखे सूर के लगभग 155 पद इस बात के प्रमाण हैं कि सूर के भक्ति–पथ में इष्ट के प्रति अनन्य समर्पण तो हैं परन्तु दूसरी ओर ऐसी उदारता भी है जिसमें वे अन्य भक्तों के इष्ट देवों

को भी आदर श्रद्धा और नमन अप्रित करते है। राम–भक्ति के पदों की संरचना और भाव–तत्व की अभिव्यक्ति को देख कर यह कतई नहीं लगता कि ये पद केवल औपचारिक विनम्रता के प्रदर्शन हेतु लिखे गए हैं। फिर नवम् स्कंध में अन्य अवतारों का उल्लेख करने के बाद रामावतार का वर्णन है, फिर बालकाण्ड से लेकर लंका–काण्ड तक की महतवपूर्ण घटानाओं और मर्मस्पर्शी प्रसंगों को सूर ने अभिव्यक्ति दी हैं। राम का अयोध्या लौटना और भरत द्वारा राम को मणिमय आसन पर बिठाना यह प्रसंग इस कथा का अन्तिम अंश हैं। आचार्य शुक्ल ने महाकाव्य की एक महत्वपूर्ण कसौटी दी हैं कि वह कवि मर्मस्पर्शी स्थलों की सही पहचान कर सका है या नहीं। सूर के इन रामकथा प्रसंगों में मुक्तक की गरिमा तो है ही, साथ ही महाकाव्य प्रणेताओं के इस वैशिष्ट्य को भी उन्होंने साकार किया है। रामकथा के मर्मस्पर्शी स्थलों पर साहित्य मर्मज्ञों ने बहुत कुछ कहा है, और तुलसी के काव्य की इस असाधारण उपलब्धि को भी बार–बार विवेचित किया है। यहाँ यह कहना अप्रासगिक न होगा कि सूर के इस रामकाव्य में भी यह वैशिष्ट्य दिखाई देता हैं।

राष्ट्र–प्रेम और राष्ट्रीयता भारत जैसे देश की अस्तित्व–रक्षा और विकास की एक आवश्यकता सदैव से रही हैं, क्योंकि इस देश ने विदेशी आक्रान्ताओं की स्वार्थ–पूर्ण चक्र भृकुटियों के आंतक को सदैव से देखा है। स्वदेश–प्रेम की यह भावना मध्ययुगीन परिवेश में भी आवश्यक थी, स्वातन्त्रय आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में भी और आज भी यह स्वदेश प्रेम उतना ही वरेण्य हैं।

बाल्मीकि–रामायण के प्रारम्भ में काव्य रचना की मूल प्रेरणा का जो वृतांत दिया गया है वह स्पष्ट करता है कि वाल्मीकि ने अपने महाकाव्य के नायक का चयन गुणों की विशिष्टता के आधार पर किया है। ज्ञानियों में श्रेष्ठ एवं मुनियों में अग्रगण्य नारद जी से वाल्मीकि ने पूछा "इस समय संसार मे गुणवान, परक्रमी धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवक्ता, और अपने व्रत मे दृढ़ कौन है? सदाचार से मुक्त, सब प्राणियों के कल्याण में तत्पर, विद्वान, सामर्थशाली और

देखने में सबसे सुन्दर पुरूष कौन है? मन के वश में रखने वाला, क्रोध रहित कीर्तिमान और डाह से हीन पुरूष कौन है? वह कौन पुरूष है, जिसके रणभूमि में कुपित हो जाने पर देवता भयभीत हो जाते हैं। यह मैं जानना चाहता हूँ। इसके लिए मेरे मन में बड़ा कुतूहल है।

"त्रिलोकी का वृतांत जानने वाले नारद ने वाल्मीकि के ये वचन सुनकर कहा–अच्छा सुनिये, आपने जो गुण गिनाये हैं उनमें से बहुत से दुर्लभ हैं। फिर भी हे मुनि, उनसे युक्त मनुष्य को मैं बताता हूँ, आप सुनें। वे इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए हैं और लोक में 'राम' इस नाम से विख्यात हैं।" वाल्मीकि रामायण में यह संवाद है।

इससे दो बातें स्पष्ट होती हैं पहला, वाल्मीकि ने अपने वर्तमान काल के नायक की जानकारी नारद से चाही थी, दूसरा वाल्मीकि, लोक प्रतिष्ठित, सर्वगुण सम्पन्न, आदर्श, पुरूषोत्तम ऐसा नायक चाहते थे, जिसमें लोक मंगल की भावना कूट–कूट कर भरी हो, जो समाज के संकटकाल में आदर्श चरित्र नायक के रूप में, शाश्वत रूप से प्रेरणास्त्रोत रहे। 'सूरसागर' के राम में भी हमें उपरोक्त में से अधिसंख्य गुण मिलते हैं। इसके अतिरिक्त सीता, लक्ष्मण, भरत, हनुमान, रावण, मंदोदरी आदि का चरित्र भी सामने उभर कर आता है। ये सभी चरित्र मुख्य रूप से तथा दशरथ, माता कौशिल्या, सुमित्रा और कैकेयी, सुग्रीव, अंगद, जटायु, त्रिजटा तथा कुम्भकर्ण आदि के चरित्र गौड़ रूप से प्रभावित करते हैं।

सूरदास कृष्ण भक्ति थे। भारतीय धर्मसाधना में कृष्ण की उपासना अत्यन्त प्राचीन है। कृष्ण का प्राचीनतम उल्लेख ऋग्वेद के आठवें मंडल के 74 वें सूक्त में हुआ है। उन्हें उस सूक्त का रचयिता ऋषि कहा गया है। अनुक्रमणी के लेखक ने उन्हीं कृष्ण को अंगिरस का वंशज बताया है और कौशीतकी ब्राह्मण में भी उन्हीं अंगिरस कृष्ण का उल्लेख है। छान्दोग्य उपनिषद् में देवकीपुत्र कृष्ण

को घोर अंगिरस का शिष्य बताया गया है। यही कृष्ण भागवत धर्म के प्रवर्तक हुए और उस धर्म में देवाधिदेव के रूप में उनकी पूजा प्रचलित हुई। भागवतधर्म की स्थापना के साथ भक्तिसाधना के क्रमबद्ध विकास का प्रथम चरण आरम्भ हुआ। पाणिनीय के कतिपय सूत्रों पर पंतजलि के भाष्य, घोसुंडी, बेसनगर और नानाघाट की गुफाओं में प्राप्त अभिलेखों के आधार पर डा0 भंडारकर ने यह सिद्ध कर दिया है कि ई0 पू0 तीसरी–चौथी शताब्दी में भारत के पश्चिमोत्तर भाग में भागवत धर्म फैल गया था और उसमें देवाधिदेव के रूप में वासुदेव कृष्ण की पूजा होती थी। कृष्ण ने अपने अनुयाइयों को जिन बातों का उपदेश दिया, उनका बीज रूप प्राचीन उपनिषद में इतस्ततः बिखरा पड़ा था। गीता में विचार श्रँष्खला की उन कड़ियों को परस्पर संयुक्त कर उन्हें व्यवस्थित स्वरूप दे दिया गया। इसीलिए गीता को उपनिषदरूपी गायों का अमृतोपम दुग्ध कहा जाता है। गीता की रचना के समय भारतीय अध्यात्म चिन्तन में दो प्रकार की विचार धाराएं प्रचलित थीं जिन्हें क्रमशः "ज्ञानयोग" और "कर्मयोग" की संज्ञा से अभिहित किया जाता था। श्रीकृष्ण ने दोनों मार्गों में सामंजस्य स्थापित कर एक नवीन मार्ग प्रशस्त किया, जो आगे चलकर एकान्तिक धर्म के नाम से विख्यात हुआ। इस धर्म में पूर्ण समप्रण के साथ निष्काम भाव से की जाने वाली भक्ति को मोक्ष प्राप्त करने के अनेक साधनों में सबसे उत्तम और सरल बताया गया है। भक्ति की ऐसी विशद और सुस्पष्ट व्याख्या उससे पहले किसी एक ग्रंथ में देखने को नहीं मिलती। इसलिए गीता को भक्ति का प्रवर्तक प्रथम व्यवस्थित ग्रंथ कहना चाहिए।

एकान्तिक धर्म अपनी पूर्ववर्ती और परवर्ती अनेक विचारधाराओं से मिलकर नवीन वैष्णवधर्म में प्रवर्तित हुआ। वैष्णवधर्म में चार विचारधाराएँ मिली हुई थीं। एक के आरध्य विष्णु, दूसरी के नारायण, तीसरी के वासुदेव कृष्ण और चौथी के गोपाल कृष्ण थे। गीता की रचना के समय तक यह मान्यता प्रचलित हो गयी थी कि दुष्टों का विनाशकर सत्पुरूषों की रक्षा और धर्म की स्थापना

करने के लिए भगवान् प्रत्येक युग में अवतरित होते हैं। दुखों से पीड़ित मानवों की रक्षा करने का गुण वैदिक देवता विष्णु में विद्यमान था।

इसलिए कृष्ण ने अपने को आदित्यों में विष्णु बताया। वैष्णवधर्म का संगठन होने पर उसमें वैदिक देवता विष्णु को सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। वासुदेव कृष्ण, जो भागवत धर्म में देवाधिदेव माने जाते थे, अब विष्णु के अवतार मात्र रह गये।

ईसा की चौथी शताब्दी से लेकर छठीं शताब्दी के मध्य तक उत्तर भारत में गुप्त साम्राज्य ने वैष्णवभक्ति के प्रचार–प्रसार में महान् योग दिया। जिस प्रकार वासुदेव कृष्ण की निष्काम भक्ति की विशद व्याख्या करने के लिए गीता की रचना हुई थी, उसी प्रकार गोपालकृष्ण की मधुरोपासना का सर्वांगपूर्ण विवेचन करने के लिए भागवत की रचना की गयी। यही भागवत पुराण कृष्णभक्तो की प्रेमलक्षणा भक्ति का प्रतिपादक प्रधान ग्रन्थ हुआ और गोपाल कृष्ण भक्तिभाव के मधुर आलम्बन बने। गुप्तसाम्राज्य का अन्त होने के अनन्तर उत्तर भारत में वैष्णवभक्ति का प्रखर सूर्य शनैः शनैः मेद्याच्छन्न होने लगा और उसका उदय दक्षिण भारत में आलवर भक्तों की तमिल रचनाओं के साथ हुआ।

महाभारत काल में मगधसम्राट जरासन्ध ने शूरसेन राज्य पर कई बार आक्रम किया था। उसके कारण यादवों का एक बड़ा समुदाय कृष्ण–बलराम के साथ मथुरा से द्वारका चला गया। जब द्वारका में गृहकलह की दुखान्त घटना हुई तब उनमें से तमाम लोग वहां से हटकर अन्यत्र चले गये। वे सब सौराष्ट्र, गुजरात, महाराष्ट्र, विदिशा, विदर्भ, कर्नाटक, यहाँ तक कि सुदूर दक्षिण के तमिल प्रदेश में जाकर बसे। उनके कारण दक्षिण भारत में भागवत धर्म के प्रचार का समुचित वातावरण बना हुआ था जो समय आने पर आलवारों के भक्ति आन्दोलन के लिए बहुत सहायक हुआ। छठीं शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक बारह प्रमुख आलवारों ने भक्ति की पावनसलिलागंगा के नैसर्गिक प्रवाह से

तमिल प्रदेश की जनता को आप्यायित किया। उनके भक्तिभाव भरितगीतों का विशाल संग्रह 'प्रबन्धम्' अपनी पवित्रता और आध्यात्मिकता के कारण दाक्षिणात्य भक्तों मे तमिलवेद के नाम से विख्यात है। प्रपत्ति या भगवत् शरणागति अर्थात् भगवान् के श्री चरणों में अपने जीवन का पूर्ण विसर्जन आलवारों की भक्ति का प्रधान गुण है।

वैष्णव भक्ति के आधरभूत सिद्धान्तों का विवचन कर आलवारों की भक्तिभावना को ठोस दार्शनिक आधार पर प्रतिष्ठित करने का कार्य रामानुज, निम्बार्क, मध्व और विष्णुस्वामी आदि आचार्यों द्वारा सम्पन्न किया गया। इन आचार्यों ने शंकर के अद्वैत सिद्धांत और मायावाद का खंडन करने के लिए क्रमशः विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, द्वैत और शुद्धाद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उनके द्वारा चलाये गये सम्प्रदायो को क्रमशः श्री, सनक, बह्म और रूद्र के नाम से जाना जाता है। और उनकी एक साथ गणना करने के लिए उन्हें 'चतुःसम्प्रदाय' कहते है। भक्तिसाधना के क्षेत्र में उपर्युक्त आचार्यों का सीधा प्रभाव चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ तक बना रहा। उसके बाद उनकी परम्परा में पाँच अन्य महापुरूषों– रामान्नद, बल्लभाचार्य, चैतन्य, हितहरिवंश और हरिदास का आविर्भाव हुआ। रामानन्द ने रामावत सम्प्रदाय की स्थापना की, बल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग का प्रचार किया, चैतन्य ने गौड़ीय सम्प्रदाय चलाया। इसी प्रकार हितहरिबंश और हरिदास ने क्रमशः राधा बल्लभ सम्प्रदाय और सखी सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। इन परवर्ती सम्प्रदायों का प्रचार हो जाने के बाद भी निम्बार्क सम्प्रदाय का स्वतंत्र अस्तित्व बना रहा। इस प्रकार 16वीं शताब्दी तक ब्रजभूमि में कृष्णभक्ति पर आधारित छः सम्प्रदाय प्रचलित हो गये।

दक्षिण के भक्ति आन्दोलन को उत्तर भारत में व्यापक और लोकप्रिय बनाने का श्रेय स्वामी रामानन्द को है। उपासना के क्षेत्र में राम की विधिवत् प्रतिष्ठा उन्हीं के समय में हुई। उनके पश्चात रामोपासना दो धाराओ में बँट गयी। निर्गुणधारा का नेतृत्व महात्मा कबीरदास ने किया और सगुणधारा में

गोस्वामी तुलसीदास का आविर्भाव हुआ। हिन्दी भाषी क्षेत्र में राम कथा को जन–जन तक पहुँचाने का श्रेय भक्त शिरोमणि, महाकवि गोस्वामी तुलसीदास के अलावा किसी दूसरे को नहीं दिया जा सकता। वे सूरदास के कनिष्ठ समकालीन थे और अनुमान किया जाता है कि सूरदास से उसकी भेंट हुई थी।

स्वामी रामानन्द के बाद लगभग उन्हीं जैसा समर्थ और शक्तिशाली दूसरा व्यक्तिव बल्लभाचार्य का था। उन्होंने पुष्टिमार्ग के नाम से एक विशिष्ट साधना प्रणाली का प्रवर्तन किया। दार्शनिक सिद्धान्त की अभिन्नता के कारण पुष्टिमार्ग विष्णुस्वामी के रूद्र सम्प्रदाय का अनुवर्ती था लेकिन स्वतंत्र विकास और भक्तितत्व की भिन्नता के कारण वह अलग सम्प्रदाय बन गया। बल्लभाचार्य जी द्वारा श्रीनाथ जी के विग्रह की प्रतिष्ठा और उसकी अष्टयाम सेवाविधि के साथ पुष्टिमार्गीय भक्ति की लोकप्रियता में वृद्धि। प्रारम्भ में श्रीनाथ जी की नित्य सेवा में वात्सल्य भाव की प्रधानता थी। बल्लभाचार्य के द्वितीय पुत्र विट्ठलनाथ ने नित्य सेवा में स्वामिनी श्री राधा जी को महत्वपूर्ण स्थान देकर पुष्टिमार्गीय भक्ति में माधुर्य भाव का विधिवत् समावेश किया। अष्टयाम सेवा के समय संकीर्तन के लिए आठ कुशल कवियों और निपुण संगीतज्ञों को नियुक्त कर विट्ठलनाथ ने दूसरा महत्वपूर्ण कार्य किया। वे आठ कवि अष्टछाप के नाम से विख्यात हुए। सूरदास उनमें प्रधान थे।

सूरदास की भाव संस्थापन पद्धति की सबसे बडी विशेषता है'उनकी मानव प्रकति सम्बन्धी सूक्ष्म परख। वे यद्यपि दृष्टि से हीन थे ,तथापि उन्होने मानव मन का गहनतम अनुशीलन किया था। वे मन के सूक्ष्मतम विकारों तथा सवेदनाओं से अत्यन्त परिचित थे। आश्चर्य होता है जब वे एक–एक भावनाओ का चित्रण करते चलते है। जब तक वे अभिव्यक्ति के चरम प्रकर्ष पर नही पहुचते उनका कवि ह्रदय, तृप्ति ही नही प्राप्त करता। सूर के भाव विधान की परिणति परम सात्विक आन्नद रस के प्रागण में होती है।

भारतीय आचार्यो ने रस को काव्य की आत्मा माना है। सहृदयों की चित्त वृत्तियों मे अन्नत रूप से परिव्याप्त रहने वाले सस्कारों को ही भाव की सेवा प्रदान की गयी है। उनका मत है कि यह मानवीय संस्कार ही अनुकूल परिस्थितियों मे प्रबुध्द होकर रस अथवा आनन्द के रूप में अभिव्यक्ति होते रहते है। इन भावो को उदीप्त करने वाले मनोविकारेा को विभाव कहा जाता है। विभाव को भी आचार्यो ने दो भागों में विभाजित किया है। (1) आलम्बन विभाव (2) उददीनपन विभाव। (3) आलम्बन विभाव स्थायी भाव को अंकुरित करता है और उददीपन उसे पल्लवित करता है। अनुभवों के साथ इन दोनो विभावो का पूर्ण सहचर्य रहा करता है। स्थायी भाव के साथ कुछ भाव और संचरित अथवा तरगित होते है, आवार्यगण इसे स,चारी या व्याभिचारी भाव कहते है। काव्य शास्त्रमें आनन्द या हर्ष को संचारी के रूप में ही रख गया है, क्योकि यह संचरित अवस्था में ही रहता है, अभिव्यक्ति मे इसकी प्रबलता स्थायी नही है। यह शोकदि भावो की तरह सहदय को रसदशा में नही पहुचता।

श्री आनन्द प्रकाश दीक्षित ने अपनी पुस्तक रससिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण, में लिखा हैः हदय में वासना रूप में संस्थित, अन्य भावो द्धारा किसी प्रकार भी न दबने वाले प्रधान, विरोधी–अविरोधी भावो को अंतहित करके आत्म–भाव प्राप्त करा सकने वाले चिरकाल अथवा आप्रबधं स्थायी रहने वाले आस्वाद योग्य मनो–भावो को स्थायी भी कहते है। अपने नाट्यशास्त्र में आचार्य भरत मुनि ने कहा है। जिस प्रकार मनुष्यो में नृपति और शिष्यों में गुरू की प्रतिष्ठा की जाती है उसी प्रकार सभी भावो मे स्थायी भाव श्रेष्ठ होते है। किसी भी रस के परिपाक मे स्थायी भावो का महत्व पूर्ण स्थान है, बल्कि यह कहा जा सकता है कि रस परिपाक स्थायी भावों के बिना हो ही नही सकता।

भारतीय आचार्यो में सर्व स्वीकृत नौ स्थायी भाव हैं यथा–रति शोक, निर्वेद (शम) क्रोध उत्साह, विस्मय हास ,भय और घृणा। इन्ही के आधार पर साहित्यमें नौ रस माने गये है श्रृंगार, करूण, शान्त, रौद्रवीर, अद्भुत, हास्य,

भयानक और वीभत्स। आचार्य विश्वनाथ ने वात्सल्य को भी स्थायी भाव माना है और वे दसवें वात्सल्य रस की भी स्थापना हुई है। सूर के काव्य। वात्सल्य रस प्रचुरता से है।

स्थायी भाव को तीव्र करने वाले तथा इन्ही के साथ उत्पन्न होने वाले, तरगित होने वाले और विलुप्त होने वाले, भावों को संचारी भाव कहा जाता है। इसकी कोई निश्चत संख्या नही है। साधारणतः संचारी भाव तैंतीस माने गये है। यथा–

हर्ष, आवेश, चपलता, निर्वेद, ग्लानि, शंका, मद, असूया, श्रम, आलस्य, दैन्य, चिन्ता, मोह, स्मृति, धृति, क्रीडा, जडता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, अमर्ष, अवहित्था, अपस्मार, निद्रा, सुप्ति, विवोध, उग्रता, वितक्र, मति, त्रास, व्याधि, उन्माद और मरण। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा अन्य कुछ विद्वान अन्य अनेक अन्तर्भावों को संचारी भाव के रूप में प्रस्तुत करते है और यह सही भी है क्योकि संचारी भावों की संख्या को निश्चित नहीं किया जा सकता– उदासीनता क्षोभ असंतोष अनिश्चय। घबराहट सकपकाहट चकाचौंध नैराश्य विस्मृति इत्यादि अनेक संचारी भाव है।

सात्विक भाव आठ माने गये हैं यथा–रोमांच, स्वरभंग, स्वेद, स्तम्भ, वैवर्ण्य, अश्रु तथा प्रलाप। आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है–''सात्विक भाव एक प्रकार से संचारियों से श्रेष्ठ है क्योंकि वे आन्तर होते हैं। इनका रसों से विशेषकर श्रृंगार रस से घनिष्ठ सम्बन्ध हैं इसलिए इन्हें भाव ही कहना चाहिए।''

महात्मा सूरदास जन्म से भक्त माने गये हैं। भक्ति–साधना मनुष्य की रागात्मक वृत्ति से संबद्ध है। कुछ विद्वान सभी भावनाओं से भक्ति –भाव को उर्ध्व स्तर का मानते हैं। शांत रस और भक्ति भावना दोनों सहचर हैं परन्तु पंडित राज जगन्नाथ ने अपनी पुस्तक 'रसगंगाधर' में भक्ति का अन्तर्भाव शांतरस में स्वीकार नही किया हैं। इनका कहना है कि शांतरस का स्थायी भाव

निर्वेद है और भक्ति भावना ईश्वर अनुरक्ति के बिना नहीं हो सकती। अनुराग और निर्वेद एक दूसरे के विपरीत भाव हैं। भक्ति मे रति है और निर्वेद में विरति। अन्य विद्वान पंडितराज से सहमत नही हैं।

भक्ति को भाव कहा जाता है परन्तु कुछ विद्वान इसे रस की श्रेणी में रखते हैं। हमें इस विवाद से कोई मतलब नहीं है और यह विषय महत्वपूर्ण भी नही हैं।

प्रेम एक मूल भाव है जो विविध रूपों में उपस्थित होता है। बिना प्रेम के भक्ति भाव भी संभव नहीं है। भक्ति के वात्सल्य, सख्य, दास्य, माधुर्य आदि अनेक रूप है।

सूरदास को सांसारिक जीवन की व्यर्थता और उद्देश्य हीनता का अनुभव प्रारम्भ से हो गया था और वे सांसारिकता से विरक्त हो गये थे इसी के फलस्वरूप उनके हृदय में भक्तिभाव का उदय हुआ। उन्होनें अपने आस–पास के लोगों को इन्द्रियों का गुलाम लोभ लालच मद और मोह में फॅसे हुए अनेक दैहिक और भौतिक व्याधियो में घिरे कष्ट सहतें सुनां।संतों के समागम से उन्हें यह भी ज्ञात हुआ की भगवान भक्त वत्सल हैं और पतिंतो के उद्वारक हैं अतएव उन्होंने प्रारम्भ में विनय के दों पदों में अपनी दैन्यता का भाव प्रस्तुत किया हैं।

भारतीय परम्परा में काव्य को कलाओं में नहीं माना गया है। कला के अंतर्गत–संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला के अतिरिक्त पुस्तक बांधना और सूक–सारिका पढ़ाना जैसे साधारण कौशलयुक्त कार्यों की गणना की गयी है। कामशास्त्र में जिन चौंसठ कलाओं का वर्णन है उसमें 'काव्य–समस्या पूर्ति को अवश्य कला माना गया है परन्तु 'काव्य की मूल संरचना' एक अलग शिल्प है। हमारे यहां पूर्ति काव्य का क्षेत्र कला से उच्च बताया गया है। आचार्य भामह ने कला की विशेषता 'विचक्षणता ' को माना है– वैवक्षण्यं कलासु च'। आचार्य

रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं– 'कलाओं के संबंध में जिनका लक्षण केवल सौन्दर्य की अनुभूति उत्पन्न करना है,यह मत कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता है। इसी से चौंसठ कलाओं का उल्लेख हमारे यहां काम–शास्त्र के भीतर हुआ है। पर काव्य की गिनती कलाओं में नहीं की गयी है। '

वैसे देखा जाये तो काव्य और कला दोनों सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति ही हैं। रसाननद दोनों में है। कौन किसके अंतर्गत आता है यह प्रश्न महत्वहीन है। काव्य– शिल्प है और इसके उपकरण शब्द और अर्थ हैं। व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'शिल्प'शब्द 'शिला' से सम्बंधित है। 'शिला 'को अपनी भावना, हस्त कौशल और कल्पना के आधार पर काट–छांट कर शिल्प का स्वरूप दिया है। यह शिल्प अंग्रेजी के 'क्राफट के समतुल्य चीज है।

कवि धर्म के विषय में आचार्य शुक्ल ने लिखा है– ''कवि–धर्म में कल्पना की बहुत आवश्यकता होती है, पर यह कल्पना विशेष प्रकार की होती है। उसकी क्रिया कवि की भावुकता के अनुरूप होती है। कवि अपनी भावुकता की दृष्टि के लिए ही कल्पना को रूप विधान में प्रवृत्त करता है। जब भाव की उमंग ही कल्पना को प्रेरित करती है तब कवि का मूल गुण भावुकता अर्थात अनुभूति की तीव्रता है। कल्पना उसकी सहयोगिनी है। पर ऐसी सहयोगिनी है जिसके बिना कवि अपनी अनुभूति को दूसरे तक पहुंचा ही नहीं सकता। अनुभूति को दूसरे तक पहुंचाना ही कवि धर्म है। अतः हम कह सकते हैं कि कल्पना और भावुकता कवि के लिए दोनों अनिवार्य हैं। भावुक जन कल्पना–सम्पन्न और भाषा पर अधिकार रखने वाला होता है, तभी कवि होता है।"

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

- अष्टछाप : सम्पादक–डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा, प्रकाशक–राम नारायण लाल बुक्सेलर, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण।
- अष्टछाप एवं बल्लभ सम्प्रदाय : दीनदयाल गुप्त, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, भाग–1, प्रयाग।
- अष्टछाप एवं बल्लभ सम्प्रदाय : दीनदयाल गुप्त, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, भाग–2, प्रयाग।
- कालिदास की लालित्य : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, योजना।
- काव्य कल्पद्रुम : ले0 कन्हैया लाल पोद्दार, प्रकाशक–गंगा पुस्तक माला, कार्यालय, लखनऊ संस्करण, सम्वत् 1991 वि.।
- गोवर्धनवासी : ले. चतुर्भुजदास, प्रकाशक मनोहर पुस्तकालय, मथुरा।
- चौरासी वैष्णवन की वार्ता : प्रकाशक, वेंक्टेश्वर प्रेस, बम्बई, संस्करण संवत् 1985 वि.।
- दशम स्कन्ध भाषा : लेखक–नन्ददास, प्रकाशक मुंशी कन्हैया लाल मथुरा, संस्करण–1873
- दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता : प्रकाशक–बेक्टेश्वर प्रेस बम्बई, संस्करण संवत् 1988 वि.
- नन्ददास, भाग–2: सम्पादक–उमाशंकर शुक्ल, प्रकाशक–प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण, सन् 1942ई.
- नाममाला : लेखक–नन्ददास, प्रकाशक, लहरी प्रेस बनारस
- ब्रज की झांकी : प्रकाशक–गीता प्रेस गोरखपुर, संस्करण सम्वत् 1998 वि.।
- ब्रजविलास हस्तलेख : ब्रजवासी दास, प्राप्ति स्थान, आर्यभाषा पुस्तकालय, ना.प्र.स. काशी।
- भक्तमाल टीका, भक्ति रस बोधिनीः टीकाकार–प्रियादास, प्रकाशक–वेंक्टेश्वर प्रेस बम्बई, संस्करण, संवत् 1967
- भक्ति रसायन : मधुसूदन सरस्वती।

- भक्तमाल : भक्तकल्पद्रुम टीका–टीकाकार श्री प्रताप सिंह, प्रकाशक नवल किशोर प्रेस लखनऊ, संस्करण सन् 1922 ई.।
- भारतीय साधना और सूर साहित्य : डॉ. मंशीराम शर्मा।
- भ्रमरगीत :लेखक–नन्ददास, सम्पादक मोतीलाल, मनोहरदास–मथुरा।
- रामचरितमानस : ले. तुलसीदास, संपादक–डॉ. श्याम सुन्दर दास।
- महाकवि सूरदास : पंडित नन्द दुलारे वाजपेई।
- रासपंचाध्यायी : लेखक–नन्ददास, सम्पादक–उदय नारायण तिवारी, प्रकाशक–आर्ट प्रेस दारागंज, प्रयाग संस्करण–सम्वत् 1993 वि.
- रासपंचाध्यायी : लेखक–नन्ददास, सम्पादक–ब्रजमोहन लाल विशारद, प्रकाशक–परीक्षित सिंह, मेरठ संस्करण–सम्वत् 1918ई.
- राधा–कृष्ण भक्ति कोश : सम्पादक डॉ. भगवती प्रसाद सिंह एवं डॉ. वासुदेव सिंह
- रीतिकाव्य की भूमिका : डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- बल्लभ पुष्टि प्रकाश : प्रकाशक–मुखिया जी, रघुनाथ जी; वेंक्टेश्वर प्रेस, बम्बई।
- विचार और अनुभूति : डॉ. नगेन्द्र
- विद्यापति अनुशीलन एवं मूल्यांकन (खण्ड–2) : सम्पादक डॉ. धीरेन्द्र श्रीवास्तव, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी पटना–3 प्रथम संस्करण जुलाई 1973।
- सिद्धान्त मुक्तावली : गीता प्रेस गोरखपुर।
- संक्षिप्त सूरसागर : सम्पादक डॉ. सिद्धनाथ पाण्डेय
- सूर सन्दर्भ एवं समीक्षा : सम्पादक डॉ. त्रिभुवन सिंह, तुलसी शोध संस्थान, का.हि.वि.वि. वाराणसी–5, प्रथम संस्करण 1981
- सूरसागर भाग–1 : सम्पादक नन्द दुलारे वाजपेयी, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, संस्करण प्रथम संवत् 2033

- सूर ग्रंथावली : सम्पादक पंडित सीताराम चतुर्वेदी
- सूर साहित्य :आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक–मध्य भारत, हिन्दी साहित्य समिति, इन्दौर, संस्करण संवत् 1993वि.
- सूर और उनका साहित्य : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक मध्य भारत, हिन्दी साहित्य समिति इन्दौर, संस्करण सम्बवत् 1993 वि.
- सूरदास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
- सूर और उनका साहित्य : डॉ. हरवंश लाल शर्मा।
- सूर की लालित्य योजना : डॉ. परेश
- सूरदास : डॉ. बष्जेश्वर वर्मा।
- सूर की भक्ति भावना : डॉ. वेद प्रकाश शास्त्री
- सूरसागर : प्रकाशक नवल किशोर प्रेस, लखनऊ।
- सूरसागर नागरी प्रचारिणी सभा काशी।
- सूरसागर : वेंक्टेश्वर प्रेस बम्बई, संस्करण संवत् 1964 वि.।
- हिन्दी भाष्य और साहित्य : लेखक डॉ. श्याम सुन्दर दास, प्रकाशक इण्डियन प्रेस, लिमिटेड प्रयाग, संस्करण समवत् 1994 वि.।
- हिन्दी रस गंगाधर : लेखक पुरूषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी, प्रकाशक इण्डियन प्रेस, प्रयाग
- हिन्दी साहित्य का : ले. डॉ. रामकुमार वर्मा, प्रकाशक रामनारायण लाल
- आलोचनात्मक इतिहास बुक्सेलर इलाहाबाद, संस्करण सन्1938ई.
- हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा काशी।
- हिन्दी साहित्य का इतिहास : सम्पादक डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।

- संस्कृत ग्रंथ

- अणुभाष्य, भाग –1 –2: बनारस संस्कृत सीरिज 1907 ई, प्रकाशक–ब्रजवासीदास एण्ड कम्पनी बनारस।
- काव्य प्रकाश : लेखक आचार्य मम्मट प्रकाशक आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना।
- कृष्णाश्रय, षोडश ग्रंथ : लेखक श्री बल्लभाचार्य, सम्पादक भट्टरमानाथ शर्मा मुद्रक निर्णय सागर प्रेस बर्धा, संस्करण सम्वत् 1949 वि.
- गीत गोविन्द : जयदेव
- चन्द्रालोक : जयदेव
- चतुः श्लोकी षीडश ग्रंथ : लेखक श्री बल्लभाचार्य, सम्पादक–भट्टरमानाथ शर्मा, मुद्रक–निर्णय सागर प्रेस बम्बई संस्करण सम्वत् 1979 वि.
- तैत्तरीय उपनिषद : गीता प्रेस गोरखपुर।
- नारद भक्ति सूत्र : गीता प्रेस गोरखपुर।
- पंचपद्य षोडश ग्रंथ : लेखक श्री बल्लभाचार्य, सम्पादक भट्टरमानाथ शर्मा, मुद्रक–निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, संस्कराण संवत् 1979 वि.।
- पुष्टि प्रवाह : लेखक श्री बल्लभाचार्य, सम्पादक–भट्ट रमानाथ शर्मा, मुद्रक निर्णय सागर प्रेस, बम्बई संस्करण सम्वत् 1979 वि.
- भक्ति वर्धिनी : लेखक श्री बल्लभाचार्य, सम्पादक–भट्टरमानाथ शर्मा, मुद्रक निर्णय सागर प्रेस बम्बई, संस्करण सम्वत् 1979 वि.
- भक्ति हंस : लेखक गोस्वामी विठ्लनाथ जी, प्रकाशक शुद्धौद्वैत सिद्धान्त कार्यालय, बम्बई संस्करण, सम्वत् 1971 वि.।
- बल्लभ–द्विग्विजय : लेखक–गोस्वामी यदुनाथ जी, अनुवादक पुरूषोत्तम चतुर्वेदी, विद्या विभाग से प्रकाशित संस्करण सम्वत् 1975 वि.।
- शाण्डिल्य भक्ति सूत्र व्याख्या भक्ति : सम्पादक–महामहोपाध्याय पंडित गोपीनाथ कविराज,

- चन्द्रिका : गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस, मुद्रक–जयकृष्णदास गुप्त, विद्याविलास प्रेस बनारस।
- शुद्धौद्वैत मार्तण्ड : लेखक–गोस्वामी गिरिधर जी, प्रकाशक रतन गोपाल भट्ट–बनारस
- श्रृंगार मण्डन : लेखक–श्री विठ्ठलेश्वर, सम्पादक–एम.टी. तेलीवाला बम्बई।
- श्रीमद्भागवत गीता : प्रकाशक गीता प्रेस, गोरखपुर।
- श्रीमद्भागवत : प्रकाशक गीता प्रेस, गोरखपुर।
- साहित्य दप्रण : लेखक–विश्वनाथ, टीकाकार, शालिग्राम शास्त्री, प्रकाशक–श्री श्यामसुन्दर शर्मा, श्री मृत्युन्जय औष्धालय, लखनऊ, संस्करण, सम्वत् 1978 वि.।
- सिद्धान्त मुक्तावली : षोडश ग्रंथ, लेखक श्री बल्लभाचार्य, सम्पादक भट्ट रमानाथ शर्मा, मुद्रक–निर्णय सागर प्रेस बम्बई, संस्करण सम्वत् 1979 वि.।
- सिद्धान्त रहस्य : षोडस ग्रंथ, लेखक – श्री बल्लभाचार्य, सम्पादक – भट्ट रमानाथ शर्मा, मुद्रक – निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, : संस्करण सम्वत् 1979 वि.
- डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा : सूरदास (प्रथम संस्करण)
- डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा : सूरदास (द्वितीय संस्करण)
- डॉ. चन्द्रभान रावत, : सूर साहित्य नवमूल्यांकन
- डॉ. चन्द्रभान रावत : कृष्ण भक्ति साहित्य : वस्तु स्रोत और संरचना
- श्री द्वारकादास परीख एवं प्रभुदयाल : सूर–निर्णय मीतल
- गोविन्द राम शर्मा : सूर की साहित्य साधना
- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : मध्यकालीन धर्म–साधना
- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : सूर साहित्य
- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य

- डॉ. हरवंश लाल शर्मा : सूर और उनका साहित्य
- डॉ. हरवंश लाल शर्मा : सूर साहित्य
- डॉ. हरवंश लाल शर्मा : हिन्दी साहित्य, नाथ सम्प्रदाय
- डॉ. हरगुलाल : सूर काव्य नया परिदृश्य
- जगन्नाथ सेठ (सं.) : सूरदास विविध संदर्भो में
- पं. जवाहरलाल चतुर्वेदी : महाकवि सूरदास और उनका कृतित्व
- डॉ. मनमोहन गौतम : सूर की काव्य कला